



रुद्रायन – 2

अन्नदत्त अयोरी



डॉ. रंजना वर्मा



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

[creator of
hinduism
server]

रुद्रायन – 2

(अद्भुत अघोरी)



India's Fastest Growing Self Publishing House

Booksclinic Publishing

-----Contact Us At-----

Call or Whatsapp @ 8965949968 or Mail
@ publish@booksclinic.com

Website: - **www.booksclinic.com**

Booksclinic Building, Kududand, Near Punchmukhi
Hanuman Mandir, Bilaspur, Chhattisgarh, 495001

This book has been published with all reasonable efforts taken to make the material error-free after the consent of the author.

All rights reserved, no part of this book may be reproduced, stored in a retrieval system, or transmitted, in any form by any means, electronic, mechanical, magnetic, optical, chemical, manual photocopying, recording or otherwise, without the prior written consent of its writer.

Publisher: Booksclinic Publishing

Edition: Second

ISBN: 978-93-5535-339-9

Copyright © Dr Ranjana Verrma

Year: 2022

Genre: Fiction

₹: 345/-

Printed in India

रुद्रायन – 2

(अद्भुत अघोरी)



डॉ. रंजना वर्मा

रुद्रायन - 2

कहते हैं कि समय से बड़ा कोई वैद्य नहीं होता। समय बड़े-बड़े घाव को भर देता है। असाध्य पीड़ा का निवारण कर देता है। जब दुख आता है तो उसकी तीव्रता मनुष्य को जीने नहीं देती। जीवन दूभर हो जाता है। संसार की सभी वस्तुएँ अनाकर्षक लगने लगती हैं परन्तु समय बीतने के साथ मनुष्य फिर उसी जीवन, उसी वातावरण और उन्हीं वस्तुओं में रुचि लेने लगता है जो दुख की अतिशयता में निर्धक प्रतीत होती हैं।

रुद्रदेव के अनथक प्रयत्नों और समय बीतने के साथ-साथ पार्वती भी अपने उस असह्य दुख तथा मनस्ताप से उबरने लगीं। संसार में उनकी रुचि उत्पन्न होने लगी। रुद्रदेव प्रतिक्षण उनको प्रसन्न करने की चेष्टा किया करते थे। उनके लिए वे भिन्न-भिन्न स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ ले आते। प्रतिदिन कोमल पत्ते और पुष्पों की पंखुरियों से कोमल शश्या तैयार करते। अपने हाथों से उन्हें भिन्न-भिन्न प्रकार से सजाते सँवारते। कामदगिरि के सुन्दर तथा मोहक स्थानों पर भ्रमण कराते और मीठी मीठी बातें करते। देश, समाज की रोचक कहानियाँ सुनाते तो कभी अपने विश्व-भ्रमण के वृत्तान्त सुना कर उनके उदास मन को बहलाने का प्रयत्न करते।

धीरे-धीरे उनके प्रयत्न रंग लाने लगे और पार्वती स्वयं विहार-क्रियाओं में रुचि लेने लगी। रुद्रदेव के प्रयासों ने उसके मानस-पटल से उस दुखद स्मृति को धुँधला कर दिया और इस सब में सबसे बड़ा कारण रहा उसका पुनः गर्भ धारण करना। अग्निकांड की घटना होने के लगभग एक वर्ष होने को आया था जब अचानक एक दिन पार्वती को अपने पुनः गर्भवती होने का अनुभव हुआ। उनका मनस्ताप नष्ट हो गया जब रुद्रदेव ने कहा - "अब प्रसन्न हो जाओ उमा! तुम्हारा वह दुर्बल शिशु फिर से तुम्हारे गर्भ में आ गया है। अब इसको सँभाल कर रखना और खूब स्वस्थ रखना!"

रुद्रायन – 2

पार्वती ने अपने पेट पर हाथ फिराया तो उसे लगा जैसे सचमुच वह उसका शिशु पुनः गर्भ में साँसे लेने लगा है। अपना सारा दुख भूल कर प्रसन्न हो गयी उमा। अपने खान-पान, आहार-विहार, उठने-बैठने पर अब वह विशेष ध्यान देने लगी। रुद्रदेव भी अब उसे एक पल के लिए भी अकेला नहीं छोड़ना चाहते थे। वे नहीं चाहते थे कि फिर पार्वती अपने हठ के कारण कोई असावधानी कर बैठे जिससे उन्हें पछताना पड़े। इसीलिए रुद्रदेव इस बार स्वयं उस सुदूर स्थित कपोत कबीले में गये और वहाँ से एक स्त्री को पार्वती की देखरेख के लिए साथ लिवा लाए। उसका नाम गंगा था। आयु में वह पार्वती की माता के समान थी। परिवार के नाम पर उसका अपना कोई नहीं था। रुद्रदेव ने जब उसे अपनी पत्नी की देखरेख के लिए साथ रखने का प्रस्ताव रखा तो वह प्रसन्न हो गयी।

गंगा के आ जाने से पार्वती भी प्रसन्न हो गयी। इसे भी एक सेविका तथा सखी मिल गयी थी जो उसकी अच्छी देखभाल कर सकती थी। रुद्रदेव अब निश्चिन्त होकर आहार तथा वनस्पतियों की खोज में पार्वती को गंगा की देखरेख में सौंप कर निकल जाते थे। सन्तान के जन्म से पूर्व ही वे उन सभी वस्तुओं को एकत्र कर लेना चाहते थे जिनकी आवश्यकता पड़ने वाली थी। वे नहीं चाहते थे कि उन्हें नन्हे शिशु और सद्यप्रसवा पत्नी को अकेली छोड़ कर फिर दूर तक जाना पड़े। अपनी गुफा के निकट ही रुद्र ने एक और गुफा तलाश ली थी जिसमें गंगा के रहने की व्यवस्था कर दी गयी थी।

प्रसव काल आने पर पार्वती ने पूर्ण स्वस्थ तथा सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। रुद्रदेव तथा पार्वती की प्रसन्नता की सीमा न रही। गंगा ने रुद्रदेव को यह समाचार सुनाया तो उन्होंने अपने गले में पहना हुआ सोने का कंठ-हार गंगा के गले में डाल दिया -

"आज तुमने मुझे बहुत ही अच्छा और सुखद समाचार सुनाया है गंगा!"

"आपका पुत्र चिरकाल तक जीवित रहे प्रभु! आप उसका नाम सोच रखिए।"

गंगा कंठ-हार पहने हँसती हुई पार्वती के पास चली गयी।

"देखो न देवी! हमे प्रभु ने क्या दिया है!"

उसने अपना कंठ-हार पार्वती को दिखा कर कहा।

"अच्छा पुरस्कार दिया है। मैं तुम्हें क्या दूँ?"

"आप अब और क्या देंगी देवी? आपका स्नेह और आपकी सेवा का अवसर मिला है मुझे, यही क्या कम है! आप यही दीजिए कि मुझे अब वापस कबीले में मत भेजिए। मुझे अपने साथ-साथ इस शिशु की देखभाल का भी अवसर दीजिए देवी!"

गंगा ने हाथ जोड़ कर कहा।

"ठीक है गंगा! अगर तुम हमारे साथ ही रहना चाहती हो तो हमें कोई आपत्ति नहीं है। तुम्हारे रहने से मुझे भी तो सहारा मिलेगा।"

पार्वती से आश्वासन पाकर गंगा प्रसन्न हो उठी। कबीले में उसका कोई परिवार न था। कोई ऐसा नहीं था जिसे वह अपना कह सके या जिस पर अपनी ममता लुटा सके। गंगा का विवाह पड़ोस के कबीले के सरदार से हुआ था परन्तु जब उसके सात पुत्र एक-एक कर जन्म लेने के बाद मर गये तो लोग उसे पापिन कहने लगे। आठवीं बार जब वह माँ बनी तो जन्म लेते ही पुत्र को उसके पति ने उससे अलग कर दिया और यह कह कर घर से निकाल दिया कि उसकी पापभरी छाया में पड़ कर वह पुत्र भी मर जाएगा। यदि वह परिवार के साथ रही तो उसे भी अपने पापों से मार देगी। गंगा वापस निराश्रित होकर लौट आयी।

इसी अपवाद के कारण कबीले में उसका सम्मान नहीं था और न ही कोई उससे मिलना-जुलना ही पसन्द करता था। रुद्रदेव के साथ आकर उसे घर के सदस्य जैसा सम्मान मिला था। पार्वती उसे अपनी माता तथा सखी जैसी समझती थी। अब यही उसका परिवार था। इस परिवार से अलग होने की आशंका उसे सदा सताती रहती थी। उसे लगता था कि पुत्र- जन्म के बाद उसे वापस उसी कबीले में भेज दिया जाएगा। इसीलिए उसने पार्वती से वह प्रार्थना की थी। अब उनकी सहमति पाकर उसे मानो सब कुछ मिल गया था।

रुद्रायन – 2

रुद्रदेव ने पुत्र का नाम रखा - विनायक।

दो दो माताओं की देखभाल में विनायक का पालन-पोषण होने लगा। पार्वती को सदैव यह चिन्ता रहती कि उसका पुत्र दुर्बल न रह जाए इसलिए वह उसे नित्य ही पोषक आहार दिया करती। इधर गंगा भी उसे खिलाने-पिलाने में कोई कसर न छोड़ती थी। परिणामतः बच्चा अत्यन्त तीव्र गति से पुष्ट होने लगा। कम आयु में ही वह स्वस्थ सबल और गोल मटोल हो गया।

वन के पशु-पक्षियों से उसे बड़ा प्रेम था। छोटा था तो पिता के साथ वन्य पशुओं के बच्चों के साथ खेला करता। चूहों और खरगोशों से उसकी अच्छी मैत्री हो गयी थी। जब भी वह कुछ खाने बैठता तो खाता कम बिखेरता अधिक था। उसके बिखेरे हुए भोजन को अवसर पाते ही चूहे आकर खाने लगते। विनायक उन्हें भोजन करते देख बड़ा प्रसन्न होता।

उसी वन में एक हथिनी ने सुन्दर शिशु को उन्हीं दिनों जन्म दिया था। बहुधा वह अपने बच्चे के साथ इनकी गुफा की ओर निकल आती, तब निडर होकर नन्हा विनायक उसे अपने नन्हे हाथों से अपनी भोजन सामग्री खिला दिया करता। इस प्रकार विनायक की मैत्री उस हाथी के बच्चे के साथ भी हो गयी। विनायक उसे देखते ही 'गन्नू गन्नू' कह कर ताली बजाने लगता। तीन वर्ष की आयु में ही विनायक पाँच वर्ष के बालक के समान दिखाई देने लगा। वह अत्यन्त प्रखर बुद्धि वाला था। जब वह शुद्ध साफ शब्दों में अपनी बात कहता तो यह प्रतीत ही नहीं होता था कि कोई तीन वर्ष का बच्चा बात कर रहा है।

एक दिन रुद्रदेव ने आग्रह पूर्वक कहा -

"उमा! अब हमें कैलाशपुरी लौट चलना चाहिए। वहाँ की राज्यव्यवस्था देखना आवश्यक है। यद्यपि नन्दीश्वर के रहते मुझे कोई चिन्ता नहीं है फिर भी..."

"स्वामी!"

"हाँ उमा! देखो, अब हमारा विनायक भी बड़ा हो रहा है। उसे भी जन-समाज में रह कर वहाँ की व्यवहार-शिक्षा लेनी चाहिए। तुम्हारे माता-पिता भी हमारा समाचार जानने के लिए उत्सुक होंगे। विशेषकर तुम्हारी माता की चिन्ता का तो ओर-छोर ही न होगा।"

रुद्रदेव ने चुटकी ली।

"हाँ स्वामी! यह तो आप उचित ही कह रहे हैं परन्तु..."

"अभी भी परन्तु? परन्तु क्या उमा?"

"सोचती हूँ यदि हमारा प्रथम पुत्र भी साथ होता तो..."

"उमा!"

"हाँ प्रभु! न जाने क्यों मेरा हृदय यह मानने के लिए तैयार ही नहीं होता कि वह जीवित नहीं है।"

"तो? क्या कहता है तुम्हारा मन?"

रुद्रदेव ने पूछा।

"मेरा मन कहता है कि मेरा पुत्र जीवित है और जहाँ भी है सुरक्षित है।"

उमा बोली।

"यदि ऐसा है तो...। उमा! हमें कैलाशपुरी चलना ही चाहिए, अब!"

"हाँ स्वामी! यदि आप उचित समझते हैं तो चलिए।"

उमा की सहमति पाकर उसी रात्रि रुद्रदेव ने संकेत बाण आकाश में छोड़ दिया।

नन्दीश्वर की इतने वर्षों की प्रतीक्षा फलीभूत हुई। दूसरी प्रातः ही वह रथ सजवा कर आठ प्रशिक्षित सैनिकों के साथ उन्हें लेने कामद-गिरि की ओर चल पड़े।

वर्षों बाद नन्दीश्वर और रुद्रदेव का मिलन हुआ तो आँखें बरसने लगीं। देर तक नन्दीश्वर को बाहुपाश में जकड़े रुद्रदेव अश्रु बहाते रहे। नन्हे विनायक को देख कर तो नन्दीश्वर की प्रसन्नता की सीमा न रही। बहुत देर तक वे उस बालक को गोद में उठा कर खिलाते रहे। कभी उसे सिर पर

रुद्रायन – 2

बैठा लेते तो कभी कन्धे पर उठा लेते। कभी पीठ पर बैठा कर जंगल में दौड़ पड़ते। शीघ्र ही विनायक उनसे घुल मिल गया।

उस रात नन्दीश्वर और रुद्रदेव में सुख दुख की बातें होने लगीं। कैलाशपुरी में सब कुछ ठीक था। सभी प्रसन्न थे और अपने स्वामी के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे। कुछ दिनों पूर्व नारद मुनि, सप्तर्षि-गण तथा अन्य क्रषि मुनि भी आए थे और रुद्रदेव के अज्ञातवास की बात जान कर चले गये।

रुद्रदेव ने फिर अपनी कथा सुनाई और अपने प्रथम शिशु के अग्निदाह की दुर्घटना का वर्णन करने लगे। उस समय संयोग से गंगा उनके लिए जल ला रही थी। रुद्रदेव की बात सुन कर वह ठिठक गयी।

"प्रभु!"

"हाँ गंगा! लाओ। पानी इधर रख दो।"

"आप कुछ अग्निदाह...प्रथम शिशु की बात कर रहे थे।"

संकोच से पूछा गंगा ने।

"हाँ गंगा। कभी अवसर नहीं आया जो तुम्हें बताता।"

रुद्रदेव ने पूरे विस्तार से नन्दीश्वर और गंगा को प्रथम पुत्र के असमय जन्म तथा उस रात्रि के अपने अर्द्धजाग्रतावस्था के अनुभव, अग्निदाह तथा उसके बाद किसी साए को देखने के विषय में भी बताया।

"पता नहीं वह मेरा भ्रम था या सत्य में ही मैंने कोई छाया पुरुष देखा था। कुछ कह नहीं सकता।"

"आपने सत्य ही देखा था प्रभु!"

गंगा बोल पड़ी।

"क्या कहना चाहती हो?"

रुद्रदेव ने चौंक कर पूछा।

"सत्य असत्य मैं नहीं जानती प्रभु! परन्तु कई वर्ष पूर्व हमारे कपोत कबीले का मुखिया पावक इसी वन से किसी शिशु को ले गया था और यहाँ आग लगा गया था जिससे यह समझा जाता कि शिशु जल कर भस्म हो गया।"

"क्या कह रही हो तुम? कहाँ है वह शिशु?"

"पावक पुत्रहीन है प्रभु! सम्भवतः वह उस पुत्र को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था। किन्तु..."

"किन्तु क्या गंगा?"

"किन्तु उसका यह असद मनोरथ सिद्ध नहीं हुआ प्रभु! शिशु को लेकर जब वह नदी पार कर रहा था तब उसके हाथ से छूट कर वह बालक गंगा में गिर गया।"

"फिर?"

"पता नहीं स्वामी! पावक तभी डर कर भाग गया था। उसके बाद क्या हुआ मैं नहीं जानती।"

गंगा ने बताया।

रुद्रदेव ने सिर पर हाथ रख लिया -

"हे ईश्वर! अग्नि से बचा तो जल में समा गया।"

"आप इस प्रकार निराश न हों प्रभु! यदि देवी पार्वती को विश्वास है कि उनका पुत्र जीवित है तो सम्भवतः यही सत्य हो। माँ का हृदय असत्य नहीं कहता। हम कैलाशपुरी पहुँचते ही आपके प्रथम पुत्र की खोज करने के लिए गुप्तचरों को भेज देंगे प्रभु!"

"हाँ नन्दीश्वर! यही करना होगा अब। हम कल प्रातः ही यहाँ से प्रस्थान कर देंगे जिससे तीसरे प्रहर तक कैलाशपुरी पहुँच जाएँ।"

रुद्रदेव ने अपना निर्णय सुना दिया।

वह रात्रि व्यवस्था करने में ही बीत गयी। दूसरे दिन कैलाशपुरी पहुँच कर सर्वप्रथम नन्दीश्वर ने विशेष शक्तिसम्पन्न गुप्तचरों को बुलाया और उन्हें रुद्रदेव के प्रथम पुत्र को ढूँढ कर उसके सम्बन्ध में समस्त जानकारी प्राप्त करके आने का आदेश दे दिया। प्रमदावन से आते समय विनायक का प्रिय मित्र गन्नू भी उनके रथ के पीछे आने लगा तो उसकी माता भी अपने बच्चे के साथ ही कैलाशपुरी आ पहुँची। पार्वती ने रुद्रदेव

रुद्रायन – 2

से कह कर उन दोनों माता पुत्र (हथिनी और उसके पुत्र गनू) को पशुशाला में भिजवा कर उनके रहने की व्यवस्था करवा दी।

कैलाशपुरी में आकर रुद्रदेव एक बार फिर राज्य के कार्यों में व्यस्त हो गये। उमा की गोद में नन्हा विनायक था जिसे वह प्राणों के बल रखती थी। एक पल के लिए भी बालक उसकी आँखों से दूर होता तो अधीर हो जाती। बालक की विशेष देखरेख के लिए पार्वती ने सन्देश भिजवा कर अपने मातृ-गृह से अपनी पुरानी सेविका चित्रवती को बुलवा लिया था।

चित्रवती ने पार्वती की बाल्यावस्था से देखरेख की थी और वह शिशु-पालन में निपुण थी। उसके हाथों में विनायक को सौंप कर पार्वती निश्चिन्त होकर पति के साथ राज्य के कार्यों में भी भाग लेने लगीं। राज्य प्रमुखों की सभा में भी वे बढ़ चढ़ कर भाग लेती थीं। उनकी बुद्धि विवेक तथा दयालु स्वभाव का सभी लोहा मानते थे। शीघ्र ही वह कैलाश वासियों की माता के समान पूज्या हो गयी। उनके आदेश को रुद्रदेव का ही आदेश समझा जाता था। रुद्रदेव शासन को कठोरता पूर्वक संचालित करते थे। अनुशासन में तनिक सी भी ढील उन्हें पसन्द न थी। कर्तव्य के प्रति अवहेलना या आज्ञा-पालन में विलम्ब उन्हें कुद्ध कर देता था किन्तु पार्वती दया की मूर्ति थीं। उनके द्वार पर जाकर कोई खाली हाथ नहीं लौटता था। किसी की पुकार उनके दरबार में अनसुनी नहीं रह पाती थी।

कुछ समय यों ही बीत गया। रुद्रदेव के प्रथम पुत्र की खोज खबर लेने के लिए गये हुए सेवक लौटे नहीं थे। बहुधा पार्वती उसे याद करके दुखी हो जाती थी। क्या हुआ होगा उसके साथ? उतनी ऊँचाई से गंगा की तीव्र धारा में गिरने पर क्या वह नन्हा शिशु जीवित बच पाया होगा? वह तो यों भी समय से पूर्व जन्म लेने के कारण दुर्बल था। फिर...?

कितने ही प्रश्न पार्वती और रुद्रदेव के हृदय को मथने लगते थे जिनका कोई उत्तर नहीं था। उनका वात्सल्य भरा हृदय पुत्र के काल-कवलित हो जाने की बात को किसी भी प्रकार स्वीकार नहीं कर पाता था।

ऐसे ही मानसिक विचलन में रुद्रदेव पुनः पर्यटन के लिए चल पड़े। उनकी बड़ी इच्छा थी कि पार्वती भी उनके साथ चले परन्तु नन्हे विनायक को लेकर यात्रा करना उचित नहीं था और पार्वती उसे छोड़ कर कहीं जाने के लिए तैयार भी नहीं थीं। अन्ततः रुद्रदेव ने अकेले ही जाने का मन बनाया।

"अच्छा होता स्वामी! यदि हम दोनों साथ चलते।"

पार्वती बोली।

"हाँ उमा! परन्तु विनायक अभी बहुत छोटा है।"

"वह मेरे बिना नहीं रह सकेगा।"

"और तुम? तुम रह सकोगी उसके बिना?"

रुद्रदेव ने पूछा।

"नहीं!"

पार्वती संकुचित हो उठीं - "मैं भी उससे बहुत दिनों तक दूर नहीं रह सकूँगी स्वामी! उसे मेरी आवश्यकता है अभी!"

"हाँ प्रिये! उसे भी तुम्हारी आवश्यकता है और तुम्हें भी उसकी। तुम यहीं रह कर उसकी देखभाल करो। मैं शीघ्र ही लौट आऊँगा।"

पार्वती को आश्वस्त करके रुद्रदेव अपनी यात्रा पर चल पड़े। कितने ही दिन यों ही यहाँ-वहाँ भटकते बीत गये। कहीं भी मन को शान्ति न

रुद्रायन – 2

मिली। बार-बार उनका अन्तर्मन उन्हें ही दोष देता रहता। सम्पूर्ण विश्व की आशा भरी आँखें उन पर केन्द्रित थीं। त्याग, दया और अहैतुकी कृपा का जिसे केन्द्र माना जाता था, जो शरण में आए हुए लोगों की रक्षा प्राणों की बाजी लगा कर किया करता था वही रुद्रदेव अपने ही नन्हें असहाय और दुर्बल शिशु की रक्षा न कर सके। उनकी आत्मा बार-बार उन्हें कचोटती रहती। क्यों की ऐसी असावधानी? पार्वती को अग्नि के पास से जब दूसरे कक्ष में ले आए, उसी समय उस शिशु को भी क्यों नहीं उठा लाए? यदि उस दिन यह असावधानी न की होती तो आज वह शिशु भी पार्वती की गोद और उनके अँगन में खेल रहा होता। यद्यपि पार्वती उन्हें इसके लिए दोष नहीं देती थी किन्तु वे स्वयं अपने ही हृदय को कैसे समझाएँ? उमा की आँखों में जब तब उमड़ आने वाले आँसू क्या उन्हें दोष नहीं देते?

और वह पावक...। उसका विचार आते ही रुद्रदेव का तन मन जल उठता। क्रोध से मुट्ठियाँ भिंच जातीं। उसका इतना साहस कि वह उनके बच्चे को इस प्रकार चुरा ले गया...। चुरा ही ले गया होता तो भी ठीक था। रुद्रदेव स्वयं जाकर उसका मान-मर्दन करके अपने पुत्र को लौटा लाते परन्तु वह अधम तो उस शिशु को सँभाल भी न सका। उसकी रक्षा भी न कर सका। पेड़ के तने को टिका कर बनाए गये पुल पर चलने के लिए सावधान रहना पड़ता है। चोर के पास समय या धैर्य कहाँ जो सावधान रह कर पुल पार कर पाता? फिसल ही गया आखिर ... और फिर अपनी प्राणरक्षा के लिए शिशु को छोड़ दिया। न जाने गंगा की तीव्र धारा उसे कहाँ बहा कर ले गयी होगी। पता नहीं वह जीवित भी होगा या नहीं।

मन की व्यग्रता उन्हें उसी गंगा तट पर ले गयी जहाँ शिशु के गिरने के विषय में गंगा ने बताया था। उस स्थान पर गंगा का पाट कुछ संकरा हो गया था और तटवर्ती वृक्ष टूट कर इस प्रकार गिर पड़ा था जिससे गंगा की धारा के ऊपर एक पुल जैसा बन गया था। कबीले वालों ने अपनी सुविधा के अनुसार उस वृक्ष की अतिरिक्त टहनियों और डालियों को काट कर हटा दिया था। उस प्राकृतिक पुल पर चढ़ कर एक बार में एक व्यक्ति सावधानीपूर्वक चल कर दूसरी ओर पहुँच सकता था। जंगली

जानवरों द्वारा भी उस पुल का प्रयोग किया जाता था। उस काई लगे पुराने वृक्ष पर चढ़कर पावक ने उसे शीघ्रता से पार करने का प्रयत्न किया होगा तभी तो गोद में लिए हुए शिशु को गिरा बैठा था।

न जाने कहाँ गया होगा वह।

दुखी हृदय से रुद्रदेव गंगा की धारा के साथ ही साथ दूर तक चलते रहे। यद्यपि वे उस शिशु को ढूँढ़ने का उद्देश्य लेकर नहीं निकले थे परन्तु फिर भी मन के किसी कोने में एक नन्हीं सी आशा की किरण छिपी थी, जो उन्हें इधर-उधर भटका रही थी। गंगा के किनारे चल कर कितने ही बनों, गाँवों, बस्तियों को पार करते आगे बढ़ते रहे। मार्ग में उनका जन-सेवा का कार्य भी साथ-साथ चलता रहा। सामान्य ग्रामीण की वेशभूषा में कन्धे पर केसरिया झोली लटकाए गाँव-गाँव, बस्ती-बस्ती भटकते रुद्रदेव जहाँ जी चाहता वहाँ ही वह अपनी धूनी रमा लेते। दाहिने हाथ में त्रिशूल लिए थे वे जिसके तीन शूलों के नीचे आधार में डमरू बँधा हुआ था। कंठ में बड़े-बड़े रुद्राक्षों की माला थी। किसी भी द्वार पर पहुँच कर 'अलख निरंजन' की हाँक लगाते तो गृह स्वामी या गृहिणी को बाहर आना ही पड़ता। किसी के बच्चे को भभूत देकर आशीर्वाद देते तो किसी का भविष्य बाँचने लगते। उनके मीठे बोल और अद्भुत ज्ञान से बँध कर लोग उनके साथ चल पड़ते।

बस्ती के बाहर स्थित एकान्त क्षेत्र में ही डेरा लगता उनका। रात्रि व्यतीत करने के लिए ऐसे स्थान ही निरापद हो सकते हैं ऐसा स्वयं रुद्रदेव का विचार था। इसी प्रकार घूमते-फिरते वे काशी जा पहुँचे।

काशी भगवान विश्वनाथ की नगरी कही जाती है। चिरकाल से वह बाबा विश्वनाथ को ही अपना स्वामी मानती चली आ रही है। कहते हैं कि प्रलयकाल में भी जब सारा संसार जलमग्न हो जाता है तब केवल काशी नगरी ही विनष्ट नहीं होती। वह अनादिकाल से है और अनन्तकाल तक रहेगी। ऐसी शाश्वत और पावन नगरी में पहुँच कर रुद्रदेव को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। वे पूर्व में भी एक बार नन्दीश्वर के साथ यहाँ आ चुके थे। न जाने काशी पुरी के वातावरण में ऐसी क्या विशेषता थी कि जो भी वहाँ

रुद्रायन – 2

आता जैसे वहीं का होकर रह जाता। वहाँ के शंक्वाकार देव-स्थलों में जाने पर जैसे मन के सभी दोष, पाप, ताप स्वयं ही नष्ट हो जाते थे।

रुद्रदेव ने वहीं कुछ दिन निवास करने का निश्चय किया।

नगरी के निकट बस्ती से बाहर गंगा के तट पर ही था उसका शमशान घाट जहाँ मृतकों को जलाने की व्यवस्था थी। दिन रात वहाँ शव जलाए जाते थे। दिन में काशी में अलख जगाने के बाद रुद्रदेव शमशान घाट पर जा पहुँचे। अपनी झोली और सिर पर बाँधा हुआ कपड़ा खोल कर किनारे रखा। त्रिशूल को झटके से खींच कर जमीन पर मारा तो वह गीली रेती में धूँस कर सीधा गड़ गया।

रुद्रदेव ने गंगा के शीतल जल में स्नान किया और वस्त्र लपेट कर झोली उठाई : त्रिशूल उखाड़ा और 'अलख निरंजन' का उद्घोष करते एक चिता के निकट जा खड़े हुए।

यह चिता नगरी के श्रेष्ठि - पुत्र की थी जिसकी मृत्यु उसी दिन हो गयी थी। माता-पिता का इकलौता पुत्र था वह। सुन्दर, सुर्दर्शन और मासूम। अभी आयु के पच्चीस बसन्त भी नहीं देखे थे उसने।

शव के निकट बैठे पिता और परिजन अश्रु बहा रहे थे। अन्य सुहृद-जन सेवकों का चिता तैयार करने में सहयोग कर रहे थे। चन्दन की बहुमूल्य लकड़ियों से चिता सजाई जा रही थी।

रुद्रदेव मृतक की अर्थी के निकट जा खड़े हुए। त्रिशूल एक ओर गाढ़ कर उद्घोष किया -

"अलख निरंजन!"

नगर सेठ ने सिर उठा कर देखा। सामने खड़े रुद्रदेव को वेश-भूषा के अनुसार महात्मा साधु समझ कर नमस्कार किया।

"दुखी क्यों हो भाई?"

रुद्रदेव ने पूछा।

"आप तो स्वयं अन्तर्यामी हैं बाबा! मेरा एक ही पुत्र था। आज वह भी काल के गाल में समा गया।..."

सेठ ने रोते हुए कहा।

"तो इसमें दुखी होने का क्या कारण है सेठ जी? तुम जानते हो - कितने ही लोग प्रतिदिन देह छोड़ते रहते हैं। मृत्यु तो अवश्यम्भावी है। इसे तो एक दिन आना ही होता है। उसका तो स्वागत करना चाहिए न कि विलाप।"

रुद्रदेव ने विरक्त भाव से कहा।

"हाँ बाबा! ठीक कहते हैं आपा मृत्यु तो सभी को आती है। उससे कोई बच नहीं सकता। परन्तु ऐसी मृत्यु तो दुख ही देती है। मेरा पुत्र किसी सद्कार्य को करते हुए नहीं मरा। किसी के सम्मान की रक्षा करते हुए या युद्ध भूमि में उसने प्राण नहीं त्यागे... माता-पिता के प्रति अपने कर्तव्य पूरे नहीं किये...!"

"तो? कैसे मृत्यु हुई इसकी?"

"पता नहीं क्या हुआ। सुबह स्नान किया। पूजन के लिए मन्दिर की ओर जा रहा था कि ठोकर खाकर गिर पड़ा... "

सेठ फिर फफक उठा।

"हुँ!"

रुद्रदेव ने हुंकार भरी।

वे बढ़ कर शव के पास पहुँचे।

"इसका मुख खोल दो।"

उन्होंने सेठ से कहा।

सेठ ने बढ़ कर शव का मुख खोल दिया।

चौंक पड़े रुद्रदेव! शव के मुख की कान्ति कम नहीं हुई थी। ऐसा लग रहा था जैसे वह गहरी नींद में हो। रुद्रदेव ने उसके मुख पर हाथ फेरा। अभी तक शव हिम-शीतल नहीं हुआ था। वे झुक कर उसके पास बैठ गये और अर्थी के बन्धन खोलने लगे।

"यह क्या कर रहे हैं आप?"

कुछ स्वर विरोध में उठे।

रुद्रायन – 2

"इसे खोल दो नगर श्रेष्ठि!"

रुद्रदेव ने सेठ की ओर देखते हुए आदेश दिया तो वह शीघ्रता से शव के बन्धन खोलने लगा।

रुद्रदेव ने उसकी नाड़ी का परीक्षण किया। हृदय की गति को सुनने का प्रयास किया। पैरों के तलवे को छू कर देखा। सब निष्क्रिय। परन्तु वे उसकी यथास्थिति को भली-भाँति समझ चुके थे। युवक जीवित था। उसके प्राण मस्तिष्क में जाकर गहन निद्रा में चले गये थे। उन्होंने अपनी झोली में हाथ डाल कर कुछ जड़ी-बूटियाँ निकालीं। उस औषधि को अपने हाथ में लेकर सेठ से बोले -

"इसे उधर ले चलो और रेत पर लिटा दो।"

यह कह कर वे स्वयं शीघ्रता से गंगा की ओर बढ़ गये।

सेठ को वैसा ही करता देख कर साथ आये लोगों ने विरोध किया।

"सेठ जी! आप भी क्या पागल हो गये हैं? एक अनजान व्यक्ति के कहने पर यह क्या करने जा रहे हैं? शव को चिता पर लिटाइए।"

"नहीं! चुप रहो सब! मुझे वही करने दो जो मैं कर रहा हूँ। उस अज्ञात व्यक्ति के रूप में शायद बाबा विश्वनाथ ही आए हैं।"

सेठ ने श्रद्धा से हाथ जोड़ कर अदृश्य बाबा विश्वनाथ को प्रणाम किया तथा पुत्र के शव को सहायकों के साथ मिल कर उठा कर रेत पर लिटा दिया जहाँ रुद्रदेव ने संकेत किया था।

गंगा तट से दो पत्थर के टुकड़े लेकर औषधि पर गंगा नदी का पवित्र जल छिड़क कर रुद्रदेव ने संजीवनी मन्त्र का जाप करते हुए औषधि तैयार की और लाकर मृत युवक के मुख में डाल दी। अपने कमंडल से जल लेकर वे बूँद-बूँद कर उसके मुख में टपकाने लगे। बहुत देर हो गयी। कुछ प्रतिफल न मिला। सेठ के चेहरे पर निराशा छाने लगी। परन्तु रुद्रदेव इस सबकी उपेक्षा करके धैर्य पूर्वक अपने कार्य में लगे रहे। उनके होंठों पर निरन्तर मन्त्र जाप चल रहा था। बीच-बीच में कुछ बूँद औषधि की वे उसके नासा-छिद्रों में भी टपकाते रहे। आधे प्रहर के थका देने वाले श्रम के बाद युवक की पलकों पर स्पन्दन हुआ और वह हल्की-

हल्की साँस लेने लगा। हृदय की धड़कन भी मन्द गति से प्रारम्भ हो गयी।
प्रहर भर बाद वह उठ बैठा।

अपने चारों ओर खड़े स्वजनों को देख कर वह पूछने लगा -

"यह मुझे कहाँ ले आए बाबा? कहाँ हूँ मैं?"

सेठ जी की आँखें प्रसन्नता के आवेग से छलछला उठी। उसने पुत्र
को सीने से लगा लिया।

"बाबा विश्वनाथ की जय!"

"धन्य हो बाबा!"

"जय हो स्वामी विश्वनाथ!"

सेठ जी ने पुत्र के पुनर्जीवन के आनन्द को आत्मसात करने के बाद
जीवनदाता को धन्यवाद देना चाहा किन्तु तब तक वे अन्यत्र जा चुके थे।
चारों ओर कहीं दिखाई नहीं दिये थे।

"मैंने कहा था न! स्वयं बाबा विश्वनाथ मानव-रूप धारण करके मेरे
पुत्र को जीवनदान देने आए थे। तभी तो अन्तर्धान हो गये।"

सेठ ने कृतज्ञता के भार से दब कर कहा -

"जय हो बाबा विश्वनाथ!"

"आप धन्य हो बाबा!"

"हम पर यों ही अपनी कृपा बनाए रखना बाबा! आप ही काशी के
स्वामी हो। काशी के मालिक हो। हमें अनाथ बना कर कहीं मत जाना
बाबा!"

बाबा विश्वनाथ के जयकारों से गगन गुँजाते काशी-वासी सेठ के
पुत्र के साथ आनन्द से नाचते गाते लौट चले। उस समय रुद्रदेव एक अन्य
चिता के पास बैठे धूनी रमाने में लगे थे।

रुद्रायन – 2

चमत्कारों की कथा हजार पंख लगा कर उड़ती है और अपनी सुवास चारों ओर फैलाती चली जाती है। और फिर ऐसा चमत्कार जैसा कभी देखा न सुना! क्या मर कर भी कोई जीवित हो सकता है? धर्मराज के दरबार में जाकर कौन लौटता है? लेकिन सच ही कहा गया है - सन्त, महात्मा ईश्वर के समान शक्तिशाली होते हैं। जिसे चिता पर लिटाया जाना था वह हँसता खेलता घर लौट आया। इससे बड़ी उपलब्धि माता पिता तथा परिजनों के लिए और क्या होती?

दूसरे दिन प्रातः ही नगर-श्रेष्ठि अपने पुनर्जीवित पुत्र को लेकर श्मशान की भूमि पर भटकने लगा। उसे अपने पुत्र के प्राणदाता की तलाश थी। बहुत देर भटकने पर वह औघड़ जोगी गंगा की लहरों में अठखेलियाँ करता मिल गया। दोनों पिता-पुत्र उसके तट पर आने की प्रतीक्षा करते रहे। जी भर कर स्नान करने के बाद रुद्रदेव ने सिकता भूमि पर पाँव रखा तो दोनों उनके चरणों पर गिर पड़े।

"रक्षा करो प्रभु! हमें अपनी शरण में ले लो!"

"अब क्या हो गया? उठो, उठो!"

रुद्रदेव ने चकित होकर उन्हें उठाया। श्रेष्ठि-पुत्र ने तब भी उनके चरण न छोड़े।

"उठो वत्स! क्या चाहते हो?"

"स्वामी! आप रुष्ट न होने का वचन दें तो कुछ कहूँ।"

श्रेष्ठि-पुत्र ने कहा।

"हाँ-हाँ कहो। निर्भय होकर कहो। वचन देता हूँ - तुमसे रुष्ट नहीं होऊँगा।"

रुद्रदेव हँस कर बोले।

"यह जीवन आपने दिया है स्वामी!"

"क्या कहना चाहते हो?"

"अपने घर परिवार, सम्बन्धियों के लिए तो मैं मृत ही हो चुका था प्रभु! उन्होंने तो मुझे अन्तिम विदाई दे ही दी थी। अब उस घर-परिवार से मुझे कुछ नहीं लेना।"

"ऐसा क्यों कह रहे हो? वहाँ तुम्हारे माता-पिता हैं। उन्हें तुम्हारी आवश्यकता है।"

रुद्रदेव ने समझाते हुए कहा।

"मुझे आप अपनी सेवा में ले लीजिए प्रभु!"

"यह क्या पागलपन है? अपने पिता की ओर देखो। अपनी माता की ममता का अपमान मत करो। तुम्हारी पत्नी तुम्हारे बिना कैसे रहेगी। यह तो सोचो।"

"मैं अब कुछ नहीं सोचना चाहता प्रभु! इस संसार की माया छोड़ कर अब आपकी शरण में आया हूँ। मुझे अपने साथ ले लीजिए।"

उसने पुनः आग्रह किया।

"नहीं नहीं! यह सम्भव नहीं है। मैं एकाकी ही रहना चाहता हूँ। यही मुझे प्रिय है।"

"मैं आपके चरण छोड़ कर कहीं नहीं जाऊँगा प्रभु! मेरा त्याग मत कीजिए।"

श्रेष्ठि-पत्र रुद्रदेव के चरणों से लिपट गया।

"ठीक है। मेरी भी एक शर्त है। तुम्हें मेरी बात माननी होगी।"

"अवश्य प्रभु! आप आज्ञा दीजिए।"

"तो ठीक है। जब तक मैं यहाँ रहूँगा। तुम मेरे साथ रह सकते हो। उसके बाद तुम्हारे भावी जीवन का निर्धारण मैं करूँगा और तुम्हें उसे स्वीकार करना होगा।"

रुद्रदेव ने उसके हठ को देखते हुए कहा।

"जो आज्ञा प्रभु!"

"ठीक है। आओ मेरे साथ।"

रुद्रदेव किनारे पर से अपनी झोली और त्रिशूल लेकर शमशान भूमि के प्रवेश मार्ग के निकट स्थित वट-वृक्ष की ओर चल दिये।

"तुम्हारा नाम क्या है वत्स?"

रुद्रायन – 2

मार्ग में उन्होंने पूछा।

"माधव! परन्तु यह नाम तो इस देह के साथ ही छूट गया। अब मेरा नामकरण आप ही कर दें।"

उसने हाथ जोड़ कर कहा।

"अच्छा! मैं तुम्हें भैरव कहूँगा। आज से तुम्हारा यही नाम होगा।"

"अवश्य प्रभु!"

उसने सिर झुका कर स्वीकार किया।

"अब आप लौट जाइए सेठ जी! जब तक मैं काशी में रहूँगा भैरव मेरे साथ मेरी सेवा करेगा।"

रुद्रदेव ने नगर-श्रेष्ठि से कहा।

"मेरा अहोभाग्य प्रभु! मेरे लिए क्या आदेश है?"

"आप अपने भवन पधारें। घर, परिवार, व्यापार, आदि सँभालें। काशी के नगरवासियों की सेवा करें।"

"एक निवेदन मैं भी करूँ प्रभु!"

नगर-श्रेष्ठि ने विनम्र भाव से कहा।

"कहिए!"

"आप जहाँ कहें मैं वहाँ एक कुटिया बनाना चाहता हूँ। जब तक आप यहाँ रहेंगे आपकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मैं अपनी सेवाएँ देना चाहता हूँ।"

"मेरी आवश्यकताएँ बहुत अल्प हैं नगर-श्रेष्ठि! मेरी सेवा के लिए आपका पुत्र है न? यह स्वयं मेरे साथ रह कर सब व्यवस्थाएँ कर लेगा। मुझे कुटिया की आवश्यकता नहीं है। यह वट-वृक्ष है न! इसकी घनी छाया मेरा आवास होगी।"

रुद्रदेव ने स्पष्ट किया और अचानक ही त्रिशूल से डमरु निकाल कर जोर-जोर से बजाने लगे।

नगर-श्रेष्ठि ने भयभीत होकर उनकी ओर देखा। रुद्रदेव की भौंहें संकुचित हो रही थीं। उसने पृथ्वी पर सिर रख कर प्रणाम किया और शीघ्रता से नगर की ओर प्रस्थान कर गया।

रुद्रदेव ने वट-वृक्ष के निकट त्रिशूल गाढ़ दिया और उसकी एक उभरी हुई जड़ पर बैठ कर आँखें बन्द कर लीं। उन्होंने सोचा - धन वैभव में पला यह श्रेष्ठि-पुत्र अधिक देर उसके साथ नहीं रह पाएगा। यहाँ उसे खाने-पीने और रहने की सुख-सुविधा न मिलेगी तो स्वयं ही भाग खड़ा होगा।

किन्तु भैरव भी अपनी धुन का पक्का निकला। रुद्रदेव को नेत्र मूँद कर ध्यान करते देखा तो स्वयं धीरे-धीरे उनके आसपास के स्थान पर बिखरी पत्तियाँ हटा कर वह स्थान साफ कर दिया। फिर कुछ दूर उगे केले के बड़े-बड़े पत्ते लाकर भूमि पर बिछा कर आसन बना दिया। कमंडल में गंगा-जल लाकर रखा और स्वयं अपने सिर पर बँधे वस्त्र को उतार कर झोली बना कर कन्धे पर टाँग लिया और नगर में भिक्षा माँगने चल पड़ा।

दोपहर बाद लौटने पर उसने रुद्रदेव को केले के पत्तों के आसन पर बैठा हुआ पाया।

"कहाँ चले गये थे वत्स!"

उन्होंने पूछा।

"नगर में भिक्षा माँगने चला गया था प्रभु!"

"क्या लाये?"

"यह जौ का आटा और...।"

"और?

"और यह एक प्याज है प्रभु! एक घर से गृहणी ने यही दिया।"

"तो भोजन की व्यवस्था करो भैरव!"

रुद्रदेव ने आदेश दिया।

भैरव अपने अनश्यस्त हाथों से आटे में पानी डाल कर उसको गूँथने लगा। रुद्रदेव उसे बीच-बीच में निर्देश देते रहे। केले के पत्ते पर आटा गूँथ कर उसने छोटे-छोटे गोले से बना लिए।

"यह क्या वत्स?"

"इन्हें पकाने के लिए क्या करूँ?"

रुद्रायन – 2

भैरव ने पूछा।

"मेरे साथ आओ।"

रुद्रदेव उठ कर एक ओर चल पड़े।

भैरव उन गोलों को केले के पत्ते में लपेट कर साथ ले चला। एक स्थान पर कुछ लकड़ियाँ अभी भी सुलग रही थीं। पिछली रात में जलाई गयी चिता जल कर ठंडी पड़ चुकी थी। किन्तु अभी भी उसकी राख गर्म थी और बीच-बीच में अंगारे भी चमक रहे थे। कुछ अधजली लकड़ियाँ और कोयले के टुकड़े भी जलने से रह गये थे।

रुद्रदेव ने उन्हें एकत्र करके आग सुलगाई और उस गर्म राख में आटे के गोले दबा दिये। स्वयं एक ओर राख में पालथी मार कर बैठ गये।

"आओ! तुम भी बैठ जाओ। कुछ देर में ये आटे की बढ़िया पक जाएँगी।"

भैरव भी उन्हीं के पास बैठ कर उन्हें मनोयोग से भोजन बनाते देखता रहा। अंगारों के बीच कुछ हड्डियाँ भी थीं जिन्हें रुद्रदेव ने एक ओर कर दिया। यह सब करते हुए भी उनके चेहरे पर किसी प्रकार की विरक्ति, घृणा या उपेक्षा का भाव नहीं था। वे तो सहज भाव से आनन्दपूर्वक भोजन की व्यवस्था कर रहे थे जैसे गृहणियाँ घरों में खाना बनाया करती हैं। उनके उस सहज भाव ने भैरव को बाँध लिया। अब उसे संसार से अनुराग या विराग नहीं रहा। रुद्रदेव की सहजता जैसे संक्रमित होकर भैरव की आत्मा में उतर रही थी।

"यह शरीर पञ्चतत्त्वों के संयोग से बनता है भैरव! आकाश, पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु मिल कर संसार की सभी वस्तुओं का निर्माण करते हैं। हमारी देह का भी। इस मिट्टी की देह में जब ईश्वर का अंश प्रवेश करता है तब इसमें प्राणों का संचार हो जाता है और हम जीवित प्राणी बन जाते हैं। जब यही ईश्वर-अंश या आत्मा देह का त्याग कर देती है तो देह निर्जीव हो जाती है।"

"तो उसे जलाते क्यों हैं? क्या इसीलिए कि वह सङ् गल कर वातावरण को प्रदूषित न करे?"

भैरव ने पूछा।

"यह भी एक कारण है शरीर की अन्तिम क्रिया करने का। देह को जला कर या जमीन में गाढ़ कर उसके उन पाँचों तत्त्वों को पुनः लौटा दिया जाता है। आत्मा ईश्वर का अंश है और ईश्वर कभी किसी से कुछ नहीं लेता।"

रुद्रदेव ने कहा।

"आपको यहाँ श्मशान में भय नहीं लगता प्रभु?"

भैरव ने पूछा।

"कैसा भय? क्या हम, हमारा शरीर इससे अलग है? जीव निकल जाने पर देह मिट्टी हो जाती है। मिट्टी से कैसा भय? अग्नि चूल्हे की हो या चिता की। क्या अन्तर है दोनों में? दोनों का धर्म है जलाना। वही करती है वहाँ चलो, देखो तो शायद भोजन तैयार हो गया।"

रुद्रदेव ने लकड़ी से राख कुरेद कर आटे की बट्टियाँ निकाल लीं। वे पक गयी थीं और उनसे सोंधी-सोंधी सुगन्ध उठ रही थी। एक-एक बट्टी को उठा कर उसकी राख झाड़ कर रुद्रदेव ने पत्ते पर रखा। झोली से प्याज निकाल कर उसे घूँसा मार कर तोड़ दिया और प्रेमपूर्वक खाने लगे।

"लो भैरव! आओ। भोजन करो।"

आज्ञा पाकर भैरव भी भोजन करने लगा। उस दिन जैसी तृप्ति उसे इससे पूर्व कभी नहीं हुई थी।

शीघ्र ही भैरव ने बिना पात्र और रसोई के भोजन बनाना सीख लिया। जिस दिन भिक्षा में आटा, चावल और दाल मिले होते उस दिन उन्हें एक मिट्टी की हाँड़ी में पानी के साथ डाल कर अंगारों पर पका लेता। कभी चुटकी भर नमक, कभी गुड़ या कभी सादा ही वही पका हुआ अन्न उनका भोजन होता। कभी-कभी वे केवल फलाहार करते तो कभी निराहार रह जाते। हाँ रुद्रदेव का भंग-सेवन और धतूरे के पिसे हुए बीजों से तैयार किया गया पेय अवश्य सेवन किया जाता। कभी-कभी रुद्रदेव उमंग में आकर गांजा चिलम में रख कर दम भर लेते तो उनकी रक्तवर्णी

रुद्रायन – 2

आंखें स्वयं भैरव को भी भयभीत कर देती थीं। अच्छा गठबन्धन था गुरु और शिष्य का।

धीर-धीरे उनके शिष्यों की संख्या बढ़ने लगी। उनकी यशःपताका बन कर भैरव स्वयं काशी की गलियों में घूमता था। जब भी अवसर मिलता वह अपने प्राणदाता का यशगान करने लगता। ऐसे चमत्कारी साधु का चेला बन जाने का लोभ संवरण कर पाना बहुधा वहाँ के लोगों के लिए कठिन होता। रुद्रदेव तो जैसे स्वयं उनके आराध्य विश्वनाथ का अवतार बन कर प्रकट हुए थे। इसी कारण वह शमशान भूमि भी तीर्थ बनती जा रही थी। ऐसा स्वाभाविक भी था। स्वयं रुद्रदेव ही वहाँ आने वाले दुखी जनों का दुख निवारण करने से स्वयं को कहाँ रोक पाते थे? किसी की रोग-ग्रस्त काया के लिए औषधि देते तो किसी अवसादग्रस्त मनुष्य को चुटकी भर राख देकर उसकी देह को छू देते और वह कृतार्थ होकर चला जाता। अपनी अलमस्त बातों और गीतों से वे काशी-वासियों के लिये आनन्द का स्रोत बन गये थे। और फिर एक दिन नवीन ही घटना घटित हो गयी जिसने उनके स्वयं विश्वनाथ होने पर जैसे मुहर ही लगा दी।

चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी की तिथि थी वह। काशी नगरी के प्रसिद्ध मातृ-मन्दिर के निकट मेला लगा हुआ था। श्रद्धा तथा मान्यता के अनुसार असंख्य नर-नारी, बालक-वृद्ध गंगा स्नान कर बाबा विश्वनाथ के मन्दिर में जल चढ़ाने के बाद मातृ-मन्दिर में दर्शन करने हेतु अवश्य जाते थे। मन्दिर के विशाल प्रांगण में काले पत्थर से बनी एक विराट नारी प्रतिमा थी। वही थी उनकी मातृदेवी।

मन्दिर का प्रांगण काशी नगरी के वासियों से भरा हुआ था और बाहर का मार्ग भी। कोई आ रहा था तो कोई लौट रहा था। स्थान-स्थान पर रंग-बिरंगे लकड़ी के खिलौने, मिट्टी की बनी गुड़ियाँ और कितनी ही प्रकार की स्थियों के कार्य आने वाली वस्तुएँ बेची जा रही थीं। कहीं रंग-बिरंगी लाख, हाथी दाँत और काँच की चूड़ियों को टोकरी में रखे बनजारन हाँक लगा रही थी -

"चूड़ियाँ ले लो सुहागिनों! सतरंगी चूड़ियाँ ले लो। माता को चढ़ा दो तो सुहाग अमर हो जाएगा तुम्हारा!"

"और जिसका ब्याह न हुआ हो वह क्या करे?"

एक चंचल बालिका ने पूछा।

"उसको माता सुहाग देंगी लाडो! सुन्दर दूल्हा पाना है तो चूड़ियाँ ले जाओ।"

कहीं मातृदेवी के पूजन में प्रयुक्त होने वाले लाल रंग की गोटेदार चुनरिया और सिन्दूर बिन्दी बिक रहे थे तो कहीं रंगीन वस्त्रा चारों ओर आनन्द ही आनन्द बिखरा हुआ था। तभी उस आनन्द में व्यवधान उत्पन्न हो गया।

न जाने किधर से एक कदावर भैंसा उस मार्ग पर घुस आया। जहाँ नर-नारियों का आगमन निर्गमन भी कठिन हो रहा हो वहाँ उस विशाल पशु ने आकर भयंकर अव्यवस्था फैला दी। किसी ने उसे किनारे करना चाहा तो उसके नेत्र लाल हो गये। क्रोध से हुँकारने लगा वह। उसके नुकीले बड़े-बड़े सींगों को देख कर हृदय में भय उत्पन्न हो जाता था। क्रोध में आने पर उसके नथुनों से तीव्र वाष्प के भभूके छूटने लगे। भयंकर गर्जना करते हुए उसने चारों ओर मार काट मचा दी। अपने भयंकर सींगों को आगे कर उसने कितने ही लोगों को घायल कर दिया। किसी के पेट में सींग घुसेड़ दी तो किसी को सींगों से उछाल कर दूर फेंक दिया। बच्चों को धकेल कर गिरा दिया और अपने भारी शरीर से कुचल डाला। भगदड़ मच गयी।

दौड़ा-दौड़ा कर वह पशु काशी-वासियों का संहार करने लगा। चतुर्दिक त्राहि त्राहि की पुकार मच गयी। किसी की शक्ति उसे रोक नहीं पा रही थी। देखते ही देखते मार्ग रक्त से लाल हो गया। कितने ही लोग भगदड़ होने पर अपने ही लोगों के पैरों तले कुचल दिये गये। चारों ओर चीख पुकार मच गयी। राजा के सैनिकों को उसने अपने विशाल सिर से धकेल कर खदेड़ दिया। अखाड़े के पहलवानों को पटक दिया और अपने बल के नशे में उन्मत्त होकर मुँह उठा कर जोर-जोर से हुँकारने लगा वह।

रुद्रायन – 2

ऐसी विपत्ति में काशी के निवासी अपने एकमात्र सहायक के पास सुरक्षा की गुहार करने जा पहुँचे।

"रक्षा करो, रक्षा करो प्रभु! अब काशी-वासियों की रक्षा आपके अतिरिक्त कोई नहीं कर सकता।"

रुद्रदेव के आश्वस्त करने पर वे शान्त हुए और अपनी विपत्ति कह सुनाई।

"कैसा है वह भैंसा? उस महिष को वहाँ आते क्या किसी ने नहीं देखा? कहाँ से आया है वह?"

रुद्रदेव ने जिज्ञासा की।

"पता नहीं प्रभु! हमें तो लगता है कि वह साक्षात् यमलोक से ही आया है। आपने यमलोक से श्रेष्ठि-पुत्र को लौटा कर उसे पुनर्जीवित कर दिया इसीलिए सम्भवतः स्वयं काल-देव ने अपने महिष को काशी-वासियों का संहार करने के लिए यहाँ भेज दिया है। अब आप ही हमारी उस साक्षात् मृत्यु से रक्षा कर सकते हैं।"

"भयभीत मत हो। यदि वह काल है तो मैं महाकाल हूँ। मुझे बताओ। किधर है वह? मार्ग दिखाओ। मैं स्वयं उससे मिलना चाहता हूँ।"

रुद्रदेव ने अपने लाल-लाल नेत्र धुमा कर समाचार कहने वाले की ओर देखा तो वह स्वयं सहम उठा।

"आइए प्रभु! इस ओर से आइए। मैं आपको मातृ-मन्दिर की ओर ले चलूँगा।"

भैरव ने अपना सोटा उठा लिया। रुद्रदेव निहत्थे ही उसके साथ चल पड़े।

मातृ-मन्दिर का विशाल प्रांगण तहस-नहस हुआ पड़ा था। स्थान-स्थान पर घायलों और मृतकों के शरीर पड़े थे। चीख-पुकार और कराह के स्वर चारों ओर से उठ रहे थे। रक्त से लाल हो रही थी वहाँ की भूमि जैसे रणभूमि हो।

"उफ! इतना नरसंहार!"

रुद्रदेव तड़प उठे।

सैनिकों की टुकड़ियाँ आगे बढ़तीं परन्तु उस विशाल दैत्य सरीखे महिष के सामने उनकी एक न चलती। दूर से उन्हें देख कर ही वह दौड़ा लेता था और फिर शत्रु को धराशायी करके मैदान में पाँव पटकता घूमने लगता था।

रुद्रदेव को देख कर वह उनकी ओर झपटा। अपने स्थान से तनिक खिसक कर उन्होंने उसका वार खाली कर दिया। अपनी ही झोंक में कुछ दूर तक चला गया वहा। इस बीच रुद्रदेव मैदान के बीच में आ गये। बार बार भैंसा उन पर झपटता था और हर बार रुद्रदेव एक ओर हट कर उसका वार बचा लेतो। खीझ कर वह और अधिक वेग तथा बल से आक्रमण करता किन्तु रुद्रदेव के लाघव के आगे उसकी कोई युक्ति सफल नहीं हो रही थी। कुछ देर महिष को इसी प्रकार दौड़ा कर रुद्रदेव उससे खेल सा करते रहे। क्रोध और खीझ के कारण वह अपना आपा खो बैठा था। तब वे लपक कर महिष के बड़े और नुकीले सींगों को दोनो हाथों से पकड़ कर उससे भिड़ गये।

कितनी ही देर उनका युद्ध चलता रहा। कभी महिष रुद्रदेव को पीछे ढकेल देता तो कभी रुद्रदेव उसे कई गज पीछे जाने के लिए विवश कर देतो। लड़ते-लड़ते वे मातृदेवी की विशाल प्रतिमा के निकट जा पहुँचे। तब काशी-वासियों ने एक अद्भुत दृश्य देखा। महिष को जोर से धक्का देकर रुद्रदेव ने पीछे धकेल दिया और जब तक वह सँभलता, उन्होंने लपक कर देवी प्रतिमा के हाथ में थमा हुआ खडग खींच लिया। पल भर के लिए सूर्य के तीव्र प्रकाश में वह अस्त्र चमका और अगले ही क्षण महिष का सिर कट कर देवी के चरणों में लोट गया। उसके गर्दन से रक्त की फुहार छूटी और देवी की प्रतिमा को रक्तरंजित कर गयी। कुछ देर तड़प कर महिष की देह भूमि पर गिर पड़ी। उसकी देह से रक्त निकल निकल कर देवी के चरण धोने लगा। स्तब्ध होकर काशीवासी यह दृश्य देख रहे थे।

सबसे पहले भैरव की ही तन्द्रा टूटी। दोनों हाथों को ऊपर उठा कर उसने जयघोष किया -

रुद्रायन – 2

"जय माता की!"

भीड़ जैसे स्वप्न से जाग उठी -

"जय माता की!"

"हर हर महादेव!"

"जय बाबा विश्वनाथ!"

"अलख निरंजन!"

हर्षातिरेक से भर कर जनता चीख रही थी। जयजयकार कर रही थी। आनन्द की सरिता उफन कर बहने लगी थी -

"माता ने महिष की बलि स्वीकार कर ली।"

उग्र जयघोष करते और प्रसन्नता से भर कर मातृदेवी के सम्मुख मैदान में नाचते गाते काशी-वासियों को छोड़ कर रुद्रदेव काशी की गलियों से होकर अपनी प्रिय शमशान भूमि में पहुँच गये।

रुद्रदेव के साथ रह कर काशी के निवासियों ने एक नवीन पूजा पद्धति सीखी जिसमें शारीरिक शुद्धता या पवित्रता की अपेक्षा मानसिक शुद्धि तथा पवित्रता का अधिक महत्त्व था। यह धर्म साधारण जन का धर्म था। सिद्ध योगियों द्वारा ही शरीर की पूर्ण शुद्धि की जा सकती है। केवल वही योग द्वारा अपने शरीर को बाहर के साथ-साथ अन्दर से भी साफ कर सकते हैं अन्यथा साधारण मनुष्य अपनी आँतों को धो नहीं सकता और न ही नेति क्रिया कर सकता है। नहाने से शरीर बाहर से साफ हो जाता है परन्तु उसके अन्दर का मल तो यथावत ही रहता है अतः शरीर की अधूरी शुद्धि करने से अच्छा है मन को शुद्ध करें। असत्य-वादन, लोभ, मोह, आसक्ति आदि को छोड़ देने पर मन शुद्ध होता है और शुद्ध मन ही आराधना या ध्यान कर सकता है। रुद्रदेव शमशान भूमि को साधना के लिए सबसे पवित्र तथा श्रेष्ठ कहते थे। शमशान की राख से अधिक पवित्र तो मिट्टी भी नहीं होती। मिट्टी में अनेक प्रकार के जीवाणु तथा रोगाणु हो सकते हैं। राख सारे दुर्गुण जल जाने पर ही बनती है तो फिर उससे पवित्र और क्या है?

वहीं रह कर उन्होंने अनेक मन्त्रों की रचना की जो लोकभाषा में होने के कारण सर्वजन सुलभ थे। उसमें संस्कृत के लम्बे-चौड़े सामासिक, क्लिष्ट शब्द नहीं थे। विचित्र ही होते थे उनके मन्त्र भी। कुछ निरर्थक शब्द और कुछ उल्टे-सीधे वाक्यों से मिल कर वे बने होते। कभी-कभी तो वे किसी-किसी मन्त्रज्ञान के इच्छुक शिष्य को एक अक्षर का मन्त्र बता देते और उसका जप करके ही वह सिद्धि पा लेता।

एक दिन भैरव ने जिज्ञासा की -

"गुरुदेव! आपके मन्त्रों की भाषा निरर्थक होती है। इनसे कार्यसिद्धि कैसे सम्भव हो जाती है?"

रुद्रदेव ठहाका मार कर हँस पड़े।

"सिद्धि मन्त्रों में नहीं उनसे उत्पन्न होने वाली स्वर-लहरियों में होती है। ये ही स्वर-लहरियाँ जब साधक की आस्था का स्पर्श करती हैं तो सफलता में परिवर्तित हो जाती हैं।"

"तो आप जो उसके साथ विधि-विधान, कार्य तथा विभिन्न क्रियाएँ कराते हैं उनका क्या अर्थ?"

भैरव ने पूछा।

"उनका भी अर्थ है भैरव! क्रिया के बिना सिद्धि नहीं मिलती। और यदि मिल भी जाए तो हजम नहीं होती। जैसे भोजन करने के बाद यदि निष्क्रिय होकर बैठना पड़े तो भोजन हजम नहीं हो पाता और अपच उत्पन्न कर देता है। बस उसी प्रकार मन्त्र सिद्धि के लिए कुछ क्रियाएँ करनी आवश्यक हैं।"

"प्रभु!"

"अब बस भैरव! आज के लिए इतना ही पर्याप्त है। अब मेरा भंग का गोला तैयार करो तो कुछ चैतन्यता आए।"

कह कर रुद्रदेव ने दोनों हाथ उठा कर अँगड़ाई ली तो भैरव मुस्करा कर वहाँ से उठ गया।

'विजया' बूटी का औषधीय महत्व काशी-वासियों ने रुद्रदेव से ही जाना था। जिसे भूख न लगती, दुर्बल होता या अधिक शक्तिशाली बनने

रुद्रायन – 2

की आकांक्षा रखता हो उसे वे प्रातः सायं विजया की पत्तियों को घोट कर दूध में मिला कर पीने के साथ व्यायाम करने का भी परामर्श देते थे। विजया के सेवन के बाद ऐसी खुल कर भूख लगती थी कि जो भी मिले खा लिया जाए। विजया की तरंग में आकर तो रुखी रोटी और अधपके टिकड़ भी अमृत के समान स्वादिष्ट प्रतीत होते थे।

भंग के गोले को यूँ ही गटक जाने वाले रुद्रदेव ने काशी में आकर उसके सेवन की एक नयी ही पद्धति विकसित कर दी थी। उनकी रुचि के अनुसार उनके शिष्य विजया की पत्तियों को एकत्र करके गंगा-जल में अच्छी तरह स्वच्छ करने के बाद नदी तट की खुरदरी शिला पर रख कर छोटी सी शिला से इतना अधिक घोंटते थे कि वह शिला चट्टान से चिपकने लगती थी। उस लेप को दूध भरे घड़े में डाल कर शहद या गन्ने के रस से बनाए हुए गुड़ के साथ मिला कर रुद्रदेव के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता। उनके छक जाने के बाद वह भंग सब शिष्यों में गुरु-प्रसाद कह कर बाँट दी जाती। भैरव ने तो रुद्रदेव के समान ही वस्त्र धारण करना भी प्रारम्भ कर दिया था। वह साक्षात् रुद्रदेव की प्रतिकृति ही प्रतीत होता था। कितने ही काशी-वासियों को वह रुद्रदेव की ओर से औषधि तथा भस्म बाँटा करता था। इससे रुद्रदेव का एकान्तवास अच्छी तरह निभ जाता था।

रुद्रदेव ने उस उद्दं विशाल महिष का जन-संरक्षण के लिए वध किया था किन्तु मातृदेवी के पुजारियों ने उसे काशी के भगवान द्वारा दी गयी बलि मान ली और महिष की बति को वैध कहने लगे। एक दिन नगरी में ऐसी ही चर्चा सुन कर नगर के गणमान्य जन रुद्रदेव से मिलने उनके वट-वृक्ष तक आ पहुँचे।

"पथारिए पथारिए! ऐसा क्या हो गया जो आप सभी को इस प्रकार मेरे निकट आना पड़ा?"

रुद्रदेव ने तनिक अन्यमनस्क होकर पूछा।

"एक शंका का समाधान करना चाहते थे प्रभु! आपका दिशा-निर्देश चाहिए हमें!"

एक भद्र तथा वयोवृद्ध पुरुष ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया।

"बताइए! क्या समस्या है?"

"स्वामी!"

भैरव ने कहा।

"हाँ, कहो! तुम्हीं कहो!"

"प्रभु! उस दिन आपने उस महिष का वध करके काशी-वासियों को उसके अत्याचार से मुक्ति दिलाई थी और उनकी रक्षा की थी।"

"उस समय वही आवश्यक था भाई! वह क्रोधोन्मत्त महिष अकारण ही निरीह प्राणियों का संहार कर रहा था। ऐसी स्थिति में जनसमूह की रक्षा के लिए उस दानवाकार महिष को मारना ही एकमात्र उपाय था। इसीलिए मैंने उसे मारा।"

"यह आपकी कृपा थी प्रभु! आपने उससे काशीवासियों की रक्षा की। अब हम सभी यह जानना चाहते हैं कि मातृदेवी को महिष की बलि देकर उसके रक्त से स्नान कराने की परिपाटी जो चल पड़ी है उसके सम्बन्ध में आपका क्या आदेश है?"

"बलि की परिपाटी? मैंने तो ऐसा कुछ नहीं कहा।"

"अब मातृदेवी के उपासक इच्छा-पूर्ति के लिए भैंसे की बलि देने की मानता मानने लगे हैं। इच्छा पूर्ण होने पर वे महिष का वध करेंगे। क्या यह उचित होगा। प्रभु?"

"नहीं! पशुवध? वह भी इतने उपयोगी पशु का? क्या आपकी काली माता ने इसका आदेश दिया है? वह काली मातृदेवी की प्रतिमा रक्त-स्नान क्यों करना चाहेगी? किसने कहा ऐसा करने के लिए?"

रुद्रदेव चकित हुए।

"मातृदेवी के पुजारियों ने! उनका कहना है कि इससे देवी प्रसन्न होंगी और काशी की रक्षा करेंगी। अब उन्हें कैसे रोका जाए?"

"हाँ, यह तो विषम समस्या है।"

रुद्रदेव ने विचारपूर्वक कहा -

रुद्रायन – 2

"महिष - पालन गोपालन के समान ही उपयोगी है। भैंस दूध देती है। उसके गोबर से खाद बनने पर खेतों की मिट्टी उपजाऊ बनती है। उसका प्रयोग ईंधन के रूप में भी किया जाता है। ऐसे उपयोगी पशु का वर्ध अकारण क्यों?"

"अकारण कहाँ प्रभु! मन्त्र पूरी करना, कल्याण-कामना से देवी माँ को प्रसन्न करना कारण है न? और फिर महिष का उपयोग तो कम ही किया जाता है।"

किसी ने तर्क किया।

"तो क्या इसलिए उसे मार देना चाहिए? महिष का उपयोग वृषभ के समान ही कृषि कार्य तथा गाड़ियों को खींचने में किया जा सकता है।"

रुद्रदेव बोले।

"हम भी इसे स्वीकार नहीं करना चाहते प्रभु! परन्तु धर्म की गति तो विकट होती है। पंडे पुजारियों की अधिकता वाली इस नगरी में रह कर उनकी नीति का विरोध कैसे करें हम लोग?"

"विरोध की आवश्यकता ही कहाँ है भद्र? विरोध तो विरोध को ही जन्म देता है। हठ को तोड़ने के लिए हठ नहीं किया जा सकता।"

"तो क्या उपाय है प्रभु?"

"एक व्यवस्था बना लीजिए। यदि यह परम्परा मेरे कृत्य से उत्पन्न हुई है तो मेरा ही अनुकरण किया जाए। महिष की बलि वही देने का अधिकारी हो जो एक ही वार में भैंसे का सिर काट कर धड़ से अलग करने में समर्थ हो।"

"अन्यथा?"

"अन्यथा महिष को चिह्नित करके स्वतन्त्र कर दिया जाए। ऐसा करने से यह परिपाटी प्रतिबन्धित होगी। नियमों के अन्तर्गत होगी। काशी नगरी बाबा विश्वनाथ और माता अन्नपूर्णा की नगरी है। उन्हें बलि नहीं दी

जाती। मातृदेवी के उपासकों की बहुत अधिक संख्या नहीं है और जो है वे भी नियमबद्ध आचरण करेंगे।"

"अवश्य प्रभु! आपका आदेश और आपके नियम हम सबको शिरोधार्य हैं। इन नियमों का पालन न करने वाले काली माता के उपासक स्वयं ही काशी नगरी छोड़ कर अन्यत्र चले जाएँगे। धन्यवाद प्रभु!"

सन्तुष्ट तथा सिद्ध मनोरथ होकर काशीवासी लौट गये। रुद्रदेव ने बरगद के मोटे तने से टिक कर आँखें बन्द कर लीं। उनका व्याकुल हृदय फिर एकान्त साधना के लिए व्यग्र होने लगा।

काशी में निवास करते उन्हें बहुत समय व्यतीत हो गया था। उनकी दिव्य औषधियों तथा तन्त्र साधनाओं ने उन्हें काशी का स्वामी ही बना दिया था। कितने ही असाध्य रोगियों को वे चमत्कारिक रूप से स्वस्थ कर चुके थे। इतने दिनों में उन्होंने भैरव को वैद्य-विद्या में निपुण कर दिया था। सामान्य वनस्पतियों तथा सहज उपलब्ध हो जाने वाली वस्तुओं को औषधीय रूप देकर चिकित्सा करना उसे भलीभाँति आ गया था।

रुद्रदेव के साथ कितनी ही श्मशान-साधनाओं में साथ रह कर उसने उनमें भी सिद्धि प्राप्त कर ली थी। एकान्त साधनाओं के लिए बहुधा उन्हें गंगा के चौड़े पाट को तैर कर पार करना पड़ता और दूसरे तट के एकान्त में वे अपनी साधनाएँ सम्पन्न कर पाते थे। काशी-वासियों ने उनके मना करने पर भी भैरव तथा अन्य शिष्यों के निवास के लिए कुछ कुटिकाएँ श्मशान भूमि के प्रारम्भ में ही बना दी थीं। नगर-श्रेष्ठ ने आग्रह करके अपने पुत्र के लिए एक छोटा सा पक्का कक्ष बनवा दिया था जो भैरव-मन्दिर के नाम से जाना जाने लगा।

रुद्रदेव को काशी नगरी कुछ विशेष ही प्रिय थी इसीलिए उसकी सुख सुविधाओं की व्यवस्था करके उन्होंने राजा विश्वकेतु को उस धर्मनगरी का विशेष ध्यान रखने का निर्देश दिया। भैरव को तो वे स्वयं अपनी प्रतिकृति ही बना कर स्थापित कर चुके थे।

एक रात अमावस्या के घने अन्धकार में जब गंगा का जल तट पर टकरा कर शब्द कर रहा था, श्मशान भूमि में दो-चार चिताएँ जलती छोड़

रुद्रायन – 2

कर उसके साथ आए लोग वापस जा चुके थे और डोम भी कपाल-क्रिया आदि के बाद विश्राम कर रहा था तो रुद्रदेव ने धीरे से भैरव को पुकारा -

"भैरव!"

"हाँ प्रभु!"

"अब मुझे यहाँ से जाना होगा।"

"किन्तु क्यों प्रभु? मुझसे कोई अपराध हो गया है?"

भैरव ने व्याकुल होकर पूछा।

"नहीं वत्स!"

"आप हमें इस प्रकार निराश्रित छोड़ कर कैसे जा सकते हैं प्रभु? मेरे तो सर्वस्व आप ही हैं। मैं आपका ही पुत्र हूँ। आपने मुझे जीवन-दान दिया है, इसीलिए तो मैं अपने माता-पिता, परिवार को त्याग कर आपकी शरण में आ गया हूँ। आप मेरा इस प्रकार परित्याग नहीं कर सकते प्रभु?"

"मैं तुम्हारा परित्याग नहीं कर रहा हूँ भैरव! पुत्र बड़ा हो जाता है तो पिता उसके ऊपर अपने सारे उत्तरदायित्व सौंप कर मुक्त हो जाता है। तुम भी अब समर्थ हो गये हो। काशी-नगरी का दायित्व अब तुम्हें सँभालना होगा। यहाँ का योग क्षेम मैं तुम्हें सौंप रहा हूँ भैरव! अब तुम इसके स्वामी और रक्षक बनो।"

रुद्रदेव ने स्नेह से भैरव के शीश पर हाथ रख कर कहा।

"नहीं प्रभु! मैं यह नहीं कर सकता। काशी के प्रभु तो आप ही हैं। मैं तो आप का सेवक हूँ।"

"चलो, यही सही। सेवक हो तो क्या स्वामी की आज्ञा नहीं मानोगे?"

रुद्रदेव ने स्नेहसिक्त स्वर में पूछा।

"मानूँगा प्रभु! आपका हर आदेश सिर माथे पर है।"

"तो मैं तुम्हें काशी-नगरी का कोतवाल नियुक्त करता हूँ। काशी की सुरक्षा, न्याय व्यवस्था और कुशल-क्षेम सब तुम्हें ही देखना है अब। विश्वकेतु यहाँ का राजा है। वह राजनीति और सामरिक व्यवस्था देखेगा

डॉ. रंजना वर्मा

परन्तु काशी की आन्तरिक सुरक्षा व्यवस्था तो तुम्हें ही देखनी होगी वत्स!"

"जो आज्ञा प्रभु! परन्तु मुझे यहाँ से लौटने के लिए मत कहिए। मैं पुनः घर परिवार में नहीं लौटना चाहता। माया के जिस बन्धन को मैं आपकी छत्रछाया पाकर तोड़ सका हूँ उसमें पुनः नहीं लौटना चाहता!"

"ठीक है भैरव! तुम यहाँ रह कर अपना कार्य करना!"

"आप...आप..."

"अब मुझे जाने दो वत्स!"

"परन्तु आप लौटेंगे तो?" भैरव ने अधीर होकर पूछा।

"हाँ पुत्र! अवश्य लौटूँगा। काशी मुझे अपनी नगरी ही प्रतीत होती है। यहाँ मैं बार-बार आता रहूँगा!"

रुद्रदेव ने भैरव को आश्वस्त किया। अपनी झोली और त्रिशूल उठा कर वे अमावस्या के उस घने अँधेरे में खो गये। देर तक आँसू भरी आँखों से भैरव उस दिशा की ओर देखता रहा जिस ओर रुद्रदेव ने प्रस्थान किया था। दूर-दूर तक फैले गहन अन्धकार के अतिरिक्त उसे कुछ भी दिखाई न दिया।

○○○

रुद्रायन – 2

उमा और विनायक को जब वे कैलाशपुरी में छोड़ कर आए थे तब वह नन्हा सा बालक ही था जिसे सदैव माता के आँचल की प्रतीक्षा रहा करती थी। अब तो कैलाशपुरी छोड़े भी रुद्रदेव को कई वर्ष हो चुके थे। उनके हृदय में पत्नी-पुत्र को देखने, उनसे पुनः मिलने की आकांक्षा बलवती होने लगी थी। यों तो वे सदैव ही उनके हृदय के निकट ही थे किन्तु फिर भी... स्मृतियों के सहारे जीवन व्यतीत करना कहाँ सरल होता है?

रुद्रदेव का पर्यटन - प्रिय हृदय भी अब अपने परिवार को पुनः पाने के लिए उन्हें बार बार प्रेरित करने लगा था। उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा था जैसे उनके पत्नी और पुत्र को उनकी आवश्यकता हो। इसी ऊहापोह की स्थिति में रुद्रदेव ने काशी छोड़ा था किन्तु मन की चाह ही सदैव पूर्ण नहीं हुआ करती। नियति के संकेतों पर नाचने के लिए विवश होता है मानव! अन्धकार में ही काशी नगरी की सीमा से बाहर आकर रुद्रदेव निर्जन मार्ग के किनारे एक वृक्ष के निकट ठहर कर अपनी थकान मिटा रहे थे। रात्रि व्यतीत हो चुकी थी परन्तु भुवन-भास्कर का रथ अभी दूर था। अरुण की रक्तिम किरणों ने आकाश में यत्र-तत्र अपनी कूची फेरनी आरम्भ कर दी थी। अलसा कर रुद्रदेव ने अपनी पीठ पेड़ के तने से टिका ली। आँखें बन्द करके वे विश्राम करने लगे।

थोड़ी ही देर में उजाला फैल गया। चिंडियाँ चहचहाने लगीं। प्रातः का समीर उनके थके शरीर को थपकियाँ देने लगा। तभी उन्हें मनुष्यों की बातचीत के स्वर सुनाई दिये। सम्भवतः कुछ यात्री उसी मार्ग से जा रहे थे। उत्सुक होकर उन्होंने आँखें खोल दीं। दूर मार्ग पर कुछ साधुओं का झुँड आता दिखाई दिया। वे उठे नहीं। अधलेटे से उन्हें निकट आता देखते रहे। कुछ ही क्षणों में यात्रियों का वह समूह निकट आ गया। रुद्रदेव को देख कर एक युवा साधु ने उन्हें प्रणाम किया -

"प्रणाम गुरुदेव!"

"आयुष्मान भव!"

रुद्रदेव ने आशीष-मुद्रा में हाथ उठाते हुए कहा।

"आप यहाँ एकाकी क्यों बैठे हैं? कहीं जा रहे हैं क्या?"
 उसने पूछा।
 "हाँ, यात्रा पर ही निकला हूँ।"
 "कहाँ जा रहे हैं?"
 "जिधर पाँव ले जाएँ।"
 रुद्रदेव ने मुस्करा कर कहा।
 "तो आप हमारे साथ ही क्यों नहीं चलते?"
 "तुम लोग किधर जा रहे हो?"
 "सौराष्ट्र की ओर।"
 "वहाँ क्या है?"
 रुद्रदेव ने उत्सुक होकर पूछा।
 "वहाँ सागर है गुरुदेव!"
 "सागर?"
 "हाँ सागर! जिसका कोई ओरछोर नहीं खारे पानी वाला समुद्र!
 बस, वही देखने की इच्छा से मैं भी इनके साथ हो लिया हूँ।"
 "तुम्हारा नाम क्या है वत्स?"
 "मुच्चकुन्द! अब चलिए न! देखिए, वे दूर निकले जा रहे हैं। अभी
 जरा तेज चाल से चलेंगे तो हम उन्हें पा लेंगे।"
 युवक ने अधीर होकर कहा।
 "चलो!" एक क्षण विचार करके उठ खड़े हुए रुद्रदेव!
 लम्बे डग भरते कुछ ही देर में वे उस मंडली में सम्मिलित हो गये।
 माँगते खाते, यत्र-तत्र ठहरते वे साधु ही वास्तविक यात्री थे। एक ही
 उद्देश्य था उनका - मंजिल पाना। अनायास ही मिला शिष्य मुच्चकुन्द न
 जाने किस अज्ञात भावना से उनका सेवक बन गया था। मार्ग में वह
 रुद्रदेव की सुविधाओं का ध्यान रखता और उन्हें पितृतुल्य सम्मान देता
 था। रुद्रदेव को भी उससे स्नेह हो गया। शीघ्र ही वे उस साधु-मंडली में
 घुल मिल गये।

मार्ग में कितने ही बीहड़ वर्णों को पार करना पड़ा। कितनी ही नदियाँ व्यवधान बनीं परन्तु रुद्रदेव के पर्वतीय जीवन के ज्ञान ने सर्वत्र उनकी सहायता की। मैदानी भाग होने के कारण यहाँ की नदियों का वेग उतना प्रचंड नहीं था जितना पर्वतीय नदियों का। यह बात और है कि इनका विस्तार अधिक होता था। कहीं वे नदियों को तैर कर पार कर लेते तो कहीं नाविकों की सहायता से। कहीं कहीं वे रुद्रदेव के निर्देशन में बांस के बेड़े बना कर उसके द्वारा गहरी और तैर कर न पार की जाने योग्य धाराओं को भी पार कर लेते थे।

वन प्रदेशों में भी रुद्रदेव के वनस्पतियों के ज्ञान ने उस दल की बड़ी सहायता की। कौन सा पौधा विषाक्त है और किस वनस्पति के पत्तों और फलों को खाया जा सकता है या किस पौधे के नीचे खाने योग्य कन्द प्राप्त हो सकता है, यह सब ज्ञान उस मंडली के लोगों को रुद्रदेव की कृपा से ही हुआ। उनके साथ हो जाने के कारण यात्रा सुगम बन गयी थी। यही नहीं रुद्रदेव मार्ग में विश्राम-स्थल ढूँढ़ने में भी उनकी सहायता करते और आग जला कर उसके चारों ओर बैठ कर जब वे ज्ञान-चर्चा करते तो रुद्रदेव उसका प्रत्येक शब्द आत्मसात करते थे। देशाटन सम्बन्धी ज्ञान उनका सबसे अधिक था इसलिए अपनी यात्रा के अनुभव वे आपस में सुनाया करते और फिर कितनी ही कहानियाँ, कितनी ही घटनाओं के अतिरिक्त वर्णन।

विन्ध्य पर्वत की श्रृंखलाओं को पार कर वे सौराष्ट्र में प्रवेश कर गयो ऐसे में एक दिन एक सहयात्री ने उन्हें एक अद्भुत कथा सुनाई।

उस दिन भी दिन भर की थकान भरी यात्रा के बाद वे एक बावड़ी के निकट बैठ कर विश्राम कर रहे थे। मुचकुन्द ने साथियों के साथ मिल कर आग जला दी थी और वन से प्राप्त फल फूल और शाक आदि का वे भोग लगा चुके थे। ऐसे में उस मरीचि नामक ऋषि ने कहना आरम्भ किया -

"बहुत समय पहले की बात है। एक बार मैं धूमता हुआ हिमालय पर्वत की ओर निकल गया। वहाँ मुझे सुकेतु ऋषि मिले जो वहीं वन

प्रदेश में रह कर साधना कर रहे थे। कुछ दिनों तक मुझे उनके आश्रम में रहने का अवसर मिला। वहीं एक दिन मैंने उन्हीं के मुख से यह अद्भुत कथा सुनी थी।"

"कैसी कथा ऋषिवर?"

"कार्तिकेय की कथा!"

"कौन है यह कार्तिकेय? हमने तो कभी उसका नाम भी नहीं सुना।"

एक मुनि ने उत्सुक होकर पूछा।

"मैंने भी पहली बार उसका नाम सुना था। एक बार ऋषि सुकेतु ने बताया था - बहुत समय पूर्व एक बार कुछ ऋषि-पत्नियों को गंगा स्नान करते समय एक शिशु मिला था। वह अत्यन्त सुन्दर और मूर्च्छित था। ऋषि-पत्नियों ने जब उसे जल से बाहर निकाला तब वह अचेत था। अत्यन्त दुर्बल मृतप्राय शिशु को उन्होंने मृत समझ कर सरपत की झाड़ियों के निकट डाल दिया और स्वयं अपने निवास पर लौट आई। कुछ काल के उपरांत उसी मार्ग से कृतिका बहने स्नान के लिये आयी। ये छः बहने एक साथ ही जन्मी थीं इसलिए इन्हें छः कृतिका बहने ही कहा जाता है।"

"छः कन्याओं का एक साथ जन्म? ऐसा तो कभी नहीं सुना गया। एक साथ दो यमज सन्तानें तो होती हैं परन्तु छः कन्याएँ एक साथ उत्पन्न हुई हैं - यह तो आश्चर्य ही है।"

"हाँ भाइयों! मुझे भी बहुत आश्चर्य हुआ था यह सुन कर। तब सुकेतु ऋषि ने ही बताया था कि महर्षि विश्वकेतु की पत्नी ने जब एक साथ छः कन्याओं को जन्म दिया तब वे कन्याएँ अत्यन्त दुर्बल और लघुकाय थीं। उनके जीवित रहने की कोई आशा नहीं थी। सन्तान की मृत्यु के शोक से बचने के लिए महर्षि ने उन कन्याओं को आश्रम से बाहर वन में फेंक दिया। उधर से जाती एक भीलनी ने उन्हें देखा तो ममतावश उन्हें अपने साथ उठा ले गयी और उसने अपने कर्बीले में उन्हें अत्यन्त प्रेम से पाला। उसकी देखरेख तथा वन्य औषधियों के प्रभाव से वे कन्याएँ स्वस्थ होकर जीवित रहीं। कृति की पुत्रियाँ होने के कारण कृतिकाएँ कहलाई। कुछ

रुद्रायन – 2

बड़ी होने पर उन्हें अपने जन्म की कथा ज्ञात हुई तो वे अत्यन्त दुखी हुईं। पुरुष जाति के प्रति उन के हृदय में विरक्ति की भावना उत्पन्न हो गयी। पिता ने पिता का दायित्व नहीं निभाया। यदि वह भीलनी उन्हें न पालती तो वे क्या असमय ही काल के गाल में न समा जातीं? पिता ने तो उन्हें बन्य-पशुओं के भोजन के लिए वन में फिंकवा दिया था।"

"उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था।"

रुद्रदेव ने कहा।

"हाँ! नहीं करना चाहिए था परन्तु उन्हें यह कौन समझाता? माँ रोधोकर चुप हो गयी। बाद में जब उसे ज्ञात हुआ कि भीलनी ने छः यमज कन्याओं को पाल लिया है तो वह चुपके से जाकर उन्हें देख आई। माँ के आग्रह करने पर भी वे कन्याएँ पिता के घर लौटने के लिए सहमत नहीं हुईं। जैसे-जैसे वे बड़ी होने लगीं। समाज में पुरुषों के वर्चस्व और उनके द्वारा किए जा रहे मनमाने आचरण ने उन्हें क्षुब्ध कर दिया। उन छः बहनों ने आजीवन अविवाहित रहने का संकल्प कर लिया। कबीले के मुखिया ने जब उन्हें कबीले की प्रथा के अनुसार विवाह करने के लिए विवश किया तो उन कृतिकाओं ने विद्रोह कर दिया और कबीला छोड़ दिया।"

"फिर क्या हुआ?"

"फिर उन्होंने अन्यत्र वन-प्रान्त में एक भूमि-भाग को साफ करके अपनी सुविधानुसार सुन्दर कुटिया का निर्माण किया। उसके चारों ओर पुष्प उद्यान लगाया तथा फलों के वृक्ष लगाए जिससे उन्हें वर्ष भर फल प्राप्त हो सकें। उनकी उत्तम देख-रेख में वह स्थान नन्दन कानन बन गया। कृतिकाएँ वहीं सुखपूर्वक रहकर नियम के साथ जीवन बिताने लगीं।"

"और वह शिशु? उसका क्या हुआ जिसे ऋषि पत्नियों ने मृत समझ कर नदी के किनारे सरपत की झाड़ियों में फेंक दिया था?"

रुद्रदेव ने अधीर होकर पूछा।

"जब कृतिकाएँ उस मार्ग से जा रही थीं तब अचानक उनकी दृष्टि उस शिशु पर पड़ी। सरपत की तीखी पत्तियों ने उसे घायल कर दिया था और उसके शरीर से स्थान-स्थान से रक्त बह रहा था। उसे देख कर वे

अत्यन्त दुखी हुईं। उन्हें अपनी जन्म-कथा स्मरण हो आईं। उन्हें भी जन्म के बाद इसी प्रकार वन में फेंक दिया गया था। सम्भवतः इस शिशु को अशक्त देख कर या अन्य किसी कारण से इसके माता-पिता या मात्र पिता ने ही त्याग दिया होगा। उन्होंने शिशु को उठा लिया और पास लगी दूब के अंकुरों का रस उसके मुख में टपकाने लगाएं। एक कृत्तिका ढूँढ़ कर कहीं से घाव ठीक करने के लिए औषधीय वृक्ष के पत्ते तोड़ लाई और उसे मसल कर शिशु के घावों पर लगाने लगी। कुछ देर की शुश्रूषा के बाद शिशु चैतन्य होकर रोने लगा।

उसी समय उधर से मुनि विश्वामित्र जा रहे थे। शिशु का रुदन सुनकर वे ठिठक गये। पूछने पर कृत्तिकाओं ने उन्हें शिशु प्राप्ति की कथा बताई और मार्गदर्शन चाहा। मुनि बोले- 'अत्यन्त तेजस्वी है यह बालक। जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य करेगा और इतने घावों और आघातों को सह कर भी जो यह जीवित है इससे इसकी अद्भुत जिजीविषा का बोध होता है। अनेक घाव भी इसका कुछ नहीं बिगाड़ सकेंगे। अनुपम योद्धा होगा यह।' विश्वामित्र ने भविष्यवाणी की।

"इसका नामकरण कर दें मुनिवर!"

कृत्तिकाओं ने अनुरोध किया।

"तुम कृत्तिकाओं के द्वारा इसकी प्राण-रक्षा की गयी है। तुम ही इनकी पालन करने वाली माता हो इसलिए यह कार्तिकेय कहा जाएगा। और तुम छः माताओं का पुत्र होने के कारण यह षडानन भी कहलाएगा। तुम्हीं इसकी माता बनोगी और इसका पालन करोगी।"

"परन्तु मुनिवर! हम तो अविवाहिताएँ हैं। यह इतना छोटा है कि स्वयं भोजन नहीं ग्रहण कर सकता। हम इसका पालन किस प्रकार कर सकेंगी?"

कृत्तिकाओं ने व्याकुल होकर पूछा।

उनका मातृ-हृदय वात्सल्य से पूर्ण था किन्तु बच्चे को दुग्ध-पान कराने के लिए वे क्या करें यही नहीं जानती थीं।"

"फिर महर्षि विश्वामित्र ने क्या कहा?"

रुद्रायन – 2

रुद्रदेव ने अधीर होकर फिर पूछा।

"महर्षि विश्वामित्र ने कहा -

'तुममें से जो इसे अपना दूध पिला कर पालना चाहती है वह मेरे साथ चले। मैं उसे वह औषधि बता दूँगा जिसका सेवन करके वह शिशु को दुग्ध-पान करा सकेगी।'

कृत्तिकाएँ एक-दूसरी का मुख देखने लगीं। उनमें से प्रत्येक उस शिशु को दुग्ध-पान करा कर पालना चाहती थी। वे आपस में ही विवाद करने लगी और स्वयं को अन्यों की तुलना में शिशु पालन के लिए अधिक योग्य बताने लगीं। उनके इस वात्सल्य भाव को देख कर महर्षि ने कहा -

'तुम सभी इसकी माताएँ हो। चलो, मैं तुम्हें वह औषधि और उसका प्राप्ति-स्थल बता देता हूँ। तुम सभी उसका सेवन करके इसे अपना दूध पिला कर पाल सकोगी। यह तुम सबको अपनी माता मानेगा।'

महर्षि ने उन्हें वह दिव्य औषधि बताई तथा उसके सेवन की विधि भी बता दी। कृत्तिकाओं ने औषधि का सेवन करके कार्तिकेय को दुग्ध-पान कराया। उनकी सेवा शुश्रूषा से वह बालक शीघ्र ही स्वस्थ तथा हष्ट पुष्ट हो गया।"

"क्या कार्तिकेय अभी भी वहीं है?"

रुद्रदेव ने पूछा।

"हाँ गुरुदेव! अब वह अपनी माताओं को छोड़ कर कहीं क्यों जाएगा और उसकी माताएँ भी उसे कहीं अन्यत्र क्यों जाने देंगी? अविवाहित होकर भी वे मातृत्व का सुख पा रही हैं। उन्हें तो जीने के लिए एक अच्छा प्यारा-सा खिलौना मिल गया है। कृत्तिकाओं के प्राण कार्तिकेय में बसते हैं और कार्तिकेय के अपनी माताओं में। अब तो वह आठ वर्ष का हो गया होगा। मैं सत्य कह रहा हूँ न भाई?"

मुचकुन्द ने कथा वाचक से पूछा।

"हाँ वत्स! सत्य कह रहे हो तुम?"

मरीचि मुनि बोलो।

"आपने कार्तिकेय को देखा है?"

रुद्रदेव ने पूछा।

"नहीं! मैंने देखा तो नहीं बस उसकी शौर्य गाथाएँ सुनी हैं।"

"शौर्य गाथाएँ?"

"हाँ! लोग कहते हैं कि इस अल्प आयु में वह विषैले नागों को गरदन से पकड़ कर उनसे खेलता है और जब माताएँ डॉटती हैं तो हँस कर उन्हें दूर फेंक देता है। एक बार तो वह सिंह-शावक के साथ खेलता खेलता उसकी माता तक जा पहुँचा था। जब कृत्तिकाएँ उसे ढूँढ़ती हुई वहाँ पहुँची तो वह सिंहनी की छाती से लगा सो रहा था।"

मरीचि मुनि ने बताया।

उस कथा ने रुद्रदेव को प्रसन्न कर दिया। जिस शिशु को वे अब तक ढूँढ़ नहीं सके थे वह जीवित है और कृत्तिकाओं द्वारा उसका पालन-पोषण किया जा रहा है यह समाचार उन्हें उत्साहित कर गया। अपने प्रथम शिशु को खो देने के सन्ताप के कारण ही तो वे यहाँ वहाँ भटक रहे थे। अब वे पार्वती को उनके खोए हुए पुत्र का समाचार बता सकते हैं। कैलाशपुरी पहुँचने पर उन्हें सर्वप्रथम अपने पुत्र कार्तिकेय को ही बुलवाना होगा। वह उनका ज्येष्ठ पुत्र है। उसकी शिक्षा-दीक्षा, अस्त्र-शस्त्र का ज्ञान सब स्वयं ही कराना होगा। कितनी प्रसन्न होंगी पार्वती यह सुन करा।

रुद्रदेव लौटने का मन बनाने लगे परन्तु इतनी दूर आकर यूँ ही लौट जाने का क्या अर्थ? कार्तिकेय सुरक्षित हाथों में है और पार्वती भी विनायक के साथ राजभवन में है। फिर चिन्ता क्या? यहाँ तक आये हैं तो सागर-दर्शन भी कर ही लिया जाये। फिर तो लौटना ही होगा। धुर पश्चिम का समुद्र अवश्य कुछ भिन्न ही होगा पूर्व के उस समुद्र से जिसे हलाहल विष की घटना के समय देखा था।

व्याकुल होकर रुद्रदेव ने अपने कंठ के उस स्थान को छुआ जो विष के प्रभाव से नीला हो गया था। विष का प्रभाव दूर हो जाने के बाद भी उस स्थान की जलन जब तब उन्हें व्यग्र कर देती थी। उसी व्यग्रता को

रुद्रायन – 2

दूर करने के लिए वे धतूरा जैसे विष का पान करने लगे थे। फिर भी... इस जलन का क्या कोई स्थायी उपचार नहीं है? अन्यमनस्क हो गये वे।

कार्तिकेय के कुशल समाचार ने रुद्रदेव की भारी चिन्ता मिटा दी। अब वे पुनः अपने सहज आनन्दी स्वभाव में आ गये। सौराष्ट्र भ्रमण के बाद उन्हें कैलाशपुरी ही जाना है। क्या सोचती होगी उनके इस प्रकार आ जाने से उमा? और वह विनायक? अब तो वह भी लगभग सात वर्ष का हो गया होगा। अपने बच्चों को पल-पल बढ़ते देखना, उनकी बाल-क्रीड़ाओं का आनन्द लेना उनके भाग्य में ही नहीं है शायद।

अपने मन के सभी दुर्बल विचारों को झटक कर रुद्रदेव उस मंडली के साथ ही आगे बढ़े। नगर के समीप आकर वे उससे अलग होने लगे तो मुचकुन्द उनके साथ हो लिया।

"आप हमारे साथ क्यों नहीं चल रहे हैं गुरुदेव?"

उसने रुद्रदेव को भिन्न राह पकड़ते देख कर पूछा था।

"यात्रियों में अधिक मोह अच्छा नहीं होता वत्स! साथ रहने पर एक-दूसरे की आदत हो जाती है। फिर जब भी साथ छूटेगा यही मोह हमें दुखी करेगा। इसीलिए सन्यासी जीवन-यात्रा में अधिक देर तक किसी के साथ नहीं रहते।"

"तो अब आप किधर जाएँगे?"

"पता नहीं। रमता जोगी और बहता पानी- इसका कोई ठिकाना नहीं होता। जिधर राह मिले, जिधर पाँव ले चलें उधर ही चल पड़ते हैं।"

"तो गुरु जी! मेरे पाँव भी मुझे आपकी ओर ले आए हैं। मैं आपके साथ ही रहूँगा।"

"मेरे साथ तुम्हें सुख नहीं मिलेगा वत्स! मैं शमशान में रहूँगा। वहाँ तुम रह नहीं सकोगे।"

"रह सकूँगा गुरुदेव! आपकी छत्रछाया में कहीं भी रह सकूँगा मैं।"

उसने बढ़ कर रुद्रदेव के पाँव पकड़ लिये -

"मना मत कीजिए गुरुदेव! मैंने जान लिया है कि मेरा कल्याण आपके चरणों में ही है। मुझे साथ ले चलिए।"

"तो ठीक है। अब मैं क्या तुम्हें गोद में लेकर चलूँगा? आना है तो मेरे पीछे-पीछे आ जाओ।"

रुद्रदेव हँस कर बोले।

इस प्रकार मुचकुन्द रुद्रदेव के साथ नगर के शमशान की ओर चल पड़ा।

वहाँ की शमशान भूमि नगर की सीमा-दीवार के बाहर थी। दूर तक फैला जंगल और उसमें गोदावरी के तटवर्ती भाग की विस्तृत भूमि शमशान कही जाती थी। वहाँ नगरवासियों द्वारा शवों का दाह-संस्कार किया जाता था। एकान्त स्थान और विस्तृत वनस्थली होने के कारण वह स्थान रुद्रदेव के मन को भा गया। वहाँ एक घने पीपल के वृक्ष के नीचे उन्होंने अपना त्रिशूल गाढ़ दिया। उनका अभिप्राय समझ कर मुचकुन्द ने वहाँ एक ओर थोड़ा स्थान साफ करके रुद्रदेव के लिए आसन तैयार कर दिया।

वहाँ पहले से ही कुछ अघोरी साधु वाममार्गी साधनाएँ कर रहे थे और वही भूमि उनका आवास थी। उनकी मंडली में सात साधु थे जिन्होंने बढ़ कर इन दोनों का स्वागत किया। रुद्रदेव तो अपनी बढ़ी हुई दाढ़ी मूँछों और लम्बी जटाओं के कारण रूप से ही अघोरी प्रतीत होते थे। उनके शरीर सौष्ठव और सुन्दर मुखाकृति ने सहज ही अन्य अघोरियों को आकृष्ट कर लिया। रुद्रदेव भी शिष्य के साथ उनकी मंडली में सम्मिलित हो गये। वहाँ रह कर रुद्रदेव ने कुछ दिन बिताने का निश्चय किया। वे सर्वप्रथम वहाँ के जन-समाज को भलीभांति जान समझ लेना चाहते थे। इसी उद्देश्य के लिए उन्होंने प्रातः होते ही 'अलख निरंजन' का नारा लगाया। दिन भर वे नगर में घूमते रहे। वहाँ उनकी वेशभूषा अपरिचित नहीं थी।

नगर में ही उन्होंने जाना कि पूर्व से ही वहाँ अघोरियों का आना-जाना लगा रहा है किन्तु अशुभ आचरण के कारण समाज उन्हें सम्मान की दृष्टि से नहीं देखता था। इसका कारण जानने के लिए जब उन्होंने वहाँ के लोगों से पूछा तो उन्हें बताया गया कि उस क्षेत्र में कुछ समय पूर्व

रुद्रायन – 2

फणिदत्त और मणिदत्त नाम के दो जुड़वाँ भाई रहते थे जो स्वयं को अघोरी कहते थे। वे अपनी शिष्य-मंडली के साथ शमशान भूमि में निवास करते थे और पंच मकार का खुल कर सेवन करते थे। मांस, मदिरा, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन इन्हीं पंच मकारों को वे अघोरियों का मुख्य आचरण बताते थे। वे मांस-मछली खाते, मदिरा पान करते और खुले आकाश के नीचे युवती स्त्रियों के साथ विभिन्न मुद्राओं का प्रयोग करते हुए मैथुन क्रिया करते थे। इसी से समाज उन्हें बहिष्कृत मानता था।

वे सदैव अपने साथ खड़ग रखते थे। नगर वीथियों में घूमते समय जब जो भी इच्छा होती वही वस्तु उठा लेते। उनके भयंकर रूप के कारण कोई उनसे वस्तु का मूल्य माँगने का साहस नहीं करता था। यही नहीं एकाकिनी स्त्रियों को भी वे उठा ले जाते थे। उनके भय से नगर के स्त्री पुरुष घरों में घुस जाया करते थे। बात बिना बात गालियाँ बकना, अपशब्द कहना और दूसरों को भयभीत करके उनकी सेवा प्राप्त करना - ये ही आचरण ऐसे थे जिनके कारण समाज उन्हें सम्मान की नहीं वरन् भय की दृष्टि से देखता था।

फणिदत्त मणिदत्त से कुछ पल बड़ा था। वह चालाक तथा क्रूर था। दोनों भाइयों में एकता थी। दोनों ने मिल कर अघोरियों का अच्छा खासा दल तैयार कर लिया था। कुछ दिन पूर्व ही वे दोनों भाई दल के साथ महाराष्ट्र की ओर चले गये थे। वहाँ के गहन विधिन में काले पत्थर की अनगढ़ मूर्ति को उन्होंने मातृदेवी के रूप में स्थापित कर रखा था। उन्हीं की पूजा करते तथा विभिन्न पशुओं, यहाँ तक कि मनुष्यों की भी बलि देकर उनका मांस भक्षण करते थे। उनके वीभत्स रूप और आचरण से मुक्त होकर सौराष्ट्र वासियों ने सुख की साँस ली। पुनः रुद्रदेव तथा उनके उस छोटे से दल को देख कर उनके हृदय में आशंका ने सिर उठाया किन्तु इनके सौम्य आचरण तथा वेष को देख कर उनका भय कम हो गया।

अघोर पन्थ के इतने दुरुपयोग और उसमें व्याप्त दुराचरण की बात सुन कर रुद्रदेव अत्यन्त दुखी हुए। कुछ थोड़े से लोग अपने निजी सुख और स्वार्थ के लिए 'धर्म' के नियमों की गलत व्याख्या करके समाज को

भ्रमित कर देते हैं और धर्म के प्रति दूसरों की निष्ठा का हनन करते हैं।

"अधोरपन्थ में पंच मकार का सेवन आधारभूत नियम है तो फणिदत्त और मणिदत्त का आचरण तो उनके इस विशिष्ट पन्थ के अनुरूप ही हुआ न? अधोर पन्थ की तामसिकता..."

मुचकुन्द ने पूछना चाहा।

"कोई भी धर्म तामसिक नहीं होता। धर्म सदैव सत्त्वगुण प्रधान होता है। उसमें तमोगुण तो उसके अनुयायी मिला देते हैं।"

रुद्रदेव ने समझाया।

"और यह पंच मकार - मांस, मदिरा, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन? ये सभी क्या तमोगुण से सम्बन्धित नहीं हैं?"

"नहीं वत्स! तामसी प्रवृत्ति के साधकों ने इसकी मनमानी व्याख्या केवल अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए कर रखी है। मांस और मत्स्य का आहार करके, मदिरापान करके वे अपनी तामसी प्रवृत्तियों का पोषण करते हैं। इसी प्रकार मुद्रा और मैथुन का भी मनमाना अर्थ निकाल कर वे लोग अपनी अतृप्त वासना की पूर्ति करते हैं। कोई भी धर्म ऐसे गर्हित कर्मों को मान्यता कैसे दे सकता है?"

रुद्रदेव ने अपनी मंडली में बैठे अधोरियों से पूछा -

"क्या आप लोग इसी प्रकार पंच मकार का सेवन करते हैं?"

"नहीं गुरुदेव!"

"क्यों? यदि आप स्वयं को अधोर पन्थ के साधक मानते हैं और पंच मकार की इसी व्याख्या को स्वीकार करते हैं तो उसका अनुपालन क्यों नहीं करते?"

"क्योंकि हमारा अन्तर्मन इसकी अनुमति नहीं देता। हमारे संस्कार हिंसा को प्रश्रय नहीं देते। मदिरा-पान हमारी विवेक बुद्धि हर लेता है और पर - स्त्री से मैथुन को हमारा हृदय स्वीकार नहीं करता। हमें तो 'ब्रह्मचर्य' व्रत का पालन ही उचित लगता है और वही हमें अभीष्ट भी है।"

वे बोले।

रुद्रायन – 2

"किसी भी कारण से सही आप सात्विक प्रवृत्ति का आचरण करने वाले हैं। यह अत्यन्त शुभ तथा उत्थानकारी लक्षण है।"

"परन्तु गुरुदेव! हम इस पंच मकार के सम्बन्ध में जानना चाहते हैं। यदि आप हमें इसका अधिकारी समझें तो इसकी व्याख्या करने की कृपा करें।"

मुचकुन्द ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया। अन्य अघोरी भी वहीं भूमि पर बैठ गये। थोड़ी दूर पर जलती हुई चिता की आँच उन तक आ रही थी जो उस खुले आसमान के नीचे अत्यन्त सुखद वातावरण उत्पन्न कर रही थी।"

"वह भी बताऊँगा परन्तु यह तो कहो कि तुम लोगों ने श्मशान भूमि में रहना ही क्यों पसन्द किया?"

"एकान्त के लिए प्रभु! यहाँ रह कर निर्विघ्न होकर हम अपनी साधना सम्पूर्ण कर सकते हैं। ध्यान को एकाग्र करने के लिए यह उत्तम स्थान है।"

भूकंठ नामक अघोरी साधु ने उत्तर दिया।

"बस इतना ही?"

रुद्रदेव ने पूछा।

"और... और यहाँ जल आदि प्राकृतिक संसाधनों की सुविधा है।"

"उचित सोच है तुम्हारी। अघोरी श्मशान में इसलिए भी रहता है क्योंकि वह निर्भय होता है। संसार में सबसे बड़ा भय मृत्यु का होता है। जिसने इस भय पर विजय प्राप्त कर ली उसे अन्य किसी का भय नहीं रहता। श्मशान भूमि में मृत्यु के पश्चात शवों की अन्त्येष्टि की जाती है। यहाँ धनी-निर्धन, बड़े-छोटे, उच्च कुल के तथा निम्न कुल के - सभी प्रकार के शव आते हैं। उन्हें देख कर यह ज्ञान स्वतः हो जाता है कि मृत्यु अवश्यम्भावी प्रक्रिया है। इसे नकारा नहीं जा सकता। जिस प्रकार मनुष्य जन्म लेने के पश्चात शैशव, बाल्यावस्था, युवावस्था और फिर वृद्धावस्था का अनुभव करता है उसी प्रकार उसे मृत्यु का भी सहज स्वागत करना चाहिए। जो जन्म लेता है वह तो मरेगा ही। जन्म के साथ मृत्यु जुड़ी होती

है। ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। सत्य तो यह है कि प्रत्येक प्राणी जन्म के समय अपनी मृत्यु को साथ लेकर आता है। यही चरम सत्य है। इस सत्य का सहज बोध श्मशान भूमि में रहने पर ही होता है। इसीलिए अघोरियों के लिए श्मशान भूमि में निवास करना उचित है।

"श्मशान भूमि संसार की नश्वरता का बोध कराती है। अग्नि का कार्य है जलाना। फिर चाहे वह चिता की अग्नि हो या चूल्हे की। अघोरी के लिए दोनों समान हैं। वह समदर्शी होता है इसीलिए चिता की आग पर भोजन बना कर खा सकता है और उसकी आँच में खड़े होकर साधना भी कर सकता है।"

"अब पंच मकार का अर्थ समझो। मनुष्य अपनी पंच ज्ञानेन्द्रियों तथा पंच कर्मेन्द्रियों के द्वारा जो कुछ उपभोग करता है वही मांस है। जिस प्रकार पशु मांस को खाता है उसी प्रकार ये इन्द्रियाँ भोगों को। इन्हें नियन्त्रित करना ही 'मांस' का तात्पर्य है। भोगों का उपभोग नियन्त्रित रूप से किया जाए तो ग्राह्य है अन्यथा उसे त्याग देना चाहिए। सिंह जिस प्रकार मांस खाकर पेट भरने पर उससे उपरत हो जाता है उसी प्रकार अघोरी को इन्द्रियों की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अनासक्त होकर उपभोग करना ही 'मांस' का प्रयोग करना है।"

रुद्रदेव ने उन्हें समझाते हुए कहा।

"और मत्स्य?"

विराट नामक साधु पूछ बैठा -

"मत्स्य का तात्पर्य क्या है?"

"मत्स्य का अर्थ है मछली। मछली अत्यन्त चंचल होती है। उसे पकड़ने का प्रयास करो तो फिसल कर दूर चली जाती है। उसी प्रकार हमारा मन भी चंचल होता है। यह बड़ी कठिनाई से वश में आता है। मनरूपी मत्स्य को नियन्त्रण में रखे बिना कोई साधना, कोई सिद्धि सम्भव नहीं है इसलिए मनरूपी मत्स्य को वश में रखना ही 'मत्स्य' का तात्पर्य है।"

"परन्तु मदिगा का अर्थ तो सुरा ही हुआ न? यहाँ रहने वाले अघोरी

रुद्रायन – 2

फणिदत्त के अनुयायी शिष्य छक कर मदिरापान करते हैं।"

मुचकुन्द ने पूछा।

"और फिर नशे में धुत्त होकर अंटशंट बकते, एक-दूसरे पर क्रोधित होते रहते थे। यदि कोई अन्य उनके निकट पहुँच गया तो उनकी तो शामत ही आ जाती।"

भूकंठ ही बोला।

"अधोरियों के लिए जिस मदिरापान का विधान किया गया है वह सामान्य मदिरा नहीं है।"

रुद्रदेव का स्वर गम्भीर था।

"तो?"

"वह ब्रह्मानन्द की मदिरा है। जिस प्रकार सामान्य जन मदिरा पीकर उन्मत्त हो जाते हैं उसी प्रकार अघोर-पन्थ का साधक ब्रह्मानन्द की मदिरा का पान कर के उसी के आनन्द में आकंठ निमग्न रहता है। प्राणायाम तथा विभिन्न मुद्राओं के अभ्यास से वह मनरूपी मत्स्य को वश में कर लेता है और एकाग्र होकर ध्यान करता है जिससे उसे ब्रह्म के साहचर्य की अनुभूति होती है। इसी ब्रह्मानन्द की मदिरा का पान करके वह मस्त हो जाता है। यही साधना जब चरम तक पहुँचती है तो वह ब्रह्म के साथ स्वयं को एकाकार अनुभव करने लगता है। यही मैथुन है जिसके द्वारा वह ब्रह्मानन्द की अनुभूति करता हुआ अनन्त परमसत्ता में स्वयं को समाहित कर देता है।"

रुद्रदेव बोल रहे थे और सभी एकाग्र होकर उन के कहे हुए शब्दों को आत्मसात कर रहे थे। और उस ज्ञानवार्ता के बाद रुद्रदेव को सभी साधुओं ने अपना गुरु स्वीकार कर लिया।

"अरे कोई तो बचाओ। कोई है यहाँ? बचाओ, बचाओ!"

सन्ध्या की उस मनोरम बेला में एक करुण पुकार गूँज उठी। रुद्रदेव अपने साथियों के साथ सौराष्ट्र नगर सीमा से बाहर गोदावरी के निकट होकर जा रहे थे जब उनके कानों में यह करुण स्वर पड़ा।

सभी ठिठक कर रुक गये और चारों ओर खोजपूर्ण दृष्टि से देखने लगे। वह स्थान अत्यन्त बीहड़ था। नदी के किनारे ऊँची नीची चट्टानें दूर तक फैली हुई थीं। इस ओर का मार्ग छोटा होने के कारण रुद्रदेव की संन्यासियों की टोली सायंकाल उसी मार्ग का अवलम्बन करती थी।

"बचाओ, बचाओ!"

पुकार फिर गूँजी।

क्षण भर में ही रुद्रदेव ने दिशा का अनुमान लगा लिया और दौड़ पड़े। उनके साथी भी उनके पीछे दौड़े।

जिस ओर से पुकारने का स्वर आ रहा था उधर का किनारा ऊँचा था। पहाड़ की एक ऊँची टेकरी थी जिसके पीछे से गोदावरी की धारा बह रही थी। उसी ऊँची चट्टान पर झुकी हुई कोई स्त्री पुकार रही थी -

"अरे कोई दौड़ो। बचा लो इसे!"

रुद्रदेव ने निकट जाकर देखा। एक स्त्री झुक कर नीचे चट्टान से लटकती दूसरी स्त्री का हाथ पकड़े हुए थी।

"ठहरो! मैं आता हूँ"

रुद्रदेव ने पुकार कर कहा।

शीघ्रता से बढ़ कर उन्होंने नीचे लटकी हुई स्त्री का हाथ पकड़ कर उसे ऊपर खींच लिया। निढाल सी वह चट्टान पर पड़ी रही। रुद्रदेव ने पुकारने वाली स्त्री से पूछा -

"कौन हैं आप? और यह कौन है जो इस प्रकार चट्टान से नीचे लटक रही थी? जरा सा हाथ छूट जाता तो प्राण न बचते। यहाँ इस निर्जन स्थान पर इस समय आप लोग क्या कर रही हैं?"

"मैं...मेरा नाम गोदावरी है और यह मेरी सखी महालसा बाई है। हम यहाँ नीचे स्नान करने के बाद उधर से ऊपर आ गयी थीं। न जाने कैसे

रुद्रायन – 2

इसका पाँव फिसल गया और यह नीचे गिरने लगी। मैंने पकड़ तो लिया था लेकिन ऊपर नहीं खींच पा रही थी। आपका बहुत-बहुत धन्यवाद योगी जी! आपने मेरी सखी के प्राणों की रक्षा की।"

उस स्त्री ने हाथ जोड़ कर उन्हें प्रणाम किया।

"आपको कहाँ जाना है? चलिये, हम आपको आपके आवास तक छोड़ दें। अभी आपकी सखी घबराई हुई है। पहले इन्हें आश्वस्त करें। ये लीजिए, कमंडल में थोड़ा जल है।"

रुद्रदेव ने अपने हाथ में लिया हुआ कमंडल बढ़ा दिया। अपना नाम गोदावरी बताने वाली स्त्री ने हाथ बढ़ा कर कमंडल ले लिया और दूसरी स्त्री के मुख पर छीटें मारे। उसका मुँह धुलाया और थोड़ा-सा जल उसे पिला भी दिया। इस चेष्टा में उसका मुख पूरा खुल गया था। चन्द्रमा जैसे मुख-मंडल के चारों ओर धुँधराली लटें बिखर गयीं। उस मुख को देख कर रुद्रदेव चौंक पड़े। उनके मुख से अनायास ही निकला -

"उमा!"

"आपने कुछ कहा क्या?"

गोदावरी ने पूछा।

"आपने अपनी सखी का क्या नाम बताया था?"

"महालसा बाई!"

गोदावरी बोली।

"ओह!"

रुद्रदेव ने अपने दल के दो संन्यासियों को आदेश दिया -

"सुकंठ और नीलमणि! तुम दोनों जाकर इन्हें सुरक्षित इनके आवास तक छोड़ आओ!"

"आप परेशान न हों योगी जी! हम चली जाएँगी।"

गोदावरी ने कहा।

"नहीं! अँधेरा घिरने वाला है। आप लोगों का अकेला जाना उचित नहीं है।"

रुद्रदेव ने समझाया।

"परन्तु मैं किसी से नहीं डरती।"
महालसा ने पहली बार मुख खोला।

"आप निंदर हैं और साहसी भी। परन्तु अभी पूरी तरह स्वस्थ नहीं हैं। हठ मत कीजिए। अब आप लोग जाइए।"

रुद्रदेव के स्वर में आदेश प्रतिध्वनि हो रहा था। कोई विरोध न करके वे वहाँ से चली गयीं। रुद्रदेव उन्हें जाती देख रहे थे। उनके ओझल हो जाने पर वे पुनः अपने गन्तव्य की ओर चल पड़े।

महालसा को देखने के बाद उनका हृदय अशान्त हो गया था। महालसा बिल्कुल उमा जैसी क्यों प्रतीत हो रही थी? उमा यहाँ कैसे आ सकती है? यदि गोदावरी साथ न होती तो रुद्रदेव उसे उमा ही समझ बैठते। क्या हो गया है उन्हें? बहुत काल से परिवार से दूर रहने के कारण कहीं उन्हें मतिभ्रम तो नहीं हो गया? सभी स्त्रियों में उन्हें अपनी पत्नी ही क्यों दिखाई दे रही है? कहीं वह उमा ही तो नहीं है? नहीं! नहीं! ऐसा सम्भव नहीं।

उन्होंने अपने मन की विचार धारा को झटक दिया। वह स्त्री सुन्दर थी। उसकी वेशभूषा सौराष्ट्र की स्त्रियों के समान थी। यदि उमा यहाँ की वेशभूषा धारण कर ले तो वह भी ऐसी ही लगेगी। बिल्कुल महालसा जैसी।

यह क्या हो गया है उन्हें? बार-बार उनका ध्यान महालसा की ओर क्यों जा रहा है? और कैसी हठीली थी वह! कितने दर्प भरे थे उसके वे शब्द...

"मैं किसी ने नहीं डरती।"

अनमने भाव से रुद्रदेव अपने प्रिय आसन पर बैठ गये। अन्य अघोरी रात्रि भोजन की व्यवस्था करने लगे। आज रात्रि के दूसरे प्रहर में वे कोई साधना करना चाहते थे किन्तु रुद्रदेव का मन वहाँ नहीं था। बार-बार वे अपने हृदय से विचारों के झांझावात को झटक कर फेंक देते परन्तु तत्क्षण ही वह सहस्रमुखी होकर उन्हें और भी धेर लेता। उनका अधीर हृदय बार बार उमा-महालसा-उमा में भटकता रहा तो वे गोदावरी की

रुद्रायन – 2

धारा की ओर चल दिए। कितनी ही देर तक नहाते रहे वे। पानी की शीतलता उनके हृदय के ताप को शान्त तो न कर सकी, हाँ कुछ सीमा तक न्यून अवश्य कर सकी थी।

पानी से निकल कर वे पुनः आसन पर आ विराजे। उन्होंने न गीले वस्त्र बदले और न ही जटाओं से टपकती जल की बूँदों को झटका। आसन पर बैठ कर उन्होंने पालथी मारी और ध्यान में डूब गये। मन की शान्ति का यह अचूक मार्ग तो था ही उनके पास। कुछ ही क्षणों में वे दीन दुनिया को भूल कर परमानन्द में मग्न हो गये। जब भी वे अपने प्राणों को मूलाधार से खींच कर मणिबन्ध, स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपूर चक्र तथा विशुद्ध चक्र की यात्रा पूर्ण करके आज्ञा चक्र में अपने भँवों के मध्य में स्थापित करते थे तो वह उनका केन्द्रीय भाग प्रदीप हो जाता था। पल भर के लिए सारे शरीर की ऊर्जा वहाँ एकत्र होती और फिर गहन शान्ति...परमानन्द की अनुभूति कराती हुई ध्यानावस्था।

इससे उन्हें स्वयं को संयमित तथा सन्तुलित करने में बड़ी सहायता मिलती थी। सौराष्ट्र प्रदेश की भूमि हिमालय की अपेक्षा अत्यन्त उष्ण थी। कभी-कभी यहाँ का वातावरण उन्हें व्यग्र कर देता था। तब गोदावरी की धारा में दीर्घ स्नान और ध्यानावस्था ही उन्हें शान्ति प्रदान करते थे।

उधर उनके भेजे हुए दोनों सन्यासी सुकंठ और नीलमणि उन दोनों महिलाओं को उनके आवास तक छोड़ने गये थे। नगर की चारदीवारी के थोड़ा अन्दर जाने पर ही वे दीवार के साथ-साथ बायीं ओर मुड़ गयीं। कुछ दूर जाने पर एक जीर्ण सी झोंपड़ी के निकट पहुँच कर वे दोनों रुक गयीं।

"यही हमारा आवास है सन्यासी!"

गोदावरी ने कहा।

"यहाँ रहती हैं आप लोग? इस टूटी हुई झोंपड़ी में?"

"हाँ भाई! यहीं हम दोनों रहती हैं।"

गोदावरी बोली।

"यहाँ रह कर आपको भय नहीं लगता?"

सुकंठ ने पूछा।

इस प्रकार युवा सुन्दरी स्त्रियों को असुरक्षित से निवास में रहते हुए उसने उससे इसके पहले कभी नहीं देखा था।

"आदत है हमें यहाँ रहने की। भय कैसा सन्यासी? इस प्रदेश में सभी स्त्रियों का सम्मान करते हैं। आवश्यकता पड़ने पर सहायता भी करते हैं। सभी यहाँ अपने हैं। फिर कैसा भय?"

महालसा बोली।

"हाँ, ठीक कह रही हैं आप! अच्छा, अब हमें आज्ञा दीजिए। वहाँ गुरु जी हमारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे।"

नीलमणि ने कहा।

"अवश्य! धन्यवाद आपके सहयोग का!"

उन्हें प्रणाम करके दोनों लौट पड़े।

"सुनिए!"

पीछे से पुकार कर कहा गोदावरी ने।

"हाँ! कहिए!"

दोनों ठिक कर बोले।

"आपके गुरु जी का नाम क्या है? और कहाँ है आपका आश्रम?"

"उनका नाम मार्तंड मुनि है। हम सब श्मशान भूमि में रहते हैं।"

सुकंठ ने बताया।

"उन्हें हमारा धन्यवाद कहें। कभी उधर आने पर दर्शन करूँगी। आप सब क्या यहीं रहते हैं?"

"क्यों?"

"इसके पूर्व हमने आप लोगों को कभी नहीं देखा, इसलिए पूछा।"

गोदावरी कुछ संकुचित हुई।

"हम लोग तो बहुत दिनों से वहाँ रह रहे हैं। पहले वहाँ मणिदत्त और फणिदत्त रहते थे। बाद में उनके महाराष्ट्र की ओर चले जाने पर भी हम सात सन्यासी उनके साथ नहीं गये क्योंकि हमें उनका आचरण

रुद्रायन – 2

अप्रिय लगता था। कुछ दिन पूर्व गुरु जी अपने शिष्य मुचकुन्द के साथ काशी से इधर आए तो उन्होंने हमें भी अपने साथ रहने की सहमति दे दी। बड़े जानी हैं गुरु जी! भूत भविष्य सब कुछ बता सकते हैं। जिसे एक बार अभय दे देते हैं फिर उनका बाल भी बाँका नहीं हो सकता।"

"फिर तो हम सौभाग्यशाली हैं जो उनकी कृपा प्राप्त हुई।"

"अवश्य देवी! उन्होंने आपको अभय कर दिया है।"

नीलमणि ने उत्साह में भर कर अपने गुरु जी की प्रशंसा में अनेक बातें जोड़ दीं। उनसे विदा लेकर वे प्रसन्न हृदय से शमशान भूमि की ओर चल पड़े।

○○○

रुद्रदेव को बाल्यावस्था से ही पशु-पक्षियों से विशेष प्रेम था। उस बीहड़ वन्य प्रदेश में रहने के लिए पशु पक्षियों द्वारा दिए गये संकेतों तथा उनकी आवाज को पहचानना आवश्यक था। नन्दीश्वर ने बचपन में ही उसे पशुओं के बोलने तथा पक्षियों के चहचहाने का अर्थ समझा दिया था। वे पशु-पक्षियों के प्रति सदा से दयावान थे। जब भी अवसर मिलता वे पशु-पक्षियों की बोली समझने के अभ्यास में लग जाते। स्वयं भी वे उन्हें की बोली में बोल कर उन्हें आदेश दिया करते थे। उनकी एक दहाड़ पर सिंह भयभीत हो उठता था और मतवाले हाथी सिर झुका कर मार्ग बदल देते थे। पक्षियों की चहचहाहट में छिपे संकेतों को वे सहज ही समझ लेते थे। उनके स्वर सुन कर ही वे बता देते थे कि अमुक पशु भयभीत है, आक्रामक है या मिलन के लिए अपने साथी को पुकार रहा है।

उस दिन भी वे गोदावरी के तट पर फैली सिकता में लेटे हुए थे। उनका सिर एक पत्थर की शिला पर टिका हुआ था और आँखें आकाश में उड़ते पक्षियों के झुंड पर। कभी-कभी पक्षियों के समान ही चहचहाने का स्वर निकाल कर जैसे वे उन्हें उत्तर देते थे। सूर्योदय हो चुका था और सूर्य की किरणों में गर्मी आने लगी थी। रुद्रदेव स्वयं में ही खोए हुए थे जब वहाँ आकर गोदावरी और महालसा बाई ने उन्हें प्रणाम किया।

"प्रणाम गुरुदेव!"

रुद्रदेव उन्हें देख कर उठ बैठे।

"प्रसन्न रहो। कैसे पधारना हुआ देवी?"

उन्होंने पूछा।

"हम स्नान के बाद इधर से जाने लगीं तो आपको देख कर रुक गयीं। सोचा आपका आशीर्वाद भी ले लें।"

"....."

रुद्रदेव मौन रहे।

"महाराज!"

"हूँ। कहिए!"

रुद्रायन – 2

"आपसे एक निवेदन करना है योगी जी!"

"कहिए कहिए! निसंकोच होकर कहिए!"

"मैं अपनी सखी के भविष्य के विषय में जानना चाहती हूँ क्या आप इसका हाथ देख कर इसके भाग्य के विषय में बताने की कृपा करेंगे?"

रुद्रदेव ने दृष्टि उठा कर उनकी ओर देखा।

"देखिए! कुछ बताइए योगी जी!"

महालसा ने अपनी बाईं हथेली खोलकर आगे बढ़ा दी।

रुद्रदेव ने उसका हाथ देखा तो चौंक पड़े। उसकी हथेली में अँगूठे के नीचे एक बड़ा सा काला तिल चमक रहा था। यह हाथ क्या वे कभी भूल सकते हैं? अनायास ही बोल पड़े वह -

"उमा!"

"कौन उमा? क्या कह रहे हैं आप योगी जी? यह मेरी सखी महालसा है उमा नहीं।"

गोदावरी बोली।

"नहीं! मेरी आँखें धोखा नहीं खा सकतीं। यह उमा ही हैं। मेरी पत्नी पार्वती। उमा! तुम और ये महालसा बाई की क्या कहानी है?"

उन्होंने उसका हाथ थाम कर अधीर होकर पूछा।

"यदि रुद्रदेव मार्त्तड बन सकते हैं तो क्या उमा महालसा नहीं बन सकती?"

पार्वती मुस्कराई।

"और ये गोदावरी?"

"यह गंगा है। मेरी बड़ी बहिन!"

"लेकिन तुम दोनों यहाँ कैसे?"

"आपकी खोज ही खींच लाई स्वामी!"

"क्यों? ऐसी क्या आवश्यकता आ पड़ी जो तुम्हें यहाँ तक आना पड़ा? और... विनायक कहाँ है? उसे किसके पास छोड़ आई?"

रुद्रदेव ने व्याकुल होकर पूछा।

"चिन्ता न करें। विनायक को मैं नन्दीश्वर के पास छोड़ कर आई हूँ। वैसे भी उसको साथ लाना उचित नहीं होता। उसके रोग के कारण... "

"रोग? कैसा रोग? क्या विनायक अस्वस्थ है?"

"हाँ प्रभु! आपके जाने के कुछ ही दिनों बाद उसकी नासिका पर एक छोटा सा दाना जैसा निकल आया था। मैंने उसे सामान्य फुँसी समझ कर दबा लगा दी। फिर उसकी नासिका फूलने लगी और लम्बी भी हो गयी। उसकी जितनी भी चिकित्सा सम्भव थी की गयी परन्तु कोई लाभ न हुआ। तब वैद्यजी ने निराश होकर कहा कि यदि आप होते तो अवश्य उसका उपचार ढूँढ़ निकालते। इसीलिए उसे नन्दीश्वर की परिचर्या में छोड़ कर मैं आपको ढूँढ़ने निकल पड़ी। पहले काशी गयी थी। वहीं से जाना कि आप एक रात बिना किसी से कुछ कहे चुपचाप चले गये। बाद में जाना कि आप किसी मंडली के साथ सौराष्ट्र की ओर गये हैं तो यहाँ आ गयी। अच्छा हुआ आप मिल गये।"

"बहुत कष्ट उठाया तुमने!"

"कष्ट तो उठाया किन्तु आपसे मिलकर सारा कष्ट दूर भी तो हो गया। आइए, अब घर लौट चलें स्वामी! हमारे पुत्र को हमारी आवश्यकता है।"

"हाँ उमा! मैं भी लौट ही जाना चाहता था लेकिन यहाँ एक समस्या ऐसी है जिसके निवारण के बिना जाना न हो सकेगा।"

"ऐसी कौन सी समस्या है स्वामी?"

"यहाँ कुछ अधोरियों ने अधोर-पन्थ को विकृत कर दिया है जिसके कारण अधोरियों की प्रतिष्ठा समाप्त हो गयी है। यही नहीं उन्हें लोग अत्याचारी और भयंकर भी मानने लगे हैं। मैं अधोर पन्थ के शुद्ध सात्त्विक रूप को प्रतिष्ठित करके ही कैलाशपुरी वापस जाना चाहता हूँ।"

रुद्रदेव ने बताया।

"किन्तु स्वामी!"

"इस कार्य को मैं शीघ्र ही पूर्ण कर दूँगा प्रिये! मेरे पास तुम्हारे लिए एक शुभ समाचार भी है।"

रुद्रायन – 2

"वह क्या स्वामी?"

उमा ने पूछा।

"वह समाचार यह है कि... वह समाचार हमारे प्रथम पुत्र के सम्बन्ध में है।"

"क्या? ... क्या समाचार है स्वामी?"

पार्वती के अधर काँप उठे।

"हमारा पुत्र जीवित है प्रिये! और स्वस्थ एवं सकुशल है। छः कृतिकाओं द्वारा उसका पालन-पोषण किया जा रहा है।"

"क्या सत्य ही?"

"हाँ प्रिये! यह सत्य है। वह दुर्बल मृतप्राय शिशु अब अत्यन्त बलिष्ठ और शक्तिसम्पन्न हो गया है। उसे वापस बुलाने और विनायक की चिकित्सा के लिए हमें शीघ्र ही कैलाशपुरी लौटना है। बस, कुछ दिनों की बात है। मैं अपने साथियों को अघोर विद्या में पूर्ण निष्णात करके लौट चलूँगा।"

रुद्रदेव बोले।

"इसमें कितना समय लगेगा?"

"केवल एक सप्ताह।"

"ठीक है स्वामी! जैसी आपकी इच्छा। मेरा हृदय अभी अपने पुत्रों से मिलने के लिए अधीर हो रहा है। हमारा प्रथम पुत्र... "

"कार्तिकेय! उसका स्वयं महर्षि विश्वामित्र ने नामकरण किया है।"

"बहुत सुन्दर नाम है। कार्तिकेय और विनायक! हमारे दो पुत्र! हमारी दोनों आँखें।"

उमा ने भावातिरेक हो नेत्र बन्द कर लिये।

"उमा!"

कुछ देर मुग्ध भाव से पार्वती की ओर देख कर कहा रुद्रदेव ने।

"हाँ स्वामी!"

"हमें कुछ दिन और यहाँ रहना होगा। तुम चाहो तो लौट जाओ।"

"नहीं स्वामी! हम आपके साथ ही वापस चलेंगे।"

"तो अब तुम दोनों अपने आवास पर चली जाओ।"

"परन्तु वहाँ क्यों? वहाँ तो हमने आश्रय भर ले रखा था आपको ढूँढ़ने के लिए। अब हम साथ रह कर..."

"नहीं उमा! यहाँ श्मशान भूमि में स्थियों का रहना उचित नहीं है।"

"तब?"

"तब तुम लोग जहाँ रह रही हो वहीं रुको। महालसा और गोदावरी बन कर ही रहो जब तक मैं अपना कार्य पूर्ण न कर लूँ।"

रुद्रदेव की बात सुन कर पार्वती उदास हो गयी। परन्तु उसने कोई विरोध नहीं किया।

"समय पाकर मैं स्वयं तुम लोगों से मिलने आ जाऊँगा। तुम लोग यहाँ मत आना जब तक बहुत आवश्यक न हो।"

"ठीक है स्वामी!"

प्रणाम करके दोनों वहाँ से चली गयीं। रुद्रदेव विचारमग्न से उन्हें जाती देखते रहे।

उस रात्रि - भोजन के उपरान्त जब सभी उस चिता को धेर कर बैठे थे जिसकी अनि मन्द पड़ गयी थी। शव जल चुका था और अब नीचे की लकड़ियों का अंगार दहक रहा था।

"गुरुदेव!"

किसी ने शंका समाधान के लिए कहा।

"हाँ! कहो!"

"फणिदत्त के संसर्ग में रहने वाले सन्यासी अखाद्य और खाद्य दोनों ही प्रकार का भोजन कर लेते थे। क्या अघोरियों को ऐसा आचरण करना चाहिए?"

उसने शंका की।

"अखाद्य से तुम्हारा क्या तात्पर्य है?"

"मांस, मछली, मृत प्राणियों के शरीर। यहाँ तक कि सर्प, बिच्छू आदि को भी वे बड़े चाव से खाते थे।"

रुद्रायन – 2

"वे लोग इसे क्या समझ कर और क्यों खाते थे यह तो वे ही जानें परन्तु अघोरी आत्मज्ञानी होता है। उसे यह ज्ञान होता है कि संसार की सभी चर और अचर सृष्टि पंचमहाभूतों से ही निर्मित होती है। उनकी मात्रा तथा अनुपात के कम या अधिक हो जाने से ही पेड़-पौधे जीव-जन्तु और मानव की रचना होती है। जो सच्चा अघोरी होता है उसके लिए फल, फूल तथा मांस, मछली में कोई अन्तर नहीं होता। सभी जीवों, वस्तुओं में सम भाव होने के कारण उसके लिए कुछ भी अखाद्य नहीं होता। उसके पात्र में उसके साथ कुत्ते बिल्ली भी भोजन कर सकते हैं और मनुष्य भी। यदि ऐसी सम भावना हो तो फिर खाद्य और अखाद्य में अन्तर ही कहाँ रहता है?"

रुद्रदेव ने समाधान किया।

"गुरु जी!"

एक अन्य सन्यासी ने पूछा।

"हाँ! तुम भी पूछो।"

"इच्छा पूर्ण न होने पर मनुष्य दुखी क्यों होता है?"

"क्योंकि वह इच्छा पूर्ण होने पर सुखी होता है। सुख और दुख मन की भावना है। माया के वश में हम सुख या दुख का अनुभव करते हैं। वास्तव में तो संसार दुखमय ही है क्योंकि हम उसे माया के चश्मे से देखते हैं। मोह की दृष्टि हमें निष्पक्ष नहीं रहने देती। किसी अपरिचित या शत्रु की इच्छा पूर्ण न होने पर हम सुख का अनुभव करते हैं और अपनी इच्छा पूर्ण न होने पर दुख का। यह मोह के कारण ही तो होता है।"

"इससे मुक्ति का उपाय क्या है?"

"मोह का परित्याग। बहुत कठिन है माया के बन्धन को तोड़ना। संसार में सभी कार्य या तो मेरी इच्छा से होते हैं या फिर सर्व शक्तिमान ईश्वर की। ऐसा मान लेने से भी दुख का अनुभव नहीं होगा क्योंकि यदि मेरी इच्छा पूर्ण हुई तो मैं सुख अनुभव करूँगा ही। तब भी सुख का अनुभव करूँगा जब मेरी इच्छा पूर्ण न हो क्योंकि तब मैं समझूँगा कि उस

परमपिता की यही इच्छा है। असन्तोष तथा मोहजन्य दुख से मुक्ति पाने का यह सरल उपाय है।"

रुद्रदेव ने सहज व्याख्या की।

वे अधोर-पन्थ के मूल सिद्धान्तों तथा उन्हें व्यावहारिक रूप में ढालने के लिए मुख्य बातों को शीघ्र से शीघ्र स्पष्ट करके लौट जाना चाहते थे। पार्वती के इस प्रकार आगमन ने उन्हें व्यग्र कर दिया था। और वह विनायक का रोग...। कैसा विचित्र रोग बताया उमा ने। ऐसा तो पहले कभी नहीं सुना। वहाँ पहुँच कर सभी वैद्यों को बुला कर चर्चा करनी होगी। देवताओं के वैद्य अश्विनी-कुमारों का भी सहयोग लेना होगा। और भी न जाने कितनी योजनाएँ उनके हृदय में बन और मिट रही थीं। परन्तु मन का सोचा पूरा ही कहाँ हो पाता है? हम अपनी क्षुद्र बुद्धि का उपयोग करके अनेक योजनाएँ बनाते हैं। भविष्य के कितने स्वप्न देखते हैं और नियति अपना खेल खेलती रहती है। पल भर में ही वह सब कुछ बदल कर रख देती है।

ऐसा ही सौराष्ट्र में भी घटित हो रहा था। जिन फणिदत्त और मणिदत्त के चले जाने से सौराष्ट्रवासी आश्वस्त हो गये थे वे अपनी नयी ही योजना बना रहे थे। वे चंडिका-देवी के उपासक थे। चंडिका अर्थात् क्रोध की देवी। अमरत्व प्राप्ति की इच्छा से उन्होंने एक सहस्र कुमारियों की आहुति देने का संकल्प ले रखा था और इसके लिए उनके शिष्य सर्वत्र धूम-धूम कर सुन्दरी, सर्वशुभ लक्षणों से युक्त कुमारी युवतियों की खोज में स्थान-स्थान पर विचरण कर रहे थे। जहाँ भी उन्हें शुभ लक्षणों वाली कुमारी युवती मिलती उसे उठा ले जाते और फणिदत्त की कारागार रूपी गहन गुफा में बन्दी बना कर रख देते। एक सहस्र कुमारियों की संख्या पूर्ण होने पर वह उनकी बलि इसलिए देना चाहता था जिससे कि प्रसन्न होकर माँ चंडिका उन दोनों भाइयों को अमर कर दें।

फणिदत्त के कुछ अनुचर सामान्य नागरिकों के वेश में सौराष्ट्र में भी धूम रहे थे। एक दिन उनकी दृष्टि महालसा पर पड़ी जो पूजा के लिए पुष्प चुन रही थी। भिक्षुक के वेश में धूमते अनुचर ने अपनी झोली से

रुद्रायन – 2

काला कपड़ा निकाल कर महालसा के सिर पर डाल दिया। उसमें मूर्च्छित करने वाली औषधि लगी हुई थी। महालसा के मूर्च्छित हो जाने पर वे उसे डोली में डाल कर उठा ले गये। दूर से आती गोदावरी ने डोली लेकर कुछ लोगों को जाते देखा परन्तु समझ नहीं सकी। फूलों की थाली पिरी देख कर वह महालसा को पुकारने लगी किन्तु तब तक डोली जा चुकी थी। महालसा का कहीं पता न था।

पागलों की तरह उसे ढूँढ़ने लगी गोदावरी। सम्भवतः उसने ही ठीक से नहीं देखा। उस डोली में वे लोग किसी अन्य स्त्री को ही ले गये होंगे। भला इस परदेश में कौन उसका शत्रु उत्पन्न हो गया जो इस प्रकार उसका अपहरण करेगा? गोदावरी आसपास के बाजारों और गलियों में उसका नाम पुकारती भटकने लगी।

"महालसाऊ!..... महालसाऊ!! कहाँ हो तुम,
महालसा?.....

वहाँ के नागरिकों से वह पूछने लगी -

"भाई! आपने मेरी सखी महालसा को देखा है क्या? मेरे ही समान वस्त्र धारण कर रखे थे उसने। गुलाबी साड़ी और सुनहरा आँचल। गहरे लाल रंग की कंचुकी पहन रखी थी उसने और बालों में बेला के फूलों का गजरा!"

"उसे भी वे ही निशाचर उठा कर ले गये होंगे?"

एक नागरिक ने करुण स्वर में कहा।

"कौन निशाचर? आप रो क्यों रहे हैं? किसकी बातें कर रहे हैं आप?"

व्याकुल होकर गोदावरी पूछने लगी।

"वही निशाचर जो रात का अँधेरा होते ही न जाने किधर से आ जाते हैं और नगर की कुमारी कन्याओं का अपहरण करके उठा ले जाते हैं। उनके पापकर्म निशा में ही होते हैं इसी से हम उन्हें निशाचर कहते हैं। मेरी पुत्री को भी वही उठा कर ले गये।"

उस नागरिक ने उसे बताया।

"परन्तु वे हैं कौन?"

"ठीक-ठीक तो हम नहीं जानते बहन! परन्तु सुना है कि वे सब फणिदत्त और मणिदत्त नाम के अधोरियों के अनुयायी अनुचर हैं। इस विपत्ति से हमें कोई नहीं बचा सकता। कौन है जो उन अत्याचारी हत्यारों से लड़ कर हमारी पुत्रियों को वापस ले आएगा?"

"चलो! हम सब श्मशानवासी मुनि मार्तड के पास चलें।"

गोदावरी बोली।

"कौन हैं ये मार्तड मुनि?"

"अभी कुछ दिनों पूर्व ही इस ओर आए हैं। सुना है हिमालय पर बड़ी साधना की है उन्होंने। अघोरी हैं। अघोरी से लड़ने के लिए तो अघोर विद्या जानने वाला ही चाहिए ना!"

"परन्तु... "

"वे हमारी विनती जरूर सुनेंगे और हमारी सहायता भी करेंगे।"

गोदावरी ने बड़े विश्वास भरे शब्दों में कहा और स्वयं श्मशान की दिशा में चल पड़ी।

गोदावरी को जाते देख कर क्रन्दन करते नागरिक भी साथ हो लिए। फणिदत्त के अनुचरों ने किसी की पुत्री का हरण किया था तो किसी की बहन का। नगर से लगभग सभी युवती कुमारियों का अपहरण किया जा चुका था। नगर की इतनी कठोर सुरक्षा व्यवस्था होने के बाद भी वे अनाचारी न जाने किस अज्ञात छिद्र से नगर में प्रवेश करके अपना कार्य कर जाते थे।

रोते-बिलखते नागरिकों के साथ व्याकुल गोदावरी श्मशान भूमि में जा पहुँची। रुद्रदेव शान्त मन पीपल के वृक्ष से पीठ टिकाए बैठे थे।

गोदावरी दौड़ कर उनके सामने गिर पड़ी।

"रक्षा करो! रक्षा करो प्रभु!"

उसका अनुसरण करती भीड़ पुकार उठी -

"त्राहिमाम्! त्राहिमाम्! हमारी रक्षा करिए मुनिवर! हमारी पुत्रियों को उस पापी के अत्याचारी हाथों से बचाइये!"

रुद्रायन – 2

"शान्त! शान्त हो जाओ सब। शान्त होकर मुझे पूरी बात बताओ।"

रुद्रदेव बोले।

सभी नागरिक एक-एक कर अपनी आपदा बताने लगे। शान्तिपूर्वक वे सुनते रहे। तब तक उनके साथी सन्यासी भी उस भीड़ को देख कर निकट आ गये थे।

"धोर अत्याचार कर रहे हैं वे।"

सुकंठ ने विरक्त होकर कहा।

"उन्हें इसका दंड देना आवश्यक हो गया है गुरुदेव! इस प्रकार तो वे समाज की सभ्यता और संस्कृति का विनाश ही कर डालेंगे।"

मुचकुन्द बोला।

रोती हुई गोदावरी ने सिर उठा कर रुद्रदेव की ओर देखा।

"आप क्यों रो रही हैं देवि?"

"वे...वे महालसा को भी उठा ले गये।"

गोदावरी ने बताया।

"महालसा?"

"हाँ प्रभु! मेरी सखी की रक्षा आप ही कर सकते हैं। उसे बचाइए प्रभु!"

गोदावरी ने हाथ जोड़ कर कहा।

सभी नागरिक हाथ जोड़ कर पुकारने लगे -

"हम पर दया कीजिए मुनिवर! हमारी रक्षा कीजिए। उस अघोरी से आप ही हमारी रक्षा कर सकते हैं।"

रुद्रदेव के नेत्रों में क्रोध उतर आया।

"आप अपने-अपने घर जाइए। हम आपकी कन्याओं को अवश्य बचाएँगे।"

"परन्तु प्रभु! हम भी आपके साथ रह कर उन पाखंडियों से युद्ध करना चाहते हैं। आप हमें भी साथ ले चलें।"

उन्होंने आग्रह किया।

"अवश्य! आप नगर के चुने हुए पचास बलिष्ठ युवकों को खड़ग सहित हमारे साथ चलने के लिए भेज दें। हम प्रातः होते ही यहाँ से प्रस्थान करेंगे।"

"जो आज्ञा प्रभु!"

वे प्रसन्न होकर लौट गये।

दूसरे दिन प्रातः ही पचास सशस्त्र युवा वीरों के साथ मार्टड मुनि का वह दल महाराष्ट्र की ओर चल दिया जहाँ फणिदत्त और मणिदत्त के निवास करने की सूचना थी।

०००

रुद्रायन – 2

चारों ओर भयानक वन फैले हुए थे। उस ओर किसी बस्ती या मनुष्य का नामोनिशान भी नहीं दिखाई दे रहा था। घने जंगल और हिंस जंगली पशुओं की आवाजें। मार्टड मुनि का अनुगमन कर रहा था वीरों का वह दल। उस घने वन में आकर उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वे अपने मार्ग से भटक गये हों। कोई दिखाई भी तो नहीं दे रहा था जो उनका मार्गदर्शन कर सकता। इस घने वन में ही तो कहीं उन अनाचारियों ने ठिकाना नहीं बना रखा है?

सबसे अधिक कठिनाई उन अति उत्साही युवकों के कारण आ रही थी जो अपनी ही उमंग में साथियों को छोड़ कर आगे बढ़ जाते थे। उन्हें एकत्र करके कहा मार्टड ने -

"सब ध्यान से मेरी बात सुनो। थोड़ा आगे पीछे होकर चार-चार व्यक्तियों के दल में बँट कर चलो किन्तु इतनी दूर मत हो जाना कि सब बिखर जाओ। सदैव अन्य दलों का ध्यान रखना और संकट पड़ने पर आवाज लगाना जिससे अन्य दल भी सहायता के लिए पहुँच सके।"

"परन्तु... "

"यहाँ किन्तु परन्तु की बात मत करो। हम नहीं जानते कि वे संख्या और बल में कितने हैं। ऐसी स्थिति में यदि हम एक-दूसरे से अलग हो गये तो नष्ट हो जाने की सम्भावना अधिक रहेगी। एक बात और ध्यान रहे - उन अत्याचारियों पर दया करने की आवश्यकता नहीं है।"

उनके नेत्रों के समक्ष महालसा का मुख कौंध गया। पल भर के लिए नेत्र बन्द करके स्वयं को व्यवस्थित किया मार्टड ने।

"स्त्रियों का अपहरण करने वाला स्त्री जाति और बालकों पर अपनी वीरता दिखाने वाले व्यक्ति के लिए क्षमा या दया नहीं होनी चाहिए। यदि वे अनाचारी, अत्याचारी और हत्यारे हैं तो उन पर कृपा करके 'कृपा' को कलंकित मत करो। परन्तु कुछ भी करते समय यह ध्यान रहे कि हमारा प्रमुख उद्देश्य उनके बन्धन से स्त्रियों को मुक्त करना है।"

"अवश्य प्रभु!"

"असहायों, निर्बलों और निःशस्त्र व्यक्तियों पर प्रहार करना अनुचित है। ऐसा करने वाला दंडित किया ही जाना चाहिए।"

मार्टड मुनि (रुद्रदेव) के शब्दों ने उनके शरीर में प्राण फूँक दिए। उन्हें दिशा मिल गयी। सतर्क होकर उनका दल छोटी छोटी टुकड़ियों में बँट कर आगे बढ़ने लगा। प्रहर भर बाद उन्हें एक उजड़ी हुई बस्ती मिली जिसे बुरी तरह लूटा जा चुका था। सम्भवतः वह बस्ती भी उन्हीं अधोरियों के आतंक का शिकार हुई थी। न वहाँ अन्न था और न पशु-धन ही। टूटे-फूटे मिट्टी के बरतन और उजड़ी हुई झोपड़ियाँ। वहाँ के निवासी या तो मारे गये थे या प्राण-रक्षा के लिए बस्ती छोड़ कर अन्यत्र चले गये थे। वे आगे बढ़ गये।

जंगल की सघनता कुछ कम हुई तो उन्हें गोदावरी की धारा दिखाई दी। मार्टड मुनि के आदेश पर सबने वहाँ रुक कर जलपान और विश्राम किया। कुछ ही देर बाद उन्होंने नदी तैर कर पार की और दूसरे तट पर पहुँच गये। उस ओर भी ऐसा ही घना जंगल था। चट्टानों, ऊँचे नीचे मिट्टी और पत्थर के टीलों से भरी हुई थी वहाँ की भूमि। इतने बीहड़ वन में चलना भी चुनौती ही था। ऊबड़-खाबड़ भूमि पर राह बनाते चार-चार के दल में वे आगे बढ़ रहे थे। जंगल की सघनता बढ़ने लगी थी। कुछ आगे जाने पर उन्हें अधोरियों के चिह्न मिलने लगे।

मार्टड मुनि के साथ अरिन्दम, उन्मत्त तथा मुचकुन्द थे। मुचकुन्द किसी भी स्थिति में अपने गुरु का साथ छोड़ता ही न था इसलिए मार्टड ने उसे अपने साथ रहने की अनुमति दे रखी थी। गुरु की सेवा और सुरक्षा को ही उसने जैसे अपना जीवन का लक्ष्य बना लिया था। घनी झाड़ियों के निकट से बढ़ते समय उन्हें वहाँ किसी की उपस्थिति का आभास मिला।

"कौन? कौन है वहाँ?"

अरिन्दम ने पुकार कर पूछा।

"....."

कोई उत्तर नहीं।

रुद्रायन – 2

क्षण भर के लिए उन्हें लगा कि सम्भवतः उन्हें भ्रम हुआ है। उस बीहड़ में कौन हो सकता है? शायद कोई वन्य पशु? उनके आगमन से डरा हुआ कोई भील या...या...

"कोई तो अवश्य है यहाँ। देखो, तुम जो भी हो सामने आ जाओ। हमसे तुम्हें भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है।"

उन्मत्त ने कहा।

परन्तु फिर भी कोई उत्तर न मिला और न ही झाड़ियों के पीछे से किसी ने बाहर आने की चेष्टा की। इस बीच मुचकुन्द दबे पाँव पीछे लौट गया और धूम कर घेरा काटते हुए झाड़ियों के पीछे पहुँच गया। उसने वहाँ एक भयभीत साधु को देखा जिसके वस्त्र स्थान-स्थान पर फटे हुए थे और जो भयभीत होकर झाड़ियों के पीछे दुबका हुआ था। उसकी साँसें तेज गति से आ जा रही थीं। डरी हुई आँखों में मृत्यु की छाया डोल रही थी।

"कौन हैं आप?"

मुचकुन्द ने उसका हाथ पकड़ कर खींचते हुए पूछा।

"छोड़ दो! छोड़ दो मुझे!"

वह और भी डर गया।

मुचकुन्द की आवाज सुन कर और लोग भी सामने आ गये।

"डरो मत सन्यासी! हम तुम्हें अभय देते हैं। सामने आओ!"

मार्टड ने गम्भीर स्वर में उसे अभय करते हुए कहा।

"आप भी अघोरी हो न! आप हमें मत मारो। हमें छोड़ दो!"

वह हाथ जोड़ कर गिड़गिड़ाया।

"किसने कहा तुमसे कि अघोरी मार डालते हैं?"

"उन्होंने...उन्होंने हमारे साथियों को मार डाला।"

"किसने?"

"अघोरियों ने!"

"अघोरी कौन?"

"पता नहीं! वे फणिदत्त की जय बोलते थे। हमारे सब साथी समाप्त हो गये।"

उसने बताया।

"और तुम? तुम कैसे बच गये?"

"मैं सबसे आयु में छोटा था तो मुझे उन्होंने अपनी चाकरी के लिए साथ ले लिया था। बड़ी मुश्किल से उनकी कैद से भागा हूँ। आप...आप हमें उन्हें तो नहीं सौंप देंगे?"

"नहीं! हम फणिदत्त के साथी नहीं हैं। हम तो स्वयं उन्हें ढूँढ़ रहे हैं।"

"क्यों? क्यों ढूँढ़ रहे हैं उन्हें?"

उसने पूछा।

"उन्हें उनके अत्याचारों का दंड देने के लिए। तुम क्या हमें बता सकते हो कि वे कहाँ रहते हैं? उनका अड़ा किस ओर है?"

अरिन्दम ने पूछा।

"उधर पश्चिम की ओर। वहाँ बहुत बड़ी प्राकृतिक गुफा है काले पत्थरों की। बड़ा भयानक स्थान है। बहुत गहरी गुफा है वह और अन्दर से बहुत बड़ी। वहीं उनकी पूजा होती है और वहीं वे अपनी देवी की प्रतिमा के सामने पशुओं और मनुष्यों की बलि देते हैं।"

"तुमने देखा है वह स्थान?"

मुचकुन्द ने पूछा।

"उन्होंने मुझे वहीं रखा था। बड़ी कठिनाई से भाग कर यहाँ तक आ सका!"

"तुम हमारे साथ चलो। तुम्हें अब कोई भय नहीं है। हम तुम्हारी रक्षा करेंगे। हमें तुम उन लोगों के विषय में वह सब बताओ जो तुम्हें ज्ञात है।"

"मैं अधिक नहीं जानता परन्तु उनकी कैद में रह कर जो देखा उतना बता सकता हूँ।"

"वही बताओ। इस प्रकार तुम हमारी सहायता करोगे। पर ठहरो - पहले तुम कुछ खा लो। बहुत भूखे और प्यासे भी प्रतीत हो रहे हो।"

मार्टड मुनि बोले।

रुद्रायन – 2

उनके संकेत पर मुचकुन्द ने उसे अपनी कमर में बँधी थैली में से निकाल कर कुछ फल खाने के लिए दिए और कमंडल का पानी पिलाया। खा-पीकर वह कुछ स्वस्थ और आश्वस्त भी दिखाई देने लगा। कुछ क्षणों के विश्राम के बाद वह उठ कर उनके साथ हो लिया।

"चलिए! मैं भी आप लोगों के साथ ही चलता हूँ। किसी बस्ती में मुझे छोड़ दीजिएगा।"

उसने आग्रह किया।

"परन्तु भाई! हम तो फणिदत्त के आवास की ओर जाना चाहते हैं।"

"नहीं नहीं! उधर मत जाओ। उधर तो मृत्यु विचरण करती है। उसके साथी अनुचर सशस्त्र धूमते रहते हैं और जिसे अपने किसी काम का नहीं समझते ऐसे वृद्ध अपाहिजों को तुरन्त मार देते हैं। बालकों को बलि के लिए पकड़ लेते हैं और युवकों को अपनी सेवा के लिए उस भयंकर गुफा में रह कर कितने ही सेवक उनके आश्रय में अघोरी बन गये। वहाँ जाना तो स्वयं अपनी मृत्यु को निमन्त्रण देने के समान है। उनसे तो दूर रहना ही अच्छा है।"

"तुम ठीक कह रहे हो सन्यासी! किन्तु यह सलाह तो उन्हीं के लिए उचित है जिन्हें केवल अपने प्राणों की चिन्ता हो। उनके अत्याचारों से समाज की रक्षा करने के लिए किसी को तो आगे आना ही होगा। इस प्रकार कब तक निर्दोष जन उनके आतंक का शिकार बनते रहेंगे।"

"परन्तु उनकी संख्या बहुत अधिक है। कम से कम तीन सौ व्यक्ति तो ऐसे हैं ही जो फणिदत्त के एक संकेत पर प्राण दे सकें। वे सभी अत्यन्त क्रूर और अनाचारी हैं।"

"इसलिए तो उनका विनाश करना और भी आवश्यक हो गया है।" उनके दल के साथ कदम मिला कर चलता हुआ वह बोला -

"फणिदत्त और मणिदत्त जुड़वाँ भाई हैं। दोनों एक से क्रूर और अत्याचारी। मणिदत्त माता का अनन्य भक्त है। भक्त तो फणिदत्त भी है परन्तु उसकी उपासना स्वार्थ पर आधारित है।"

"कैसा स्वार्थ?"

मुचकुन्द ने पूछा।

"अमर होने की प्रबल इच्छा ही उसका स्वार्थ है। इसीलिए वह स्वप्न में प्राप्त निर्देश के आधार पर एक सहस्र कुमारी कन्याओं की बलि देना चाहता है और इसके लिए उसने अपने सभी अनुचरों को सभी दिशाओं में भेज रखा है जो उसके लिए देश देश से कुमारी कन्याओं का अपहरण कर के लाते हैं। उन्हें उसने उसी गहरी गुफा के किसी अदृश्य कक्ष में छिपा रखा है।"

"उस गुफा में कितने व्यक्ति रहते हैं उसके साथ?"

"लगभग पच्चीस व्यक्ति मुख्य गुफा जिसे वह शक्तिपीठ कहता है उसमें रहते हैं तथा कुछ बन्दियों की सुरक्षा तथा रसद आदि के प्रबन्ध के लिए कुल पैतालीस से पचास अनुचरों के साथ वे दोनों भाई उस मन्दिर वाली गुफा में निवास करते हैं। सभी अनुचरों को सशस्त्र, खड़ग सहित रहना अनिवार्य है। वे सब पागल हैं स्वामी जी! बहता हुआ लाल रक्त देख कर प्रसन्नता से नाच उठते हैं। मूर्ति को रक्त-स्नान करा के बलिदान देते हैं और फिर उसी बलि पशु को आग में भून कर खा जाते हैं। सुरा सेवन तो पानी के समान करते हैं। अफीम, मदक का भी सेवन करते हैं तभी तो उनके नेत्र सदा अंगारों के समान लाल रंग के दहकते रहते हैं।"

सन्यासी ने झुरझुरी सी ली।

"अब तुम चिन्ता न करो भाई! बस हमें उस तक पहुँचने का मार्ग बता दो। समझ लो कि अब संसार से इस बुराई के नष्ट होने का समय आ गया है।"

मार्टंड ने उसके कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा -

"स्त्रियों के प्रति अमर्यादित व्यवहार करने वाला क्षमा का पात्र नहीं हो सकता। स्त्री के विनाश का अर्थ है सृष्टि का विनाश। उसकी अनुमति किसी को कैसे दी जा सकती है? संसार में इससे बड़ा कोई दूसरा पाप नहीं है। स्त्रियों के प्रति अमर्यादित आचरण करने वाला तथा स्त्री जाति की बलि देने वाला मनुष्य मातृ-देवी या चंडिका माता का पुजारी कैसे हो सकता है?

रुद्रायन – 2

उसकी आराधना देवी स्वीकार नहीं कर सकती। उसे मार डालना ही सबसे बड़ा सत्कार्य है।"

"हाँ स्वामी जी! सत्य कह रहे हैं आप। चलिए, मैं आप लोगों को वहाँ ले चलूँगा।"

मन्त्रमुग्ध स्वर में कहा सन्यासी ने।

अब उन्हें अपने लक्ष्य की दिशा का ज्ञान हो गया था इसलिए भटकना छोड़ कर वे सन्यासी द्वारा निर्दिष्ट दिशा में चल दिए।

सूर्यास्त होने तक वे अपने लक्ष्य के निकट पहुँच चुके थे। चारों ओर घना वन प्रदेश था जो एक ओर कुछ अधिक ही घना हो गया था। उन्हीं घनी झाड़ियों के पीछे उस गुफा का मुहाना था। सन्यासी ने ही उन्हें बताया था कि रात्रि में वे आराधना करते हैं। सभी जागते रहते हैं इसलिए रात्रि में वहाँ जाना उचित नहीं होगा। रात्रि-जागरण के बाद जब प्रातः की सुखद बेला में वे नींद में हों तभी गुफा में प्रवेश करके उन पर विजय पायी जा सकती है। ऐसे में उन्हें पराजित करना सरल होगा।

यही निश्चय हुआ। वहाँ से कुछ दूर हट कर उनका दल रात्रि विश्राम के लिए ठहर गया। नदी वहाँ से अधिक दूर नहीं थी। नदी की धारा अर्द्धचन्द्राकार होकर उस गुफा को तीन ओर से घेर कर बहती आगे निकल जाती थी। सम्भवतः इसीलिए वह गुफा एक सुरक्षित दुर्ग बन गयी थी जिसे तीन ओर से नदी की और सामने से वन की सुरक्षा मिल रही थी।

गुफा का मुख तिरछी चट्टान के पीछे छिपा हुआ था जो सामने से देखने पर सीधी चट्टान ही दिखाई देता था। अनजान मनुष्य तो निकट जाकर भी वापस लौट जाता क्योंकि पहली दृष्टि में गुफा का मुहाना नजर ही नहीं आता था। उस तिरछे द्वार से भी एक साथ दो व्यक्ति कठिनाई से प्रवेश कर सकते थे। इसी सुरक्षा के कारण ही अब तक कोई फणिदत्त तक नहीं पहुँच सका था। उस अनजान पीड़ित सन्यासी का साथ न मिलता तो सम्भवतः अभी वे गहन वन प्रदेश में ही भटकते रहते। सत्य ही कहा गया है - जो अच्छाई के मार्ग पर चलते हैं, जिनके उद्देश्य सद होते हैं उनकी सहायता परिस्थितियाँ और संयोग भी करते हैं।

रात्रि में साथ लाए सूखे फलों आदि का सेवन करके मार्टड मुनि और उनके साथियों ने गोदावरी का शीतल जल पिया और वृक्षों की डालियों पर बैठ कर रात्रि व्यतीत होने की प्रतीक्षा करने लगे। तीन पहर रात बीतने पर मार्टड मुनि ने उन्हें अपने विशेष सांकेतिक ध्वनि से सतर्क कर दिया और वो निःशब्द वृक्ष से उत्तर-उत्तर कर एक स्थान पर एकत्र हो गये। मार्टड ने उन्हें अपनी योजना समझाई और वे सभी दबे पाँव गुफा के मुख्य द्वार की ओर बढ़ने लगे। सर्वप्रथम सन्यासी ने गुफा के द्वार के निकट चट्टान पर कान सटा कर कुछ सुनने का प्रयास किया। आराधना के समय बजने वाले वाद्य का स्वर बन्द हो चुका था। भीतर सन्नाटा छाया हुआ था। किसी प्रकार का कोई शब्द सुनाई नहीं दिया तो उसने अनुमान लगा लिया कि सब सो गये होंगे या सोने की तैयारी कर रहे होंगे।

धरि-धरी उसका संकेत पाकर दल आगे बढ़ा और एक-एक करके दबे पाँव गुफा में प्रवेश कर गया। गुफा की दीवार से सट कर वे खिसक खिसक कर आगे बढ़ रहे थे। कुछ आगे गुफा में प्रकाश दिखाई दे रहा था। गुफा वहाँ से घूम गयी थी। मोड़ पर मशाल जल रही थी। दो मोड़ घूमने के बाद गुफा चौरस हो गयी थी। वहाँ गुफा पर्याप्त ऊँची और चौड़ी थी। थोड़ी दूर पर नौ मशालें जल रही थीं। सामने विशाल चबूतरे पर देवी की काले पत्थर से बनी अनगढ़ प्रतिमा थी जिसके सामने बलिस्थल था और चारों तरफ खून ही खून बिखरा हुआ था। उसी चबूतरे के पास दो विशाल आकार वाले एक समान पुरुष सुरा पान कर मस्त पड़े हुए थे। उनके निकट अधर्खाया मांस और हड्डियाँ पड़ी हुई थीं। गुफा में यत्र-तत्र कुछ स्त्री पुरुष नंग-धड़ंग से पड़े हुए थे। उनके खड़ग भूमि पर पड़े थे। सभी सुरा के नशे में थे और रात्रि जागरण के बाद थक कर सो गये थे।

पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार कुछ योद्धा देवी मूर्ति के पीछे से गुफा में आगे बढ़ गये। उस स्थान के चारों ओर गुफाओं की कई शाखाएँ फूटी हुई थीं। चार-चार की संख्या में सौराष्ट्रवासी एक-एक गुफा में प्रवेश कर गये। उन्हें बन्दियों को मुक्त कराने का कार्य सौंपा गया। शेष योद्धा मार्टड के साथ रह कर मुख्य युद्ध में भूमिका निभाने वाले थे।

रुद्रायन – 2

फणिदत्त और मणिदत्त के रूप को एक सा देख कर मार्टड ने अनुमान लगा लिया था कि वे ही मुख्य अधोरी हैं जिन्होंने पूरे लोक में आतंक मचा रखा है। उन्हें देख कर वह क्रोध से काँप उठा। आगे बढ़ कर उसने लात मार कर उन्हें उठाया -

"उठ रे अधोरी! इस तरह स्वांग करके सो रहा है जैसे सारे संसार पर अपना अधिपत्य जमा लिया हो।"

हड्डबड़ाकर उठ गये दोनों। सामने मार्टड तथा उनके साथियों को सशस्त्र युद्ध के लिए तत्पर देखकर फणिदत्त चिल्लाया -

"ठहरो धोखेबाजों! सोते हुओं पर वार करते हो? यहाँ तक आ कैसे गये तुम लोग? और मेरे अनुचर कहाँ हैं?"

"वे सब तुम्हारे सामने ही उधर कोने में पड़े हैं। हमें धोखेबाज कहते हो? हमें सोते हुए लोगों पर वार करने वाले कहते हो? और स्त्री चोर! तू क्या जाने कि नैतिकता क्या होती है?"

"तुमने हमें स्त्री चोर कहा?"

मणिदत्त चिल्लाया।

"स्त्रियों का अपहरण करने वाले को स्त्री-चोर ही तो कहा जाता है।"

"वे बलि-पशु हैं। उन्हें हमने सत्कार्य के लिए उठाया है।"

"कैसा सत्कार्य?"

"उन्हें माता के सम्मुख बलिदान होने का अवसर दे रहे हैं हम! उन्हें मुक्ति प्राप्त करने का अवसर देना क्या सत्कार्य नहीं है?"

"अरे धूर्त! कुतर्क करता है? अपना सिर काट कर क्यों नहीं बलि दे देता अपनी? क्यों नहीं अपनी मुक्ति का उपाय करता लम्पट?"

मार्टड ने क्रोध से बिफरते हुए कहा -

"उठा अपना शस्त्र! साहस है तो सामना कर मेरा अन्यथा अभी तेरा सिर काट कर माता के चरणों में बलि देकर तुझे मोक्ष प्रदान करता हूँ।"

"जा मणि! मजा चखा दे इसे इसके दुस्साहस का।"

फणिदत्त ने अपने भाई के हाथ में खड़ग थमाते हुए कहा।

मणिदत्त खड़ग लेकर मार्टड पर टूट पड़ा। उन्हें लड़ते देख उसके अनुचर भी नशे से चकराते हुए अपने सिरों को झटक कर मार्टड के साथियों पर आक्रमण करने लगे। भयंकर युद्ध होने लगा। मार्टड की युद्ध निपुणता के सामने मणिदत्त बच्चा था। वैसे भी इसके पूर्व कभी फणिदत्त ने उसे इस प्रकार युद्ध करने के लिए नहीं उकसाया था। वह सदा उसकी रक्षा ही करता था। इसलिए मणिदत्त देवी की पूजा सामग्री एकत्र करने तथा अपने भाई के साथ उसकी साधनाओं में सहयोगी ही बना रहता था। अब तक। एक तो सुरापान और भरपेट मांस खाने से उसका शरीर शिथिल हो रहा था साथ ही उसे निद्रा भी सता रही थी। मार्टड के साथ युद्ध करना उसके वश की बात नहीं थी। दो-चार उल्टे सीधे हाथ चला कर ही वह खड़ग गँवा बैठा। मार्टड के खड़ग ने उसे धायल कर दिया था। उसके शरीर के घावों से रक्त बहने लगा। यह देख कर वह घबरा उठा -

"बचाओ भइया! मुझे इससे बचा लो। मार डालेगा यह मुझे।"

"तू अपनी रक्षा नहीं कर सकता तो मेरी क्या सहायता करेगा? उठ! लड़!"

फणिदत्त ने क्रोधित होकर कहा। मणिदत्त को भयभीत देख कर वह स्वयं खड़ग लेकर मार्टड पर टूट पड़ा। दोनों में घमासान युद्ध होने लगा। उन्हें लड़ते देखकर अपने भाई का सहयोग करने के विचार से मणिदत्त ने भी खड़ग उठा कर मार्टड पर प्रहार किया। उसके प्रहार से बचते हुए मार्टड ने खड़ग लहराया तो मणिदत्त का सिर धड़ से अलग होकर मातृदेवी की मूर्ति के चरणों में जा गिरा। सौराष्ट्र वासियों ने हर्ष ध्वनि की। इस बीच उन्होंने बचे खुचे शत्रुओं को मार दिया था। यह देख कर पूरी शक्ति से फणिदत्त युद्ध करने लगा -

"हत्यारे! तूने मेरे भाई को मार दिया? अब मैं तुझे नहीं छोड़ूँगा।"

मार्टड ने उसकी बात का उत्तर अपने त्रिशूल से दिया।

आखिर अकेला फणिदत्त कब तक लड़ता? अनाचारों से उसका शरीर मोटा और थुलथुला हो चुका था। मार्टण्ड के कसे हुए शरीर और युद्ध निपुणता के सामने अधिक देर तक वह न टिक सका। मार्टड के

रुद्रायन – 2

त्रिशूल ने शीघ्र ही उसके प्राण हर लिये।

विजयी साथी हर्षोल्लास के साथ जय जयकार करने लगे। जिन दो व्यक्तियों ने उनके जीवन में विष घोल रखा था और उनके समस्त आचार-संहिता को तहस-नहस कर दिया था, जिनके भय से वे काँपते रहते थे, उन्हीं अनाचारियों को मार्टड मुनि ने अपनी अद्भुत बुद्धि का प्रयोग करते हुए इतनी सरलता से मार कर उनके निर्मम अत्याचारों से समाज को मुक्ति दिला दी थी।

"स्वामी जी की जय!"

"मार्टड मुनि की जय!"

"अधोरी बाबा की जय!"

परन्तु मार्टड मुनि अभी भी प्रसन्न नहीं हुए। अभी तक उनके साथी अपहरण करके लाई गई स्त्रियों को मुक्त करा कर नहीं लाए थे। मुख्य गुफा से चारों ओर फूटती उन शाखाओं में से किस शाखा में प्रवेश करके वे बन्दियों को रखते थे इसका ज्ञान हुए बिना मुक्त कैसे कराया जाए? अब वे क्या करें?

प्रतीक्षा ही की जा सकती थीं उनकी। अपने साथियों को सतर्क रहने का आदेश देकर मार्टड स्वयं भी प्रतीक्षा करने लगे।

कितनी ही देर बाद उन गुफा मार्गों से एक-एक करके उनके दल के योद्धा लौटने लगे। उन्हें उन गुफाओं में कहीं बन्दियों का आभास तक नहीं मिल पाया था। सब वर्ही मुख्य गुफा में एकत्र हो रहे थे। भीड़ बढ़ती जा रही थी। इधर-उधर शत्रुओं के शव पड़े थे। अपने पक्ष के घायल वीरों के घावों को पोंछ कर उन्होंने कपड़ा लपेट कर तत्काल उपचार द्वारा उनका रक्त प्रवाह रोक दिया था। शेष उपचार तो बाहर जाने पर ही सम्भव था।

मार्टड ने चार युवकों के एक दल के साथ अपने दो शिष्यों को घायलों के उपचार के लिए वनौषधियाँ एकत्र करने के लिए वन प्रदेश में भेज दिया -

"तुम लोग औषधियाँ एकत्र करके रखो तब तक हम भी वहाँ आ जाएँगे। शत्रुओं से सावधान रहना।"

"शत्रु कौन बचा अब प्रभु?"

"फणिदत्त के शेष अनुचर अभी भी यत्र-तत्र विचरण कर रहे हैं। उन्हें फणिदत्त और मणिदत्त के पराभव का अभी ज्ञान नहीं है। ज्ञान होने पर भी उनकी क्या प्रतिक्रिया होगी- कुछ कहा नहीं जा सकता इसलिए सावधान रहना। यदि मुठभेड़ हो ही जाए तो शत्रुओं पर दया न करना।"

"जो आज्ञा स्वामी जी!"

आदेश पाकर वे गुफा से बाहर चले गये। इस प्रकार मार्टड ने आने वाले सम्भावित आक्रमण से भी बचाव कर लिया था।

सभी गुफा द्वारों से उसके भेजे दल के युवक लौट आए थे। केवल मध्य की चौथी गुफा से कोई नहीं लौटा था। मार्टड ने उसी मार्ग में जाने का निर्णय लिया। यदि अगले कुछ क्षणों में कोई संकेत नहीं मिला तो वे स्वयं भीतर जाकर देखेंगे। सम्भवतः उनका भेजा हुआ दल संकट ग्रस्त हो और उसे सहायता की आवश्यकता हो।

कुछ देर प्रतीक्षा करने के बाद वे अभी उस गुफा में प्रवेश करने की सोच ही रहे थे कि तभी उधर से कुछ कोलाहल आता सुनाई दिया। सभी सतर्क होकर उस गुफा के निकट खड़े होकर देखने लगे। कोलाहल निकट आने लगा और कुछ ही क्षणों में उस गुफा-द्वार से युवतियों का समूह बाहर आने लगा। मार्टड के भेजे युवकों में से एक आगे आगे चल रहा था। उसके पीछे दो पंक्तियों में युवतियाँ बाहर आने लगीं।

"तुम्हारे और साथी कहाँ हैं?"

मार्टड ने पूछा।

"वे इन शियों को व्यवस्थित ढंग से भेजने के लिए गुफा में ही ठहर गये हैं। वहाँ केवल दो ही बन्दी रक्षक थे और वे भी असावधान थे। बड़ी सरलता से हमने उन्हें बन्दी बना लिया।"

"ओह!"

मार्टड चुप रह गये।

रुद्रायन – 2

उस छोटी सी गुफा में भीड़ बढ़ती देख कर मार्टड अपने साथियों के साथ गुफा के द्वार से बाहर आ गये। उनके पीछे-पीछे स्त्रियाँ दो-दो की संख्या में बाहर आती रहीं। उन स्त्रियों की संख्या चार सौ से भी अधिक थीं। यह सब करते सबेरा हो गया था। चारों ओर सुबह की सुनहरी धूप फैल गयी थी। जब सभी स्त्रियाँ बाहर आ चुकी तो मार्टड ने पाया कि उनमें महालसा नहीं थी।

"क्या सभी स्त्रियाँ बाहर आ गयी हैं?"

मार्टड मुनि ने पूछा।

"हाँ स्वामी जी! अब गुफा में कोई भी नहीं है!"

सबसे बाद में आने वाले दल के युवकों ने कहा। वे अपने साथ दोनों बन्दी-रक्षकों को भी साथ ही ले आए थे जो बुरी तरह से घायल थे।

"परन्तु ये सभी स्त्रियाँ नहीं हैं। इनमें महालसा नहीं है। और भी युवतियाँ न हों सम्भवतः।"

मार्टड ने चिन्तित होकर कहा।

"परन्तु गुफा में तो अब कोई भी नहीं है।"

"अब ये बन्दी रक्षक ही बताएँगे कि इनके अतिरिक्त और स्त्रियाँ कहाँ रखी गयी हैं।"

मार्टड ने क्रोधित होकर बन्दी-रक्षकों से प्रश्न किया।

"बताओ! अन्य स्त्रियाँ कहाँ हैं?"

"हम नहीं जानते। वास्तव में हम नहीं जानते।"

वे गिड़गिड़ाए।

"झूठ मत बोलो। सत्य कहो अन्यथा तुम्हारी बलि भी मातृदेवी को चढ़ा दी जाएगी।"

"हम मातृदेवी की सौगन्ध खाकर कहते हैं। हमें कुछ भी नहीं ज्ञात है। हम तो इन्हीं स्त्रियों की रक्षा के लिए नियुक्त थे।"

"क्या किसी और स्थान पर स्त्रियाँ रखी जाती हैं?"

"नहीं! कहीं नहीं!"

उसी समय मुचकुन्द एक युवती के साथ निकट आकर बोला -

"यह स्त्री आपसे कुछ कहना चाहती है गुरुदेव!"

"हाँ कहो! क्या कहना चाहती हो?"

मार्टिंड ने पूछा।

"हमारे दल की कुछ स्त्रियाँ बन्दीगृह के पीछे की पतली दरार से बाहर निकल कर बाहर चली गयी हैं।"

"परन्तु पीछे तो नदी है और बन्दीगृह से उधर जाने का कोई मार्ग नहीं है।"

"हाँ भद्र! ठीक कह रहे हैं आप! नदी की एक पतली धारा उस गुफा में आई है जहाँ हमें रखा गया था। वह मार्ग बहुत संकरा है और उधर से नदी की धारा भीतर की ओर आकर दूसरी ओर से पतले छिद्र से बाहर निकल जाती है। उसी संकरे पानी से भेरे छिद्र से कुछ दिन पूर्व लायी गयी स्त्री महालसा और उसके साथ दो अन्य स्त्रियाँ महालक्ष्मी और शारदा बन्दी रक्षकों की असावधानी का लाभ उठा कर बाहर चली गयीं।"

वह बोली।

"उधर से जाना असम्भव है। उन छिद्रों में नदी का वेग बहुत तेज है। यदि वे उधर से निकलती हैं तो अवश्य मर गयी होंगी। उधर से निकलना तो साक्षात् मृत्यु को निमन्त्रण देना है। वहाँ गुफा की दीवार चार हाथ चौड़ी है। उसके बाद गहरी नदी।"

एक बन्दी-रक्षक बोल उठा।

"किन्तु वे उसी ओर से गयी हैं वापस नहीं लौटीं। उन्होंने हमसे भी कहा था पर हम इतना साहस न दिखा सकें।"

युवती ने बताया।

"महालसा मर नहीं सकती। जीवित है वो।"

मार्टिंड उद्घिन होकर बोल उठे।

"अब क्या किया जाए स्वामी जी?"

सहयोगी अघोरियों ने आगे आकर पूछा।

रुद्रायन – 2

"मुचकुन्द! अब ये सारी स्त्रियाँ तुम्हारी जिम्मेदारी हैं। इन्हें इनके घर सुरक्षित पहुँचाने का महत्वपूर्ण कार्य तुम्हें करना है अतः इन सभी योद्धाओं की सुरक्षा में स्त्रियों को लेकर वापस लौट जाओ।"

"और आप? आप क्या हमारे साथ नहीं चल रहे हैं?"

मुचकुन्द ने पूछा।

"नहीं! मुझे महालसा तथा उसके साथ जाने वाली स्त्रियों को ढूँढ़ कर सुरक्षित वापस लाना होगा।"

"आप... अकेले ही...। नहीं गुरु जी! आप इन योद्धाओं में से कुछ को लेकर उन्हें ढूँढ़ने जाएँ। तब तक हम सब यहीं आपकी प्रतीक्षा करेंगे।"

"यह उचित नहीं होगा। यह बन प्रदेश है। खुला और असुरक्षित। मुझे लौटने में अधिक समय भी लग सकता है। तब तक इतनी स्त्रियों को बन में रखना उचित नहीं है। तुम सब वापस जाओ।"

"तो आप सबके साथ लौट चलें गुरु जी! मैं चार योद्धाओं को लेकर उनकी खोज में जाता हूँ।"

"नहीं मुचकुन्द! मैं बिना महालसा को लिए नहीं लौट सकता। लौटने पर जब गोदावरी मुझे महालसा के विषय में पूछेगी तो मैं उसे क्या उत्तर दूँगा? महालसा को लिए बिना मेरा जाना सम्भव नहीं होगा।"

"तो ठीक है। आप इन सभी को वापस जाने दें। मैं स्वयं आपके साथ ही रहूँगा। मुझे अपने चरणों से पृथक मत कीजिए गुरु जी!"

कहते कहते मुचकुन्द मार्टड के चरणों पर गिर पड़ा। उसकी आँखें छलक उठीं।

उसके उस प्रेम को देख कर मार्टड ने उसे साथ रखना स्वीकार कर लिया। उसने अपने सहयोगी अधोरियों को उन सबका दायित्व सौंप कर उन्हें सकुशल उनके माता पिता तक पहुँचाने का वचन ले लिया।

"आपका दिया हुआ कार्य हम सब मिल कर पूर्ण करेंगे प्रभु! पुनः हम उसी शमशान भूमि में आपके बताए मार्ग का अनुसरण करते हुए इस पन्थ को जीवित रखेंगे। फणिदत्त और मणिदत्त के अनुयाइयों के लिए आपका क्या आदेश है?"

"यदि वे फणिदत्त मणिदत्त की स्वर्ग-यात्रा के विषय में जानने के बाद कदाचरण त्याग कर नियमानुसार परोपकार करते हुए अघोर मार्ग का अनुसरण करें तो उन्हें क्षमा कर देना अन्यथा मानवता के उत्पीड़कों को पृथ्वी पर जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं है।"

मार्टड ने अपना दो टूक निर्णय सुना दिया।

उस विशाल जनसमूह को वापस जाने का आदेश देकर मार्टड और मुचकुन्द नदी की ओर बढ़ गये। रास्ता ऊबड़-खाबड़ था और स्थान-स्थान पर कँटीली झाड़ियों से अवरुद्ध हो रहा था। अपने खड़ग से उन्हें काट कर राह बनाते वे नदी के किनारे जा पहुँचे। वहाँ नदी उस विशाल पर्वत खंड को अर्द्धचन्द्राकार रूप से घेरती हुई बह रही थी। नदी के दूसरे तट पर भी इसी प्रकार का घना वन दिखाई दे रहा था। वहीं कहीं महालसा अपनी दोनों साथिनों के साथ जीवन रक्षा हेतु संघर्ष कर रही होगी।

वही तट मार्टड का भी लक्ष्य था। बीच में नदी का चौड़ा पाट फैला हुआ था जिसे देख कर उनके मन में अनेक संकल्प विकल्प उठ रहे थे। नदी की इतनी वेगवती धारा में क्या वे स्त्रियाँ स्वयं को बहने से बचा पायी होंगी? यदि वे बच भी गयी होंगी तो नदी के इतने चौड़े पाट को तैर कर पार करना कैसे सम्भव हुआ होगा? तो क्या महालसा...। नहीं नहीं...ऐसा नहीं हो सकता। मार्टड जीवित है तो महालसा भी मर नहीं सकती। यदि ऐसा कुछ हुआ होता तो मार्टड का हृदय उसे अवश्य ही बता देता। महालसा को ढूँढ़ना ही होगा, चाहे जैसे...।

एक क्षण ही विचार किया मार्टड ने और अगले ही पल वह नदी में कूद पड़ा। उसके पीछे ही मुचकुन्द ने भी छलांग लगा दी।

०००

रुद्रायन – 2

आँखें खुलने पर महालसा ने स्वयं को उस विशाल गुफा में पाया था जहाँ अनेकों युवतियाँ बन्दी बनाई गयी थीं। वे ही उसके मुख पर पानी के छींटें डाल कर और आँचल से हवा करके उसकी चेतना वापस ला रही थीं। वहाँ उनके भोजन के लिए पर्यास फल-फूल-अन्न था परन्तु वे उस बन्दीगृह से बाहर नहीं जा सकती थीं। गुफा अन्दर से बहुत विस्तृत थी। उसकी छत बहुत ऊँची थी और उसी ऊँचाई पर कुछ ऐसे अदृश्य विवर बने हुए थे जिनसे हवा और हलका प्रकाश गुफा में आता था। उसी के आधार पर वे दिन और रात होने का अनुमान लगा पाती थीं।

एक ओर से गुफा की दीवार में बने छिद्र से निकल कर पानी की धारा गुफा के किनारे से होती हुई दूसरी ओर के छिद्र में समा गयी थी। पानी की धारा तेज थी इससे उसने अनुमान लगाया कि वह नदी की धारा है। वही पानी उनके जीवन का आधार बना हुआ था। वहाँ उसे ज्ञात हुआ कि उन कुमारियों को वहाँ बलि देने के लिए एकत्र किया जा रहा है। फणिदत्त नामक कोई अघोरी एक सहस्र कुमारी युवतियों की बलि देकर अमरत्व प्राप्त करना चाहता है।

किसी दूसरे के प्राण लेकर कोई अमर कैसे हो सकता है?

दूसरों का जीवन छीन कर क्या अपने जीवन की अवधि बढ़ाई जा सकती है?

नश्वर संसार में अमरत्व की इच्छा क्या विडम्बना नहीं है?

क्या वे बलि-पशु हैं?

कदापि नहीं।

महालसा का हृदय विद्रोह कर उठा।

इस गुफा से बाहर निकलना ही होगा।

परन्तु कैसे?

बहुत प्रयास करने पर भी वह बाहर निकलने का मार्ग न ढूँढ़ सकी तो उसकी दृष्टि उस नदी की धारा पर ही स्थिर हो गयी। अब यह नदी ही उसे बाहर निकलने का मार्ग दे सकती थी परन्तु यह कार्य सरल नहीं था। नदी की धारा जिधर से गुफा में प्रवेश करती थी और जिस ओर से बाहर

जाती थी वे दोनों ही छिद्र बहुत छोटे थे और नदी का प्रवाह तीव्र। पानी पूरे छिद्र में से तीव्र गति से प्रवेश करता था। पानी की धारा के ऊपर इतना स्थान भी नहीं था कि सीधा खड़ा हुआ जा सके। यही स्थिति उस ओर भी थी जिधर से जल बाहर जाता था। बहुत सोचने के बाद भी जब और कोई मार्ग न सूझा तो महालसा ने उसी मार्ग से बाहर जाने का निर्णय लिया।

"यह असम्भव है। इधर से बाहर जाना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है।"

अन्य स्त्रियों ने उसे रोका परन्तु बन्दी बन कर दूसरों के संकेत पर असद-आशय के लिए प्राण देना उसे स्वीकार नहीं था।

"मैं इस मार्ग से बाहर जाने का प्रयत्न करूँगी। कोई मेरे साथ आना चाहे तो आ जाए।"

"परन्तु यह तो आत्महत्या का मार्ग है।"

"उस अघोरी के हाथों प्राण देने से तो इस प्रकार मुक्ति का प्रयास करते हुए प्राण दे देना अधिक अच्छा है।"

महालसा दृढ़ता से बोली।

"मैं भी तुम्हारे साथ हूँ।"

महालक्ष्मी नामक युवती ने आगे बढ़कर कहा।

"और मैं भी।"

यह शारदा थी।

तीनों ही युवतियों ने अपने वस्त्रों को कस कर बाँध लिया और नदी की धारा के मुहाने की ओर बढ़ गयीं। वे आगे बढ़ने का प्रयत्न कर रही थीं और पानी की धारा उन्हें बार-बार पीछे धकेल देती थी। फिर भी उन्होंने हार नहीं मानी। संघर्ष करते हुए आगे बढ़ने का प्रयत्न करती रहीं और अन्ततः सफल भी हुईं। सबसे आगे महालसा थी। उसके पीछे महालक्ष्मी और उसके पीछे शारदा। तीनों ने आपस में उत्तरीय से एक-दूसरी को बाँध रखा था जिससे समय पड़ने पर वे एक-दूसरे की सहायता कर सकें।

रुद्रायन – 2

गुफा-विवर से बाहर निकल कर महालसा ने किनारे के पत्थर को पकड़ कर उसके सहारे स्वयं को खींच लिया। उसने पीछे आ रही महालक्ष्मी को किनारे पर आने में सहायता की और फिर दोनों ने बल लगा कर शारदा को भी जल-धारा से बाहर खींच लिया। किनारे की चट्टान पर कुछ देर पड़ी रह कर वे अपनी श्वासों की गति व्यवस्थित करती रहीं।

कुछ क्षणों के बाद महालक्ष्मी बोली -

"हमें शीघ्र ही यहाँ से दूर जाना चाहिए। हमारे गुफा से बाहर आ जाने का समाचार बहुत देर तक गुप्त नहीं रह सकेगा और वे अधोरी हमें ढूँढ़ने के लिए निकल पड़ेंगे।"

"चिन्ता मत करो महालक्ष्मी! अभी बहुत देर तक उन्हें हमारे वहाँ न होने का पता नहीं चलेगा। इतनी स्थियों की भीड़ में हम तीनों को कौन पहचान पाएगा कि हम वहाँ नहीं हैं? हाँ, यदि उन स्थियों ने ही कुछ कह दिया तो और बात है।"

महालसा ने कुछ सोचते हुए कहा।

"नहीं नहीं! वे स्थियाँ हमारे साथ भागने के लिए भले ही साहस नहीं जुटा पाई लेकिन वे हमारे वहाँ से बाहर निकलने की बात किसी से नहीं कहेंगी। वैसे भी वह स्थान इतना दुर्गम है कि बन्दी-रक्षक वहाँ से किसी के भाग निकलने की बात तो सोच भी नहीं सकते।"

शारदा ने अपनी सम्मति प्रकट की।

"फिर भी हमें सावधान तो रहना ही चाहिए और यथासम्भव यहाँ से दूर भी चली जाना चाहिए।"

महालसा ने कहा।

"तो चलो। नदी पार करके उस ओर निकल चलों।"

शारदा बोली।

"उस ओर? इतनी चौड़ी नदी को तैर कर पार करना क्या सम्भव है?"

"तो अब क्या करें?"

"मेरे विचार से हमें थोड़ा आगे से घूम कर इस पर्वत के ऊपरी शिखर की ओर चलना चाहिए।"

शारदा कुछ सोचते हुए बोली।

"यहाँ रहने पर तो वे हमें सरलता से पकड़ लेंगे?"

महालक्ष्मी ने आशंका जताई।

"नहीं! शारदा ठीक कह रही है। हमें इसी पर्वत की ऊँची चोटी पर चलना चाहिए। आगे चलो अभी। फिर ऊपर चलेंगे।"

"लेकिन यह निरापद नहीं होगा महालसा!"

महालक्ष्मी बोली।

"यही निरापद है बहन! तुमने वह कहावत तो सुनी है न? दीपक तले अँधेरा। यही यहाँ भी चरितार्थ होगी।"

"वो कैसे?"

"वो इस प्रकार कि सबकी तरह वे अघोरी भी यही समझेंगे कि या तो हम नदी में ढूब कर मर जाएँगी या नदी पार कर इस स्थान से दूर हो जाएँगी। इसलिए वे हमें नदी पार के जंगलों में ही ढूँढ़ेंगे। हम दूर न जाकर इसी पर्वत की ऊँची चोटी पर छिपी हुई हैं यह तो उनकी कल्पना में भी न होगा। इस प्रकार हम सुरक्षित रहेंगी।"

महालसा ने उन्हें समझाया।

वे तीनों अपने वस्त्रों को निचोड़ कर फिर से बदन पर लपेट कर वृक्षों के पीछे से होकर स्वयं को छिपाती हुई धीरे-धीरे पर्वत शिखर की ओर बढ़ने लगीं। मार्ग में भूख मिटाने और प्यास बुझाने के लिए उन्होंने भूमि पर गिरे हुए कुछ नारियल के फलों को अपने उत्तरीय में बाँध लिया। महालसा वनों से भली भाँति परिचित थी और जानती थी कि किस वृक्ष के पत्ते, फल, फूल आदि को खाकर शक्ति प्राप्त की जा सकती है अतः उसने मार्ग में कुछ वृक्षों के फल, फूल और पत्तियाँ एकत्र कर लीं। उन्हें खाने से उन्हें शक्ति मिली और एक दूसरी का सहारा लेकर धीरे-धीरे वे पर्वत शिखर की ओर अग्रसर होती रहीं। अपनी सुरक्षा के लिए उन्होंने

रुद्रायन – 2

वृक्ष की टहनियाँ तोड़ कर उनके मुख भाग को नुकीला बना लिया। दिन भर चलने के बाद थक कर वे एक घने वृक्ष के तने से टिक कर आगाम करने लगीं।

"अब और नहीं चला जाता। सूर्य भी ढलने लगा है। हमें यहाँ कहीं रात बिताने का प्रबन्ध करना होगा। थोड़ी लकड़ियाँ एकत्र करके अरणी से रगड़ कर जला ली जाएं तो वन्य पशुओं का भी भय नहीं रहेगा।"

शारदा ने कहा।

"कह तो ठीक रही हो किन्तु बहन! यहाँ आग जलाना उचित नहीं है। उसका प्रकाश और धुआँ दूर से दिखाई दे जाएगा। तब कोई भी उस अग्नि का उद्भव ढूँढ़ता हुआ यहाँ तक आ सकता है।"

महालसा ने समझाया।

"परन्तु जंगली पशु? उनका क्या?"

"उनकी चिन्ता न करो। इतनी देर तक हम कहाँ से कहाँ चल कर आ गये परन्तु हमें अभी तक एक भी हिंसक पशु नहीं मिला। हिरण, खरगोश आदि की बात अलग है। मुझे तो लगता है यहाँ हिंसक पशु हैं ही नहीं या फिर एकाध कहीं होगा। उनसे बचाव के लिए हमें वृक्ष पर चढ़ कर रात बितानी होगी।"

महालक्ष्मी ने अपनी राय दी।

और फिर सर्वसम्मति से यही निश्चय किया गया। उन्होंने साथ लाए हुए एक एक नारियल को तोड़ कर उसका पानी पिया और गिरी खायी। अँधेरा होने से पूर्व ही वे एक ऊँचे वृक्ष पर चढ़ गयीं। उसकी मोटी डालों पर लेट कर उन्होंने स्वयं को उत्तरीय से उन डालों को कस कर बाँध लिया जिससे नींद के झोंके में नीचे न गिर जाएँ।

जैसे-तैसे करके रात्रि व्यतीत हुई। सूर्य निकलते ही वे वृक्ष से नीचे उतर आयीं और अपनी यात्रा आरम्भ कर दी। दोपहर उन्होंने घनी झाड़ियों के नीचे आगाम करते हुए बिताई। वे तब तक आगे चलती रहती थीं जब तक कि बुरी तरह थक कर चूर न हो जातीं।

दो दिनों की कठिन यात्रा के बाद वे एक गुफा के पास पहुँचीं। उन्हें गुफा के बाहर एक युवती मिली जो उन्हें देख कर ठिक गयी। उन्हें अपने निकट आती देख कर वह जोर से बोली -

"ठहरो! कौन हो तुम लोग? यहाँ क्या कर रही हो?"

तीनों रुक गयीं। उस युवती के शब्दों में कठोरता और अधिकार भावना थी। जैसे वे उसके अधिकार-क्षेत्र में अनधिकृत रूप से प्रवेश कर गयी हों।

"हम विपत्ति की मारी हैं। आश्रय ढूँढ़ रही हैं।"

महालसा ने उत्तर दिया।

"रुको! वहीं रुक जाओ।"

वह बोली और उसने अपनी कमर में बँधे लकड़ी के छोटे से वाद्य-यन्त्र को निकाल कर मुँह से लगा कर उसमें फूँक मारी। कर्कश, तीखी स्वरलहरी दूर तक फैलती चली गयी।

चकित सी वे तीनों सोच ही रही थीं कि उस युवती के पीछे स्थित बड़ी चट्टान के पीछे से कई स्थियाँ हाथों में लकड़ी के तीखे शूल लिए बाहर निकल आईं और उन्होंने बढ़ कर इन तीनों को घेर लिया।

"इन्हें माई के पास ले चलो।"

उस युवती ने आदेश दिया।

स्थियाँ इन तीनों को घेर कर पत्थर की चट्टान के पीछे स्थित गुफा की ओर ले चलीं।

वह गुफा वास्तव में एक गहरी सुरंग जैसी थी जिसका दूसरा सिरा एक बड़े चौरस मैदान में खुलता था। स्थियों के घेरे में चल कर महालसा, महालक्ष्मी और शारदा को उस विस्तृत मैदान में ले जाया गया जहाँ कई युवतियाँ और स्थियाँ एकत्र थीं। एक ओर एक छोटे से मंचनुमा चबूतरे पर सफेद बालों वाली वृद्धा बैठी थी। उसके चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ी हुई थीं जो उसके वयोवृद्ध होने की सूचना दे रही थीं। शेष स्थियाँ उसके सामने नीचे मैदान में बैठी हुई थीं और वह वृद्धा उन्हें कुछ समझा रही थी। जो युवती इन्हे साथ लाई थी वह आगे बढ़ कर झुक कर प्रणाम करके बोली -

रुद्रायन – 2

"प्रणाम माई।"

"ये तू किनको पकड़ लाई बगुली?"

वृद्धा ने पूछा।

"ये तीनों उधर वन में अकेली भटक रही थीं इसीलिए मैं इन्हें यहाँ
ले आई।" उस युवती ने उत्तर दिया।

"कौन हैं ये?"

"पता नहीं। अब आप ही पूछ लो माई।"

बगुली नामधारी युवती बोली।

माई के पूछने पर महालसा ने उन्हें अपना तथा महालक्ष्मी और
शारदा का नाम बताया और अघोरियों द्वारा अपहरण करने तथा
युक्तिपूर्वक उनके बन्दीगृह-गुफा से जलमार्ग से बाहर आने की पूरी कथा
सत्य-सत्य कह सुनाई। सब सुन कर माई ने उनके भोजन तथा विश्राम की
व्यवस्था करायी और कहा -

"बहुत कष्ट उठाया है तुम लोगों ने। जाओ भोजन करके विश्राम
करो। स्वस्थ हो जाओ तब हम तुम्हें अपना परिचय देंगी। अभी तो बस
इतना ही जान लो कि यहाँ तुम लोगों को कोई भय नहीं है। तुम मित्रों के
बीच हो।"

उस गत वे तीनों सुख से सोईं।

दूसरे दिन प्रातः सभी उसी मैदान में एकत्र हुईं तब वृद्धा माई ने उन्हें
बताया -

"मैं महामाया हूँ और ये सब मेरी पुत्रियाँ हैं।"

"आपकी पुत्रियाँ?"

महालसा ने चकित होकर पूछा।

"हाँ! जैसे तुम तीनों अब मेरी पुत्रियाँ हो उसी प्रकार ये भी मेरी
पुत्रियाँ हैं। तभी तो ये मुझे माई कहती हैं। मैं अब तुम तीनों की भी माई
हूँ।"

महामाया ने मुस्कराते हुए कहा।

"आओ! अब मैं तुम्हारी इन बहनों से परिचित करा दूँ यह जो तुम लोगों को कल यहाँ ले आई थी इसका नाम 'बगलामुखी' है। हम इसे प्यार से बगुली कहते हैं। कुछ क्रोधी स्वभाव की है किन्तु न्याय करती है। इसे अन्याय सहन नहीं होता। और यह दूसरी जो इधर खड़ी है- तनिक साँवले रंग वाली। यह शाकभरी है। हम सबके भोजन आदि की व्यवस्था वही करती है। इसलिए हम उसे अन्नपूर्णा भी कहते हैं। और यह गोरी गोरी सुन्दर बालिका दुर्गा है। यह कौशिकी, यह मातंगी। वह गुलाबी वस्त्रों वाली तारा है और इधर काले कपड़े वाली कालिका है। यह सुन्दर कन्या जिसकी आँखें सुरमयी रंग की हैं - यह धूम्रलोचना है। यह त्रिपुर सुन्दरी है। इसे प्यार से मैं त्रिपुरा कह कर बुलाती हूँ। बड़ी प्यारी बच्ची है। और वो दूसरी वाली भुवनेश्वरी है। यह छिन्नमस्ता है और यह श्रीविद्या। अपनी अन्य बहनों से भी तुम लोग शीघ्र ही परिचित हो जाओगी।"

महामाया मुग्धभाव से उन युवतियों को प्रेम भरी दृष्टि से देखती उनका परिचय दे रही थी।

'ये सारी कन्याएँ किसकी पुत्रियाँ हैं माई?"

महालक्ष्मी ने पूछा।

"सब मेरी ही पुत्रियाँ हैं अब तो। मैं नहीं जानती कि ये ऋषि कन्याएँ हैं या देव कन्याएँ। इनके जन्म की कथा मुझे नहीं ज्ञात है। मुझे तो जब भी जहाँ भी ये मिलीं अकेली ही मिलीं। इन्हें क्रूर समाज की कुदृष्टि से बचा कर मैं यहाँ ले आई और हमने यहाँ अपनी प्यारी सी बस्ती बसा ली। मैंने स्वयं इन्हें शूल से अपनी रक्षा करना सिखाया है। हम यहाँ सुख से रहती हैं। हमें किसी का भय नहीं क्योंकि हम सब अपनी रक्षा करने में सक्षम हैं। तुम लोगों ने भी वीरतापूर्वक साहस से अपनी रक्षा की है इसीलिए इस बस्ती के द्वारा तुम्हारे लिए खुले हैं। अब तुम भी हमारे परिवार का अंग हो। मैं सत्य कह रही हूँ न?" महामाया का स्वर स्नेहसिक्त था।

"हाँ माई! हम सब आपके साथ हैं। अब हम सब मिल कर युद्ध-कला सीखेंगी जिससे अपनी अन्य बहनों की रक्षा कर सकें। संसार से दुराचारियों का नाश कर सकें।" महालसा ने दृढ़ स्वर में उत्तर दिया।

अब वे अकेली नहीं थीं। उनके साथ स्त्रियों की सम्पूर्ण सेना थी जिन्हें महालसा थोड़े से प्रयत्न से संगठित कर सकती थी। उसे रुद्रदेव के त्रिशूल का ध्यान हो आया। उसने निश्चय किया कि वह इन स्त्रियों के शूल को त्रिशूल में परिवर्तित कर देगी और इन्हें युद्ध-कला की शिक्षा देगी।

उसी दिन से महालसा उनको प्रशिक्षित करने में लग गयी। सभी स्त्रियाँ बड़े मनोयोग से युद्ध-विद्या सीखने लगीं।

उस दिन शाकम्भरी के साथ भोजन व्यवस्था में सहयोग करने के उद्देश्य से दुर्गा भी अपनी प्रिय सखियों के साथ वन में चली गयी। शाकम्भरी ने अपनी अन्य सहयोगिनों के साथ अपने उस महामाया आश्रम के निकट अनेक फलदार वृक्षों को रोप दिया था जिससे आवश्यकता पढ़ने पर उन्हें सहज ही भोजन उपलब्ध करा सकें। उत्तर की ऊँची टेकरी के पीछे समतल मैदान था और उस ओर नदी की एक पतली धार भी बहती थी। उसके निकट उसने वन में प्राप्त होने वाले धान्य के पौधों को खेतों के रूप में उगाया था। वहीं निकट महुआ के वृक्षों का मधूक-वन था। जब उनमें महुआ के फूल लगते तो पूरा पर्वत उनकी मदहोश कर देने वाली सुगन्ध से महक उठता था। रात भर महुआ के फूल टपकते रहते। सुबह होते ही वह अपनी सभी बहनों के साथ जाकर उन्हें बीन लाती। उन्हें सुखा कर संरक्षित कर लिया जाता। यह उनका प्रमुख भोजन था। साथ में वन में स्थान-स्थान पर रतालू, मधुकन्द और सूरन के पौधे भी उग आए थे। इन्हें व्यवस्थित करके उनकी जड़ों से प्राप्त कन्द भी उन्हें पर्याप्त पौष्टिकता प्रदान करते थे।

दुर्गा रतालू के पौधे की जड़ को नुकीली टहनी से खोद रही थी। उसके मुख पर पसीने की बूँदें मोतियों के समान झलकने लगी थीं। वह मनोयोग से अपने कार्य में जुटी थी जब पीछे से आकर एक बलिष्ठ युवक ने उसे थाम लिया -

"बहुत थक गयी हो सुन्दरी! इतना श्रम क्यों कर रही हो? तुम तो राजसुख भोगने के लिए उत्पन्न हुई हो। अपने को मल शरीर पर इतना अत्याचार मत करो।"

"कौन? कौन है? छोड़ो मुझे!"

दुर्गा ने स्वयं को उसके बन्धन से मुक्त करने का प्रयत्न करते हुए कहा।

"लो, छोड़ दिया।"

उस व्यक्ति ने उसे छोड़ दिया।

"कौन हो तुम?"

दुर्गा ने क्रोधित होकर पूछा -

"इस प्रकार की अशिष्टता करने का तुम्हें साहस कैसे हुआ?"

"कैसी अशिष्टता? स्त्रियाँ पुरुषों का मनोरंजन करने तथा उन्हें सुख प्रदान करने के लिए ही तो होती हैं। तुम तो सर्वश्रेष्ठ हो। इतना श्रम करना क्या तुम्हें शोभा देता है? आओ, मेरी शय्या-संगिनी बनो! मैं...."

"चुप..... बिल्कुल चुप हो जाओ।"

दुर्गा ने अपने कान बन्द कर लिए।

उसकी तीव्र पुकार सुन कर शाकम्भरी तथा अन्य स्त्रियाँ भी वहाँ आ गयीं। उन्हें देख कर वह ठहाका लगा कर हँस पड़ा -

"आहा! आनन्द आ गया। यहाँ तो सुन्दरियों का समूह ही है। चलो, चलो। तुम सब चलो। मैं तुम सबको सुख से रखूँगा।

"अरे दुष्ट! तू है कौन? लगता है तुझे गुरुजनों ने शिष्टता नहीं सिखाई है। स्त्रियों का सम्मान न करके तू धृष्टता कर रहा है।"

दुर्गा चिल्लाई।

"मैं? मुझे नहीं जानती? मैं रुद्रपुत्र दुर्गम हूँ। यहाँ मेरा ही आदेश चलता है। जो मेरा आदेश नहीं मानता उसे मैं मार डालता हूँ। परन्तु तुम लोगों को भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। मैं फूलों और स्त्रियों से बहुत प्रेम करता हूँ। उनकी सुवास लेता हूँ और....." उद्दंडतापूर्वक बोलता हुआ दुर्गम दुर्गा के निकट आ गया और उसके कन्धे पर हाथ रख दिया।

दुर्गा ने उसे झटक कर दूर कर दिया तथा अपने हाथ में लिए हुए शूल को उठा कर दुर्गम के कन्धे पर वार कर दिया।

रुद्रायन – 2

"उफ्! ठहरा तेरा इतना साहस कि तू मुझ पर वार करे?"

दुर्गम क्रोध से भर कर अपनी तलवार निकाल कर उस पर झपटा।

दुर्गा ने झुकाई देकर स्वयं को बचाया तो अपने ही वेग में वह आगे बढ़ गया। तब तक शाकम्भरी तथा अन्य सखियों ने उसे घेर कर अपने हाथ में लिए हुए लकड़ी के तीखे सिरों वाले शूलों से मारना आरम्भ कर दिया। दुर्गम ने विरोध किया परन्तु इतनी स्नियों के सम्मुख उसका वश न चला। उसे धराशाई करके वे पीछे हट गयीं।

"चल दुर्गा! इसे पर्याप्त शिक्षा मिल चुकी है। इसमें थोड़ी सी भी लज्जा शेष होगी तो फिर यह कभी किसी स्त्री पर कुदृष्टि डालने का साहस नहीं करेगा।" शाकम्भरी ने कहा और वे सब वापस जाने के लिए मुड़ गयीं।

दुर्गा ने भी झुक कर अपने रतालुओं का ढेर उठा लिया और उनके साथ लौटने लगी। उसी समय दुर्गम ने पैर फँसा कर उसे गिरा दिया। क्रोध में भर कर दुर्गा उस पर टूट पड़ी। दोनों भयंकर रूप से लड़ने लगे। कभी दुर्गा उस पर प्रबल होती तो कभी दुर्गम उस पर हावी होने लगता। दुर्गा ने उसे जोर से धक्का दिया तो वह एक वृक्ष की टूटी हुई शाख पर गिर पड़ा और उसका नुकीला भाग दुर्गम की पीठ में घुस गया। क्रोध में भरी दुर्गा ने अपना शूल उठा कर उसकी छाती में घोंप दिया। कुछ क्षण तड़प कर उसने प्राण त्याग दियो।

क्रोध की अधिकता के कारण दुर्गा के नेत्र और मुख लाल हो रहे थे। उसकी आँखों से मानो आग बरस रही थी। एक वृक्ष से टिक कर वह लम्बी-लम्बी साँसें लेने लगी।

"शान्त हो जा! शान्त हो जा दुर्गा! मेरी बहादुर बहन! आज तूने इस निकृष्ट दुर्गम का विनाश करके संसार की बड़ी रक्षा की। न जाने यह पापी जीवित रहने पर और कितनी ही स्नियों का मान भंग करता, उनकी मर्यादा से खिलवाड़ करता। आज हम सब पर तूने उपकार किया है।"

शाकम्भरी ने उसे सीने से लगा लिया। एक सखी भाग कर नदी के जल में अपना उत्तरीय भिगो लाई और उससे दुर्गा का मुख पोंछने लगी।

दूसरी वृक्ष के चौड़े पत्ते तोड़ कर उनसे हवा करने लगी। धीरे-धीरे दुर्गा का क्रोध शान्त हो गया। वह अपनी सखियों के साथ अपने आश्रम में लौट गयी।

आश्रम में पहुँच कर जब यह समाचार माई को बताया गया तब वहाँ आश्रम की सभी स्थियाँ उपस्थित थीं। दुर्गा की वीरता की सभी ने प्रशंसा की। महालसा ने कहा -

"अब हमें अपने साथ अस्त्र-शस्त्र रखने होंगे। जो स्थिति दुर्गा के सामने आई वैसी कभी भी हमारे सामने आ सकती है।"

"परन्तु हमें अस्त्र-शस्त्र मिलेंगे कहाँ?"

मातंगी ने पूछा।

"दुर्गम नाम के उस आततायी का खड़ग और कटार तो हम उठा लाए हैं।"

"हाँ! उन्हें दुर्गा को दे दो। यही उसका पुरस्कार है।"

माई ने कहा।

"अब हमें अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए, अपनी रक्षा करने के लिए अस्त्र-शस्त्रों का प्रबन्ध करना होगा।"

बगलामुखी बोली।

"हम धनुष बाण तो अपनी वन-सम्पदा से ही बना सकते हैं।"

श्रीविद्या बोल उठी।

"हाँ! बाण के मुखाग्र पर लगाने के लिए पत्थर के टुकड़े घिस कर उनकी तीखी नोक बना ली जाएगी और उस पर मूर्छित करने वाली बूटी के रस का लेप भी कर दिया जाएगा।"

"यह ठीक रहेगा। इस काम में हमें आज ही से लग जाना होगा। हम सब अपने-अपने लिए दो-दो धनुष और कम से कम दस-दस बाण अवश्य बनाएँगी।"

शारदा ने कहा।

"एक बात मेरे भी मन में आई है।"

महालक्ष्मी बोली।

रुद्रायन – 2

"क्या?"

"बहन! मैंने सोचा है कि हम लकड़ी के कुछ मोटे कुन्दे से मुगदर भी बना सकते हैं।"

"मुगदर?"

"हाँ! वे इतने ही भार वाले होंगे जिन्हें हम सरलता से उठा सकें। उन मुगदरों के ऊपरी भाग पर भी हम बाण में लगाने वाले मुखाग्र के समान ही नुकीले पत्थरों के टुकड़े लगा देंगे तो वह अधिक घातक हो जाएगा।"

महालक्ष्मी ने बताया।

"यह सुझाव तो अत्यन्त उत्तम है। हम सब इन तैयारियों में लग जाएँ।"

महालसा ने माई की ओर देखते हुए कहा।

"हाँ पुत्री! सत्य कहा तुमनो। अपने प्राणों तथा उससे अधिक अपने सम्मान की रक्षा के लिए हम सब यह प्रबन्ध अवश्य करेंगी।"

महामाया ने सहमति देकर उनके प्रस्ताव पर स्वीकृति की मुहर लगा दी। दुर्गम के युद्ध की छोटी सी घटना ने उन्हें सतर्क कर दिया था। यही सतर्कता और तत्परता उनके लिये भविष्य में बहुत लाभप्रद होने वाली थी।

एक दिन वहाँ ब्रह्मदेव अपने परिजनों सहित आए। आश्रम के निकट आने पर महामाया स्वयं आश्रम से बाहर निकल आई। उसके पीछे दुर्गा, चंडिका आदि भी बाहर आ गयीं। नदी के विस्तृत तट पर उन्होंने ब्रह्मदेव का स्वागत किया।

"आप लोग यहाँ कैसे और किस उद्देश्य से पधारे हैं?"

महामाया ने पूछा।

"हम आपके प्रति अपना आभार व्यक्त करने के लिए आए हैं। आपकी पुत्री दुर्गा ने दुर्गम को मार कर हमारी बड़ी सहायता की।"

ब्रह्मदेव बोले।

"वह कैसे? और दुर्गम से आपकी कैसी शत्रुता?"

माई ने पूछा।

"दुर्गम सातवें रुद्र का पुत्र था। बाल्यावस्था से ही उद्दंड और अहंकारी। मेरा पुत्र वेद गुरुकुलों में अध्यापन करने वाले बालकों को कर्तव्य-अकर्तव्य, उचित-अनुचित और कर्म-अकर्म की बातें बता कर उन्हें धर्म के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करता था। दुर्गम को यह पसन्द नहीं था। उसे तो केवल अमर्यादित, उद्दंड आचरण ही प्रिय था। उसने अपने जैसे युवकों को एकत्र करके अपना अच्छा खासा एक दल बना लिया और वे मानव जाति को पीड़ित करने लगे। हमें दुःख देने के लिए इसने मेरे पुत्र वेद का अपहरण करके उसे बन्दी बना लिया। उसी को ढूँढ़ते हुए मैं प्रमुख देव-गणों तथा देव-सेना के साथ भटकता फिर रहा था। दुर्गम के मारे जाने पर उसकी सेना नेतृत्वहीन हो गयी। उसकी पत्नी की कृपा से वेद मुक्त हो गया। अब हम वापस अपने देश लौट रहे हैं। जाने से पूर्व हम आप सबको कुछ उपहार देना चाहते हैं।"

ब्रह्मदेव ने विनम्र होकर कहा।

"कैसा उपहार ब्रह्मदेव? दुर्गा ने तो दुर्गम को उसकी दुष्टता का दंड भर दिया था। इससे आपके पुत्र को स्वतन्त्रता मिली यह तो अच्छा ही हुआ। उपहार देने की कोई अवश्यकता नहीं है और न आपके इतना कृतज्ञ ही होने की।"

महामाया के स्वर में उपेक्षा थी।

"यह उपहार आपको अवश्य प्रिय लगेगा। आप इसे स्वीकार करें।"

ब्रह्मदेव ने कहा।

उनका संकेत पाकर उनके साथ आए परिजनों ने अपने साथ लायी गाड़ियों से सामान उतार कर भूमि पर रख दिया।

"इतने अस्त्र-शस्त्र?"

महामाया ने चकित होकर पूछा।

"हाँ देवी! अब हम अपने देश वापस जा रहे हैं। अतः इन्हें आपको समर्पित कर रहे हैं। आप तथा आपकी ये कन्याएँ इसका अधिक सार्थक उपयोग कर सकेंगी। ये अस्त्र-शस्त्र मिन्दिपाल, मुगदर, शूल, चक्र, खड्ग

रुद्रायन – 2

और कृपाण हैं जिनका प्रयोग आप भलीभाँति कर सकती हैं। इनके अतिरिक्त कुछ उत्तम कोटि के धनुष और शराग्र भी हैं।"

ब्रह्मदेव ने बताया।

इतने अस्त्र-शस्त्र पाकर उनकी प्रसन्नता का पार न रहा। उपहार देकर कृतज्ञता ज्ञापन करते ब्रह्मदेव अपने परिजनों सहित वापस लौट गये। तब माई ने उन सबके द्वारा सारे अस्त्र-शस्त्रों को सुरक्षित गुहावास में पहुँचवा दिया। अस्त्र-शस्त्रों को प्राप्त करने के उपरान्त उनके मनोबल में वृद्धि हो गयी। शीघ्र ही वे अभ्यास द्वारा उनके संचालन में निपुण भी हो गयीं।

उस दिन कौशिकी और तारा पानी लेने नदी की ओर गयी थीं। कुछ ही क्षणों बाद वे भागती हुई वापस आईं बुरी तरह से हाँफ रही थीं वे।

"क्या हो गया तुम दोनों को? इतनी डरी हुई क्यों हो?"

माई ने पूछा।

"वो.....वहाँ...."

"क्या? क्या है वहाँ? तुम लोग तो ऐसे भयभीत हो रही हो जैसे कोई भूत देख लिया हो॥"

"भूत नहीं माई! महिष!"

कौशिकी ने अपनी साँसों को स्थिर करते हुए कहा।

"महिष?"

"हाँ माई! वन में न जाने कहाँ से एक विशाल भैंसा आ गया है। उसने तो जैसे पूरे वन-प्रदेश को ही रौंद डाला है। अपने भयंकर नथुनों से वायु फेंकता विशाल सींगों से मार-मार कर उसने कई छोटे-छोटे वृक्षों को धराशाई कर दिया। हमें देख कर उसने हम पर भी आक्रमण कर दिया। बड़ी कठिनाई से हम भाग कर वापस आ पाई हैं।"

तारा ने बताया।

"भैंसा नहीं है वह। पूरा राक्षस है। इतना मोटा और बलवान जैसे पूरी पृथ्वी को ही खोद डालेगा। चारों ओर तबाही मचा रहा है वह। छोटे-मोटे जानवरों को पैरों से रौंद डालता है। मैंने वन में कई खरगोशों और हिरनों को मृत और घायल देखा॥"

"ओह! इस प्रकार तो यह सम्पूर्ण वन को ही नष्ट कर डालेगा!"

माई चिन्तित होकर बोलीं।

"हम सब मिल कर उसका सामना करेंगी। अपने अस्त्र-शस्त्र सँभाल लो।"

कालिका ने अपना खड़ग लहराते हुए कहा।

"अभी नहीं काली! अभी नहीं। सन्ध्या का समय है। कुछ ही देर में रात्रि का अन्धकार फैल जाएगा। तब उसे ढूँढ़ना सरल नहीं होगा। आज तुम अपनी तैयारी कर लो। कल प्रातः ही सब मिल कर इसी अभियान पर निकल पड़ना। उस महिष को वश में करके सीधा किया जा सके तो शान्त होकर वह हमारे काम आएगा अन्यथा..... "

"अन्यथा क्या माई?"

"अन्यथा अत्याचारी को दंड दे देना। जो दूसरों के प्राणों का मूल्य न समझे उसके स्वयं के प्राणों का भी कोई मूल्य नहीं होता। उसका जीवन तो पृथ्वी पर भार सदृश ही है। तुम उसे मार कर पृथ्वी का भार कम कर देना।"

माई ने मुस्करा कर कहा तो सभी हँस पड़ीं।

उस रात्रि उन्होंने उस विशाल महिष को घेर कर बन्दी बनाने की योजना बनाई। जंगली बेलों को बँट कर उनकी मजबूत रस्सी बना कर रख ली। प्रातः खड़ग, शूल, धनुष बाण और रस्सी का गुच्छा लेकर वे महिष को ढूँढ़ने वन में निकल पड़ीं। इसके लिए उन्होंने दो दो के दल बना लिए थे जिससे सम्पूर्ण वन में उस निर्मम महिष को ढूँढ़ा जा सके।

महालसा के साथ अम्बिका वन में मध्य भाग की ओर चलीं। शारदा और तारा पूर्व दिशा की ओर तथा छिन्नमस्ता और बगुला पश्चिम की ओर। महाकाली और श्रीविद्या ने उत्तर दिशा में प्रस्थान किया तो शाकम्भरी और मातंगी ने दक्षिण दिशा की ओर। महालक्ष्मी महामाया माई के साथ ऊँचे स्थान पर चढ़ कर महिष की स्थिति का निरीक्षण करना चाहती थी अतः वे पर्वत के शिखर की ओर चल पड़ीं। वे पूरी तरह सावधान तथा सतर्क थीं। आगे बढ़ते हुए वे जोर-जोर से बातें कर रही थीं।

जिससे महिष उनकी ओर आकर्षित होकर सामने आ जाए। उनके जोर-जोर से बोलने की आवाजों ने सोए हुए महिष की निद्रा भंग कर दी। क्रोधित होकर वह ध्वनि की दिशा में दौड़ने लगा। ध्वनि चारों ओर से आ रही थी। इसीलिए भ्रमित होकर वह क्रोध में अन्धा होकर जोर-जोर से पृथ्वी पर पैर पटकता हुआ रम्भाने लगा। उसके भयंकर शब्द को सुन कर एक क्षण के लिए तो उन सुन्दर कन्याओं के भी हृदय काँप उठे।

धनुष पर बाण चढ़ा कर वे सन्नद्ध हो गयीं। कालिका ने अपना खड़ग सँभाल लिया। महालसा ने त्रिशूल आगे की ओर कर लिया। विशाल वट वृक्ष के पीछे हुंकारते महिष को देख कर वे सतर्क होकर स्वयं को वृक्षों के पीछे करके उस पर बाण वर्षा करने लगीं। महिष ने क्रोध में भर कर सामने के वृक्ष में टक्कर मारी तो वह चरमरा गया। वृक्ष पर स्थित पक्षी चीखते हुए उड़ गये।

महिष तारा के दल पर झपटा तो कालिका खड़ग लेकर उसके सामने कूद पड़ी। मातंगी और कौशिकी उसे शूलों से छेदने लगीं। भयंकर युद्ध होने लगा। कभी महिष एक दल पर झपटता तो कभी दूसरे पर किन्तु वह किसी भी दल को घायल नहीं कर पा रहा था। महालसा और श्रीविद्या उसे बाणों से बांधने लगीं। दुर्गा ने आगे बढ़ कर उस पर रस्से का फन्दा बना कर फेंका जो उसके गले में जा पड़ा। दुर्गा के साथ छिन्मस्ता भी आगे आई और वे उस रस्से को वृक्ष में बाँधने का प्रयास करने लगीं।

बन्धन में बाँध कर महिष ने क्रोध में भर कर अपने सींग छुका कर मस्तक से वृक्ष पर प्रहार किया। बचने के लिए दुर्गा पीछे हटी तो उसके हाथ से रस्सा छूट गया। छिन्मस्ता भी उसे पकड़े नहीं रह सकी। रस्सा तुड़ा कर महिष पर्वत शिखर की ओर दौड़ा जहाँ अम्बिका माई के साथ खड़ी थी। इस भागदौड़ में दिन बीत चला था। कुमारियों के साथ-साथ वह महिष भी थक रहा था, परन्तु उसके क्रोध और जोश में कोई कमी नहीं आई थी। शत्रुओं को आहत न कर पाने के कारण उसका क्रोध बढ़ता ही जा रहा था और उसके बल को क्षय कर रहा था। शिखर की ओर दौड़ते महिष के पैरों को लक्ष्य करके बगुलामुखी ने अपने हाथ में

लिया हुआ शूल फेंका। महिष की मोटी चमड़ी को वह बेध तो नहीं सका किन्तु उससे उलझ कर वह गिर अवश्य पड़ा। महिष के गिरते ही अम्बिका खड़ग लेकर उस पर टूट पड़ी। उसने महिष के सीने में अपनी तलवार पूरी घुसेड़ दी। रक्त-वमन करता हुआ वह तड़प कर मर गया।

"जुग जुग जियो अम्बिका!"

माई हुलस कर बोली।

उसकी सभी कन्याएँ अम्बिका की जय जयकार करती धन्य धन्य कहने लगीं। आखिर उसने उस असुर जैसे महिष का वध जो कर दिया था। विजय के उल्लास में भर कर अपने उत्तरीयों से पसीना पोंछती वे सभी एक दूसरी से चुहल करती अपने आवास की ओर लौट पड़ीं।

दैत्यराज शुम्भ का दरबार लगा था। उसके विशाल सिंहासन पर उसके निकट ही उसका भाई निशुम्भ भी बैठा हुआ था। दोनों जुड़वाँ भाई थे और उनमें आपस में अत्यधिक प्रेम भी था इसीलिए वे दोनों समान रूप से राजकार्य संभाल रहे थे। शुम्भ या निशुम्भ दोनों का ही आदेश राजा का आदेश माना जाता था। दोनों के स्वभाव, प्रकृति और विचारों में आश्र्यजनक समानता थी और प्रेम की भावना ऐसी कि एक-दूसरे के लिए अपने प्राण देने के लिए तत्पर रहते। वे एक-दूसरे के लिए प्राण दे भी सकते थे और अहित की चाह करने वाले के प्राण ले भी सकते थे।

ब्रह्मदेव के पुत्र वेद के अपहरण होने के उपरान्त अधिकांश देवतागण उनके खोए हुए पुत्र की खोज में लग गये तब इन्द्र का साम्राज्य असुरक्षित हो गया। इन्द्र स्वयं भी वेद की तलाश में ब्रह्मदेव के साथ स्थान-स्थान पर भटक रहे थे। अवसर पाकर दैत्यराज शुम्भ ने अपनी प्रबल सेना के साथ देवलोक पर आक्रमण कर दिया। और शेष देवों को युद्ध में हरा कर खदेड़ दिया।

इन्द्रलोक में इन्द्र का राजसिंहासन अपने अधिकार में आते ही शुम्भ ने स्वयं तथा निशुम्भ को दैत्यों का राजा होने के साथ ही देवलोक का राजा भी घोषित कर दिया। देवों की सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया और वहाँ की स्त्रियों पर भी। देवों की स्त्रियाँ अपनी मर्यादा की रक्षा के लिए वन कन्दराओं में जा छिपीं और अप्सराएँ असुरक्षित होने के कारण दैत्यों के अधीन हो गयीं।

जब ब्रह्मदेव तथा अन्य देवता गण वेद को दुर्गम दैत्य के बन्दीगृह से मुक्त कराके वापस देवलोक पहुँचे तो दैत्यों की प्रबल सेना ने उन्हें उनके ही राज्य में प्रवेश नहीं करने दिया। इस अफरा-तफरी में देव विघटित हो गये थे। उनकी सेना नेतृत्वहीन होकर दैत्यों से पराजित होने पर इधर-उधर भाग गयी थी। विवश होकर देव प्रमुख इन्द्र तथा उनके साथी देवताओं सूर्य, वरुण, अग्नि, पवन आदि को भी आत्मरक्षा के लिए वन की कन्दराओं में आश्रय लेना पड़ा। ब्रह्मदेव अपने पुत्र के साथ ब्रह्मलोक चले गये।

शुम्भ और निशुम्भ राज्यसभा में बैठ कर अप्सराओं का नृत्य देख रहे थे और सुरा पान का आनन्द ले रहे थे जब उनके मित्र मन्त्री-पुत्र प्रचंड ने आकर उनसे कहा -

"दैत्यराज की जय हो!"

"अहा! प्रचंड! आओ आओ!" शुम्भ ने उसका स्वागत करते हुए कहा।

"दैत्यराज! मैं आपसे कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।"

"हाँ-हाँ! कहो न! क्या कहना चाहते हो?"

निशुम्भ ने पूछा।

"मैं आखेट करने के लिए गहन वन में गया हुआ था। यह तो आप जानते ही हैं।"

"हाँ! तुम्हारे भाई चामुंड ने बताया था। वहाँ तुम अपने साथियों से बिछड़ गये थे। चामुंड सैनिकों के साथ तुम्हें ढूँढ़ता रहा। फिर निराश होकर लौट आया।"

"हाँ दैत्यराज! अपने सैनिकों और भाई से बिछड़ कर एक जंगली सुअर का पीछा करता हुआ मैं वन में भटक गया था। वह शूकर भी घने वन में कहीं भाग गया। मैं मार्ग भूल गया और दिन भर इधर-उधर भटकता रहा। सन्ध्या समय मैं एक नदी के तट पर पहुँच गया। भूख प्यास से व्याकुल होने के कारण मैंने मुँह हाथ धोकर जल पिया। उस समय मुझे नदी के दूसरे तट पर कुछ स्त्रियाँ दिखाई दीं।"

"तो?"

"उनमें एक स्त्री अत्यन्त सुन्दरी थी। चन्द्रमा जैसा उसका उज्ज्वल मुख दूसरे तट से भी दिखाई दे रहा था। सभी स्त्रियाँ उसके सौन्दर्य के सामने तुच्छ प्रतीत हो रही थीं। उनका पीछा करते हुए मैं नदी पार करके उस ओर पहुँचा परन्तु तब वे दूर पहाड़ी पर जाती हुई दिखाई दीं। मैंने उनका पीछा किया किन्तु वे उस पर्वत शिखर की शिलाओं के बीच कहीं खो गयीं। दैत्यराज! आपके पास इन्द्रलोक का साम्राज्य और सुन्दर

रुद्रायन – 2

अप्सराएँ हैं। आपकी पत्नियाँ भी सुन्दरी हैं परन्तु वह स्त्री! अद्भुत है उसका सौन्दर्य!"

"क्या कहना चाहते हो प्रचंड! स्पष्ट कहो!"

शुभ्म ने पूछा।

"दैत्यराज! संसार की श्रेष्ठतम वस्तुओं पर सर्वशक्तिमान का अधिकार होता है अतः वह सुन्दरी भी आपके अधिकार में होने योग्य है। वह स्त्रियों में अमूल्य रत्न के समान है। उसे आप दोनों भाइयों में से किसी एक की पत्नी बनना चाहिए। इससे आपकी प्रतिष्ठा और अधिक बढ़ जाएगी।"

प्रचंड ने बताया।

"क्या वह वस्तुतः इतनी ही सुन्दर है जैसी तुम कह रहे हो?"

शुभ्म ने पुनः पूछा।

"मैं उसके सौन्दर्य का वर्णन नहीं कर सकता स्वामी! वह स्त्रियों के उस समूह में तारों के बीच चन्द्रमा के समान सुशोभित हो रही थी। वह तो जैसे अँधेरी रात में खड़ी हो जाए तो उजाला कर दे। उसके बड़े-बड़े नेत्रों से जैसे आलोक छिटक रहा था। उसके बाल इतने घने और काले थे कि उनके सम्मुख मेघ घटाएँ भी लज्जित हो जाएँ। दूर होने के कारण मैं इतना ही देख सका राजन! पर्वत शिखर की ओर जाते समय उसकी मतवाले हाथी जैसी चाल देख कर ही मैं उसे देखता रह गया। वह आप के ही योग्य है स्वामी!"

प्रचंड ने फिर कहा।

उस सुन्दरी का वर्णन करते समय उसके अर्द्ध-निमीलित नेत्रों के सम्मुख जैसे वह साकार हो उठी थी।

"क्या कहते हो भाई?"

शुभ्म ने भाई निशुभ्म की ओर देख कर पूछा।

"यदि वह वास्तव में इतनी सुन्दरी है तो उससे आपको अवश्य विवाह कर लेना चाहिए।"

निशुभ्म ने उत्तर दिया।

"ठीक कहते हो तुम! प्रचंड! तुम अपने भाई चामुंड के साथ कुछ सैनिकों को ले लो। रत्नगार से रत्नमंजूषा को विभिन्न रत्नों से भर लो और कुछ सुन्दर वस्त्र आभूषण भी ले लो। जाकर तुम उस स्त्री से हमारा आदेश कहो। उससे कहना कि हम उससे विवाह करना चाहते हैं। वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर वह हमारे दरबार में आए और हम दोनों भाइयों में से किसी एक का वरण कर लो।"

शुम्भ ने आदेश दिया।

दैत्यराज का आदेश पाकर प्रचंड प्रसन्न हो गया। वह पूर्ण रूपेण राजभक्त था और शुम्भ तथा निशुम्भ पर उसकी विशेष श्रद्धा थी। राजा का आदेश पाते ही वह उस दिव्य स्त्री के पास जाने की तैयारियाँ करने लगा। रत्नमंजूषा के साथ उसने विभिन्न वस्त्र और आभूषणों के साथ एक सुन्दर अलंकृत पालकी भी साथ ले ली। अपने भाई चामुंड के साथ उसने चार सैनिकों का एक छोटा-सा दल साथ ले लिया।

उन कोमल अंगों वाली स्त्रियों को मनाने जाने के लिए ये चार सैनिक भी बहुत थे। वह वहाँ युद्ध करने तो जा नहीं रहा था जो उसे सेना साथ ले जाने की आवश्यकता होती। विवाह का प्रस्ताव प्रस्तुत करने में सैनिकों का क्या काम? वह स्वयं दैत्यराज की सेना की एक टुकड़ी का प्रमुख था। उसका भाई चामुंड भी शुम्भ निशुम्भ के प्रमुख अंग-रक्षकों में सम्मिलित था और उनकी वीरता अप्रतिम थी। सारी तैयारी करने के पश्चात दूसरे दिन प्रातः ही उन दोनों भाइयों ने प्रस्थान किया।

प्रातःकाल का सुन्दर समय। सुगन्धित पवन मन्द गति से बह रहा था। भुवन भास्कर का रक्तवर्ण अभी पूरी तरह छूटा नहीं था। उसकी स्वर्णिम आभा जैसे वृक्षों की फुगनियों पर सोना बिखरा रही थी। वन प्रान्त में प्रातःकाल खिलने वाले कुसुम अपनी पंखुरियाँ खोल रहे थे। दूर नदी की लहरों से स्वर्णिम किरणें अटखेलियाँ कर रही थीं। अम्बिका महालक्ष्मी, दुर्गा और तारा के साथ प्रातःकाल के उस सुन्दर वातावरण का आनन्द ले रही थी। दुर्गा और तारा ढेरों फूल चुन कर आँचल में भर लायी थीं और अब बबूल के काँटों में अमरबेल की पतली लतर फँसा कर वे सब पुष्पहार बना रही थीं। अम्बिका एक ऊँची शिला पर बैठी नदी की ओर देख रही थी जब उसने उस ओर से जगमगाती स्वर्णिम पालकी के साथ कुछ घुड़सवारों को उसी ओर आते देखा।

"दुर्गा! देखो तो कुछ लोग इसी ओर आ रहे हैं!"

वह दुर्गा की ओर उन्मुख होकर बोलीं।

"हाँ! एक-दो-तीन-चार-पाँच और छः। कुल छः घुड़सवार हैं। और उनके साथ चार व्यक्ति एक बड़ी डोली भी उठाए हुए हैं। सोने की पालकी!"

दुर्गा ने उचक कर चट्टान के पीछे नदी की ओर देख कर कहा।

"पता नहीं कौन लोग हैं?"

तारा अन्यमनस्क सी बोली।

"जो भी हैं, इसी ओर आ रहे हैं!"

महालसा सतर्क हुई।

"दुर्गा और तारा! तुम लोग अम्बिका के पास चली जाओ। हम दोनों इधर चट्टानों के पीछे हैं। हमारे पास धनुष बाण भी हैं। आपात-काल आने पर युद्ध के लिए तैयार रहेंगे।"

महालक्ष्मी एक चट्टान के पीछे जाती हुई बोली।

दुर्गा और तारा अम्बिका के पास चली गयीं। उन्होंने अपने खड़ग निकाल लिए थे और उस चट्टान के निकट छिप कर खड़ी हो गयी थीं जिस पर अम्बिका बैठी थी। इस प्रयास में उनके आँचल से कुछ फूल

अम्बिका के चारों ओर बिखर गये। अम्बिका ने आधे बने गजरे को बाँध कर अपने कंठ में डाल लिया और लापरवाह होने का अभिनय करने लगी।

सोने की पालकी को नदी के मार्ग से लाने वाले सेवकों को संकेत से प्रचंड ने आगे जाने का आदेश दिया। वे पालकी लेकर अम्बिका की ओर बढ़े।

"ठहरो! वहीं रुक जाओ।"

अम्बिका कड़क कर बोली।

सब जहाँ के तहाँ ठिठक कर खड़े हो गये। तब तक प्रचंड, चामुंड और उनके सैनिक घोड़ों से उतर कर खड़े हो गये थे। उन्हें वहीं ठहरने का संकेत करके प्रचंड दो कदम आगे आया और अभिवादन करता हुआ बोला -

"अभिवादन करता हूँ सुन्दरी।"

"कौन हो तुम? यहाँ क्यों आए हो?"

अम्बिका ने पूछा।

"मैं दैत्यराज शुम्भ का मित्र, उनके मन्त्री का पुत्र प्रचंड हूँ और यह मेरा छोटा भाई चामुंडा। हम दोनों दैत्यों के पराक्रमी राजा शुम्भ तथा उसके पराक्रमी भाई निशुम्भ के हितैषी, मित्र तथा सैन्य-प्रमुख भी हैं। यहाँ हम दैत्यराज का सन्देश लेकर आए हैं।" प्रचंड ने कहा।

"कैसा सन्देश?"

"दैत्यराज शुम्भ ने सन्देश भेजा है कि वे आपसे विवाह करने के इच्छुक हैं। उनकी इच्छा है कि आप उनका या उनके भाई निशुम्भ का, जिसका भी चाहें वरण करके उनकी पत्नी बनना स्वीकार कर लें।"

"कौन हैं ये शुम्भ और निशुम्भ? उनके विषय में मुझे बताओ।"

अम्बिका ने कोमल स्वर में पूछा।

"आप दैत्यराज शुम्भ और उनके बलवान भाई निशुम्भ से परिचित नहीं हैं? उनके पराक्रम से धरती काँपती है। उन्होंने देव जाति को हरा कर देवलोक से भगा दिया है और स्वर्य इन्द्र बन गये हैं। स्वर्ग-लोक तथा

रुद्रायन – 2

असुर-लोक की सारी सम्पदा उनके अधिकार में है। वे चाहते हैं कि आप जैसी सुन्दरी स्त्री उनके रनिवास में सम्मिलित हों। वे आपको अपनी प्रधान रानी बनाना चाहते हैं।"

प्रचंड ने अपने राजा की प्रशंसा करते हुए कहा।

उसकी बात सुन कर अम्बिका मुस्कराने लगी। उसे चुहल सूझी हँस कर बोली -

"परन्तु तुम्हारे महाराज शुभ्म और उनका पराक्रमी भाई निशुभ्म स्वयं क्यों नहीं आए? मैं उनका प्रस्ताव स्वीकार न करूँ तो?"

"तो हम आपको बलपूर्वक ले जाएँगे। यही आदेश है दैत्यराज का!"

"ओह! तो अपने दैत्यराज से मेरी प्रतिज्ञा के विषय में निवेदन कर दो।"

"कैसी प्रतिज्ञा?"

"मैंने अपनी वीरता के दम्भ में प्रतिज्ञा कर ली है कि मैं उसी से विवाह करूँगी जो मुझे युद्ध में पराजित कर देगा। तुम जाकर दैत्यराज को यह बता दो। वे आएँ और मुझे जीत कर ले जाएँ दोनों भाइयों को निमन्त्रण देना। जो मुझे पराजित कर देगा मैं उसी से विवाह कर लूँगी।"

अम्बिका ने कहा।

उसकी बात सुन कर दुर्गा, तारा आदि मुस्कराने लगीं। परन्तु अम्बिका की प्रतिज्ञा की बात सुन कर प्रचंड तिलमिला उठा -

"क्या तुम स्वयं को इतनी वीर समझती हो? स्त्रियों का कार्य घर गृहस्थी सँभालना, पति का मनोरंजन करना और सन्तान उत्पन्न करना होता है न कि युद्ध करना। तुम्हें तो मैं ही युद्ध में पराजित कर दूँगा। परन्तु यह मैं अपने लिए नहीं अपने स्वामी कि लिए करूँगा।"

प्रचंड ने खड़ग निकालते हुए कहा।

वह तीव्रता से अम्बिका की ओर झपटा। अम्बिका ने पैंतरा बदल कर अपनी कमर में बँधी तलवार खींच ली और प्रत्याक्रमण के लिए तत्पर हो गयी। प्रचंड ने उसे साधारण निर्बल स्त्री समझ कर उसे बन्दी

बनाने का उपक्रम किया किन्तु अम्बिका की तलवार के एक ही वार ने उसका सिर काट दिया। यह देख सभी हतप्रभ रह गये। भाई का वध देख कर चामुंड क्रोध में भर कर अम्बिका की ओर झापटा किन्तु वह भी उसका सामना न कर सका। दो ही वार में अम्बिका ने उसे भी निर्जीव कर दिया।

प्रचंड और चामुंड के धराशायी होते ही उसके सैनिकों का मनोबल टूट गया। अम्बिका के साथ ही दुर्गा और तारा भी उन पर टूट पड़ीं। कुछ ही क्षणों में वे सभी मारे गये उस एक के अतिरिक्त जो भाग कर एक पत्थर की शिला के पीछे छिप गया था।

"बाहर आओ। शिला के पीछे छिपने से प्राण नहीं बचते परन्तु तुम निश्चिन्त होकर बाहर आ जाओ। हम तुम्हें नहीं मारेंगी। तुम हमारा सन्देश ले जाकर अपने दैत्यराज को सुनाने के लिए ही जीवित छोड़ दिए गये हो।"

अम्बिका ने कहा।

भय से काँपता वह सैनिक शिला के पीछे से बाहर आ गया।

"आज्ञा... आज्ञा दें देवी!"

हाथ जोड़ कर बोला वह।

"निर्भय हो जाओ। हमने तुम्हें प्राणदान दे दिया है। अब तुम अपने राजा के पास जाकर उसे यहाँ जो कुछ भी हुआ उसे बता दो। उससे मेरी प्रतिज्ञा के विषय में भी बता देना।"

"जो आज्ञा।"

सैनिक ने सिर झुका कर प्रणाम किया और घोड़े पर चढ़ कर लौट गया।

"अब?"

महालसा ने पूछा।

"अब क्या? चलो देखें। उस पालकी में क्या है।"

दुर्गा हँस कर बोली।

सब पालकी के निकट जा पहुँचीं।

रुद्रायन – 2

"इतने वस्त्र और आभूषण! अद्भुत हैं ये!"

"हाँ! इन्हें माई के पास ले चलते हैं। वही इनका उपयोग बताएँगी।"

अम्बिका ने कहा। सब पालकी सहित सारे वस्त्र और आभूषण लेकर अपने आश्रम में लौट गयीं। माई ने वे वस्त्र और आभूषण उन्हीं कन्याओं में बाँट दिए। उन्हें सावधान रहने के लिए सचेत करते हुए महामाया ने कहा -

"तुम लोगों ने दैत्यराज को चुनौती दे दी है। अब जब भी वन में जाना सावधान रहना और कभी अकेली मत जाना। सदा याद रखना - एक बाँह ही दूसरी बाँह को सहारा देती है।"

"आपकी यह सीख हम हमेशा याद रखेंगी माई।"

उन्होंने स्वीकार कर लिया।

दो दिन बाद - - -

अम्बिका नहा धोकर लाल रंग की सुन्दर पाढ़ वाली साड़ी बाँध कर खड़ी हुई। उसका रूप लाल साड़ी में और भी निखर आया था। खुले बालों से घिरा उसका मुख बादलों से घिरे चन्द्रमा की शोभा धारण कर रहा था। उस दिन सभी कन्याओं ने वस्त्र और आभूषणों से स्वयं को सजा लिया था। सुरक्षा की दृष्टि से वे अपने अस्त्र साथ ही रखती थीं विशेषकर धनुष बाण जिनसे दूर से ही शत्रु पर आक्रमण किया जा सके। उस दिन महामाया भी उनके साथ थी।

श्वेत वस्त्र और खुले बालों में उनका भव्य रूप देखने वालों के हृदय में श्रद्धा उत्पन्न कर देता था। अपनी भविष्य गणना के आधार पर उन्हें विश्वास था कि आज का दिन युद्ध का होगा। दैत्यराज शुम्भ और उसका भाई निशुम्भ अवश्य आक्रमण करेंगे और अम्बिका का अपहरण करने की चेष्टा भी करेंगे। इसीलिए वे सभी प्रत्येक परिस्थिति से निपटने के लिए तैयार थीं। उन्होंने स्नान ध्यान के पश्चात वन में ही वन्य फलों का भोग लगाया तथा पर्वत के ऊँचे शिखर पर पूर्व की भाँति ही चट्ठानों की ओट लेकर बैठ गयीं। दूर से देखने पर ऊँची शिला पर बैठी अम्बिका ही दिखाई देती थी। शेष सभी शिलाओं की आड़ लेकर विश्राम कर रही थीं।

दोपहर दिन चढ़े नदी के दूसरे तट पर दैत्य सेना की हलचल दिखाई देने लगी। इस बार दैत्यराज शुम्भ ने अपने प्रधान सेनापति रक्तबीज के नेतृत्व में पचास सैनिकों को भेजा था। रक्तबीज का भी मुख्य उद्देश्य अम्बिका को शुम्भ से विवाह करने के लिए तैयार करना ही था। सैनिकों के साथ नदी पार करके वे बालू भरे मैदान में आ गये। जब उन्हें दूर पर्वत शिखर पर लाल वस्त्रों में सजी अम्बिका दिखाई दी।

"ओह! इतनी सुन्दरता?"

चकित रह गया रक्तबीज।

उसने अपने सैनिकों को दूर पर ही रोक दिया और स्वयं आगे बढ़ा। अम्बिका से पर्याप्त दूरी पर पहुँच कर उसने उच्च स्वर में कहा -

"मैं दैत्यराज शुम्भ का प्रधान सेनापति रक्तबीज हूँ। मुझे दैत्यराज ने आपको साथ ले जाने के लिए भेजा है। आप हमारे साथ दैत्यराज के पास चलने की तैयारी करें।"

"क्या तुम्हारे सैनिक ने तुम्हारे राजा को मेरी प्रतिज्ञा से अवगत नहीं कराया?"

अम्बिका ने पूछा।

"कराया था परन्तु दैत्यराज अत्यन्त दयालु हैं। वे आपको किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाना चाहते इसीलिए उन्होंने कहलाया है कि आप अपना हठ छोड़ कर उनका वरण कर लें।"

सेनापति रक्तबीज ने कहा।

"वह हठ नहीं प्रतिज्ञा है और मैं प्रतिज्ञा बद्ध हूँ। तुम्हारा दैत्यराज केवल नाम का ही राजा प्रतीत होता है। वह अत्यन्त कायर है अन्यथा एक स्त्री से युद्ध करने में कैसा भय?"

"मुख सँभाल कर बात कर मूर्ख स्त्री! और मेरे राजा का आभार मान जो उन्होंने तुझे अपनी पत्नी बनाने का निर्णय लिया है। उनके सामने तू एक पल भी नहीं ठहर सकती। क्यों व्यर्थ अपने प्राण गँवाना चाहती है?"

रुद्रायन – 2

रक्तबीज अपने राजा की निन्दा सुन कर अपना आपा खो बैठा और अशिष्टता करने लगा।

"सेनापति!"

अम्बिका दहाड़ उठी -

"मूर्ख! तू अपने राजा की व्यर्थ प्रशंसा मत करा जा, अपने प्राण बचा कर भाग जा। क्यों अपने और इन निरीह सैनिकों के प्राण गँवाता है? तुम्हारा दैत्यराज स्वयं तो अपने भवन में छिप कर बैठा है और तुम्हें यहाँ मरने के लिए भेज दिया।"

अम्बिका गरजी।

अपने स्वामी के प्रति ऐसे शब्द सुन कर रक्तबीज क्रोध में भर कर अम्बिका की ओर झपटा। उसके पीछे उसके सैनिक भी दौड़ पड़े। शिलाओं की ओट से महामाया के नेतृत्व में दुर्गा आदि स्त्री सेना ने तीखे बाणों से सैनिकों को हताहत करना प्रारम्भ कर दिया। अम्बिका अपना त्रिशूल लेकर रक्तबीज पर झपटी। दूसरी ओर से चट्ठान के पीछे से निकल कर काली ने उस पर खड़ग का प्रहार किया। रक्तबीज भी विकट योद्धा था। प्राणपण से जूझ पड़ा वहा।

आधे प्रहर तक दोनों ओर से अस्त्र-शस्त्र चलते रहे। अन्ततः रक्तबीज का सिर कट कर भूमि पर गिर पड़ा। सेनापति के गिरते ही दैत्यों की सेना भाग खड़ी हुई। उसके अधिकांश सैनिक या तो मारे जा चुके थे या भूमि पर घायल पड़े थे। बचे हुए सैनिक भाग कर शुम्भ की सभा में अम्बिका की विकट वीरता का समाचार पहुँचाने के लिए पहुँच गये। महामाया के निर्देश पर दैत्य सेना के सभी अस्त्र-शस्त्र एकत्र कर लिए गये। अब उन्हें दैत्यराज शुम्भ तथा उसके भाई की प्रतीक्षा थी।

इधर देवता-गण जो स्वर्ग लोक से निष्कासित कर दिए जाने के कारण पर्वत की कन्दराओं में छिप कर निवास कर रहे थे वे सभी एकत्र होकर ब्रह्मदेव के पास पहुँचे और उन्हें अम्बिका तथा अन्य स्त्रियों द्वारा दैत्यराज शुम्भ की सेना से युद्ध करने की बात बता कर अम्बिका की सहायता करने की इच्छा प्रकट की। परन्तु ब्रह्मदेव ने उन्हें रोकते हुए कहा

"नहीं देवगण! यह उचित नहीं होगा। शुम्भ के पराक्रम से आप लोहा नहीं ले सकते। यदि आप उसे पराजित कर पाए होते तो आज आप लोगों को स्वर्ग-लोक छोड़ कर इस प्रकार दर-दर न भटकना होता।"

"परन्तु प्रभु! वे स्त्रियाँ दैत्यराज से एकाकी ही संघर्ष कर रही हैं। ऐसे में हमारा इस प्रकार भयभीत होकर छिपे रहना उचित नहीं है। हम उनकी सहायता करना चाहते हैं।"

देवों ने कहा।

"तो आप उनकी सहायता अस्त्र-शस्त्र आदि देकर कीजिए।"

"परन्तु क्यों प्रभु?"

"क्योंकि आप दैत्यों से युद्ध में जीत नहीं सकते। आप बिखरे हुए हैं तथा आप के पास सैन्य शक्ति भी नहीं है।"

"सैन्य शक्ति तो उन स्त्रियों के पास भी नहीं हैं फिर वे... "

"वे इसलिए विजयी हो रही हैं क्योंकि वे स्त्रियाँ हैं। शक्ति हैं। वन्य जीवन बिताने वाली वे स्त्रियाँ साधारण स्त्रियाँ नहीं हैं। स्वयं महामाया ने उन्हें युद्ध-कला की शिक्षा दी है। एक-एक स्त्री स्वयं में एक सेना के समान है। और उससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि दैत्यराज शुम्भ उन्हें मात्र अबला स्त्रियों के रूप में ही देख रहा है और उन्हें अपने रनिवास में सम्मिलित करने की इच्छा रखता है। उनकी वास्तविक शक्ति का आकलन न करने तथा अपनी शक्ति के अहंकार में वह अपनी सम्पूर्ण सैन्य शक्ति से उन पर प्रहार नहीं कर रहा है। उसका यही अहंकार उसके विनाश का कारण होगा। देवी अम्बिका ने उसके मन्त्र-पुत्रों प्रचंड और चामुंड तथा सेनापति रक्तबीज का वध करके उसकी शक्ति को आधी कर दिया है। इन प्रचंड वीरों के वध से उसकी सेना का मनोबल गिर गया है और वह अम्बिका तथा उसकी स्त्री-सेना को स्वयं शक्ति स्वरूपा मान कर भयभीत हो गयी है। शुम्भ तथा निशुम्भ भी अपने घमंड के कारण उन्हें सामान्य स्त्री समझ कर उनके हाथों मारे जाएँगे। किन्तु यदि देव-गण युद्ध करेंगे तो शुम्भ निशुम्भ अपनी सम्पूर्ण सैन्य शक्ति तथा पराक्रम से

रुद्रायन – 2

युद्ध करेंगे। तब वे अजेय हो जाएंगे। उनके विनाश की इच्छा है तो आप लोग परोक्ष रूप से अस्त्र-शस्त्र देकर उन स्थियों की सहायता कीजिए।"

ब्रह्मदेव ने देवताओं को समझाया तो उन्हें ब्रह्मदेव की रणनीति ही उपयुक्त प्रतीत हुई। उन्होंने अपने विभिन्न अस्त्र-शस्त्रों को एकत्र करके महामाया के पास भेजने का निश्चय किया। दूसरे ही दिन देवताओं द्वारा भेजे गये अस्त्र-शस्त्रों से भरी गाड़ियाँ अम्बिका के आश्रम में पहुँचा दी गयीं। साथ में विश्वकर्मा ने अपना बनाया हुआ विशेष सिंह-वाहन भी भेज दिया जो एक दृष्टि में सिंह ही प्रतीत होता था। उस पर बैठ कर विचरण किया जा सकता था। उसके विचित्र कलपुर्जे युद्ध-भूमि में विशेष उपयोगी थे। उसका बायाँ कान दबाने पर वह दस सिंहों के एक साथ गर्जने के समान भयंकर शब्द करता था और दायाँ कान दबाने पर वह मुँह खोल कर सामने खड़े शत्रु पर झटक कर अपने तीखे दाँतों से चबा डालता था। यह अम्बिका के लिए विशेष उपहार था।

देवताओं की यह परोक्ष सहायता मार्ड के दल की स्थियों के लिए अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुई। उन्होंने प्राप्त हुए नवीन अस्त्रों और शस्त्रों का संचालन करने का अभ्यास प्रारम्भ कर दिया। दैत्यराज शुभ का अवश्यम्भावी आक्रमण कभी भी उन्हें आक्रान्त कर सकता था। वैसे भी संख्या की दृष्टि से तो वे मुझी भर ही थीं और उस पर भी समाज की दृष्टि में अबला समझी जाने वाली नारियाँ। परन्तु समाज की इस समझ ने ही उन्हें विशेष रूप से लाभान्वित किया।

वे आतुरता से शत्रु के आगमन की प्रतीक्षा कर रही थीं। आवश्यक खाद्य पदार्थों तथा जल का पर्याप्त भण्डारण कर लिया गया था। दैत्यों की सेना गोदावरी के तट पर ही उतरती और युद्ध का मैदान भी निकट ही था। सबसे लाभदायक बात यह थी कि उन्हें पर्वत शिखर पर बिखरी शिलाओं की ओट प्राप्त थी। पर्वत शिखर पर ऊँचाई पर स्थित रह कर वे शत्रु पर दृष्टि रख सकती थीं और उन पर सहजता से बार करने में भी समर्थ थीं।

अन्ततः प्रतीक्षित समय आ ही पहुँचा।

अपने अवशिष्ट सैनिकों से अपने दल का संहार तथा सेनापति रक्तबीज के वध का समाचार सुन कर दैत्यराज शुभ के क्रोध का पारावार न रहा। शक्ति के अहंकार में भरकर बोला वह -

"एक अबला स्त्री में इतना अहंकार? और धृष्टता तो देखो उसकी। मैंने विवाह का सन्देश भेजा और बदले में उसने मेरे मन्त्री-पुत्रों तथा सेनापति को मार डाला। समझती क्या है वह स्वयं को? उसे इसका दंड अवश्य देना होगा।"

भाई को उत्तेजित देखकर निशुम्भ ने समझाया -

"आप चिन्ता न करें भाई! मैं उस स्त्री को उसके कर्म का दंड अवश्य दूँगा और अपने जिस बल के गर्व में वह भूली हुई है उसे चूर करके उसको केशों से पकड़ कर उसे घसीट कर लाऊँगा और आपके चरणों में डाल दूँगा। फिर आप जैसा चाहें वैसा व्यवहार उस गर्वीली स्त्री के साथ करना।"

परन्तु शुभ भाई को अकेला भेजने के लिए तैयार नहीं हुआ। उसे एक सामान्य स्त्री की इस उदंडता ने जहाँ क्रोधित कर दिया था वहीं अपने प्रचंड और चामुंड जैसे पराक्रमी मित्रों और अनेक युद्धों में जय दिलाने वाले सेनापति रक्तबीज के वध ने यह सोचने के लिए भी विवश कर दिया था कि वह अद्भुत बलशालिनी स्त्री किसी अतीन्द्रिय शक्ति की सहायता से तो ऐसा नहीं कर रही है? सम्भवतः उसे देव-गणों की सहायता प्राप्त हो जो प्रत्यक्ष रूप से दैत्यों का सामना करने में असमर्थ हों। जो भी हो। देवगणों के लिए तो उसकी भुजाओं का असीम बल ही पर्याप्त होगा और रही उस सुन्दरी की बात तो ऐसी हठीली और मानिनी स्त्री से युद्ध करने में अलग ही आनन्द आएगा। अब एक स्त्री से हार मानकर वह अपनी कीर्ति में कलंक तो लगा नहीं सकता!....

अन्ततः उसने समस्त सेना के दो भाग किए। एक भाग को राज्य की सुरक्षा के लिए छोड़ दिया तथा शेष सेना को आधी अपने और आधी भाई निशुम्भ के अधीन होकर लड़ने का निर्देश देकर युद्धभूमि के लिए कूच कर दिया। गोदावरी तट पर पहुँच कर उन्होंने रात्रि विश्राम किया।

नदी पार होने वाली हलचल को देख कर महामाया ने ओट में ही अपनी स्त्री सेना को पर्वत की शिलाओं के पीछे युद्ध के लिए सन्दर्भ करके स्थापित कर दिया। जब पूर्व दिशा में भुवन-भास्कर का लाल गोला हाथ भर ऊपर उठ आया तब अम्बिका लाल साड़ी पहन कर तथा आभूषणों से सुसज्जित होकर अपने सिंह वाहन पर बैठ कर धीरे-धीरे चलती हुई पर्वत की ऊँची चोटी पर पहुँच कर स्थित हो गयी। सूर्य की सुनहरी किरणों में उसके सिंह के सुनहरे अयाल चमक रहे थे। अद्वितीय था उस समय उसका सौन्दर्य।

पर्वत शिखर पर स्थित सिंहवाहिनी अम्बिका को देख कर दैत्य हतप्रभ रह गये। इतनी शक्ति? सिंह पर सवारी करने जैसा दुष्कर कार्य करने वाली अद्भुत रूपा सुन्दरी। कितनी ही देर तक वे अचरज से उसे देखते रहे। ऐसी सुन्दर स्त्री से युद्ध करने पर उसे हानि पहुँचाना उन्हें अभीष्ट नहीं लगा। नदी पार करके निशुम्भ और उसके पीछे शुम्भ ने सैन्य टुकड़ियों को विशाल तट पर एकत्र कर लिया। तब निशुम्भ कुछ आगे बढ़ कर बोला -

"सुन्दरी! तुम्हारी इच्छा का आदर करते हुए मैं निशुम्भ और मेरे बड़े भाई दैत्यराज शुम्भ स्वयं तुम्हारे पास आए हैं। युद्ध की इच्छा करके क्यों नष्ट हो जाना चाहती हो? यद्यपि तुमने हमारे मित्रों तथा सेनापति सहित सैनिकों को मारने का दुस्साहस करके घोर अपराध किया है फिर भी दैत्यराज दयापूर्वक तुम्हें क्षमा करते हैं और अभी भी तुमसे विवाह करने के लिए तैयार हैं।"

अम्बिका खिलखिला कर हँस पड़ी।

"दैत्यराज शुम्भ और दयालु? वास्तव में उनकी दया का वर्णन नहीं किया जा सकता तभी तो अपने प्राणाधिक प्रिय मित्रों और प्रधान सेनापति का वध करने वाली शत्रु को भी क्षमा कर दिया। परन्तु मैं युद्ध चाहती हूँ। मुझसे विवाह करने के लिए उन्हें मुझे युद्ध में पराजित करना होगा।"

"हठ मत करो सुन्दरी! तुम्हारा कोमल शरीर तो हमारे एक ही प्रहार

में नष्ट हो जाएगा। स्त्री होकर युद्ध की इच्छा शोभा नहीं देती। तुम्हारा शरीर तो केवल घर-गृहस्थी का सफल संचालन करने तथा पति को प्रसन्न रखने के लिए ही बना है।"

निशुम्भ बोला।

"अरे मूर्ख! हमें निपट गँवार अबलाएँ समझ कर बहुत बकवास न करा साहस है तो युद्ध करा।"

अम्बिका ने ललकार कर कहा।

क्रोधित होकर निशुम्भ हाथ में खड़ग लेकर आगे दौड़ा। उसके पीछे दैत्य सेना भी दौड़ पड़ी। निकट आते ही अम्बिका ने उस पर शूल से प्रहार किया और कुछ ही क्षणों में उसे धराशायी कर दिया। गिरे हुए निशुम्भ की छाती में उसने अपना तीखा खांडा भोंक दिया। चीत्कार कर उठा वह।

दैत्यों की सेना को निकट आते देख कर अम्बिका ने अपने वाहन सिंह का बायाँ कान दबाया। भयंकर रूप से गरज उठा वह। उस गर्जना से भयभीत होकर दैत्य सैनिक रुक गये। तब शिला खंडों के पीछे छिपी स्त्रियों की सेना ने उन पर भयंकर रूप से भालों और अग्नि बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी।

अपने भाई को गिरता देख कर शुम्भ क्रोध में आपा खो बैठा। अपनी विशाल गदा उठा कर वह अम्बिका की ओर दौड़ पड़ा। उसके निकट आते ही बगलामुखी अपना मुगदर उठा कर उस पर टूट पड़ी। एक ही वार में गदा उसके हाथ से छूट गयी। तब शुम्भ ने अपना खड़ग निकाल लिया और एक साथ ही तारा, बगलामुखी और महालसा से युद्ध करने लगा। कालिका दुर्गा आदि के साथ दैत्यों का संहार करने लगी।

दो प्रहर तक भयंकर युद्ध होता रहा। शत्रु सेना में अम्बिका अपने सिंहवाहन पर सवार होकर फिरने लगी। वह दोनों हाथों से तलवार चला रही थी और उसका सिंह भी शत्रुओं को पकड़-पकड़ कर अपने तीक्ष्ण दाँतों से चबा-चबा कर घायल कर दे रहा था। शुम्भ से युद्ध करते हुए उसने तलवार का वार किया तो उसे बचाने के लिए वह तिरछा हो गया। अम्बिका की तलवार के वार से बच गया परन्तु दैत्यराज उसके सिंह के

रुद्रायन – 2

दाँतों से स्वयं को न बचा सका। शुम्भ की दाहिनी भुजा सिंह के मुँह में आ गयी।

उसी समय अम्बिका ने अपने त्रिशूल के एक ही वार से उसका काम तमाम कर दिया। उस भयंकर मारकाट में अपने स्वामी की मृत्यु देख कर दैत्यों की बची हुई सेना भाग गयी। युद्ध भूमि शब्दों से पट गयी थी। चारों ओर रक्त ही रक्त बिखरा पड़ा था। युद्ध भूमि को शत्रुओं से मुक्त देख कर महामाया ने अपनी कमर में खुँसा शंख निकाल कर जोर से बजा दिया। हर्षोल्लास से भरी उनकी स्त्री-सेना अपने-अपने स्थान से निकल कर महामाया को घेर कर आनन्द से विजय-नृत्य करने लगी।

महालसा, महालक्ष्मी तथा शारदा को ढूँढ़ने के उद्देश्य से (रुद्रदेव) मार्तंड ने अपने शिष्य तथा सहयोगी मुचकुन्द के साथ गोदावरी की धारा में छलांग लगायी थी। नदी का पाट बहुत चौड़ा था और उसे पार करना सरल नहीं था किन्तु महालसा की खोज का महान उद्देश्य सामने होने के कारण उन्हें वह चौड़ा पाट भी तैर कर पार कर लेना असम्भव नहीं लगा। हिमालय की चोटियों के बीच रहने वाले मार्तंड को वेगवती गंगा में तैरने का अनुभव था। नीचे मैदान में आकर तो नदियाँ स्वयं ही मन्थर गति वाली हो जाती हैं।

नदी पार करके वे दूसरे किनारे पर स्थित जंगल में पहुँच गये। विभिन्न गिरि-कन्दराओं तथा दुर्गम वनों में कितने ही दिनों तक वे महालसा तथा अन्य स्त्रियों को ढूँढ़ते रहे परन्तु उनका कुछ पता न चला। कितनी ही छोटी-छोटी बस्तियों और कबीलों में साधु-भिक्षुक और अघोरी रूप में भटकने पर भी महालसा आदि का कोई सुराग नहीं मिला। निराश होकर उन्होंने लौटने का मन बनाया। सम्भवतः वे स्त्रियाँ नदी के वेग में बह कर दूर चली गयी थीं।

उन्हीं दिनों उन्होंने दैत्यराज शुम्भ तथा उसके सहयोगी दैत्यों द्वारा देवलोक पर अधिकार करने तथा उनके किसी अत्यन्त पराक्रमी स्त्री द्वारा मारे जाने का समाचार पाया। वहीं सुना कि उस स्त्री की पूरी सेना है। सिंह पर सवार होकर उसने अपनी स्त्री सेना का नेतृत्व किया तथा महापराक्रमी

दैत्यों के नायकों को नष्ट कर दिया। मार्तंड इस समाचार से आशान्वित हो गये। सम्भवतः वे तीनों दुस्साहसी स्त्रियाँ अभी भी जीवित हों और उस विकट पराक्रम वाली स्त्री की सेना में सम्मिलित हो गयी हों। महालसा के प्रति आशान्वित होकर वे पुनः उसी ओर लौट पड़े। वे अभी नदी के निकट तक पहुँचे ही थे कि उनके कानों में पर्वत शिखर की ओर से आती शंख-ध्वनि सुनाई पड़ी। उस शंखनाद ने उन्हें स्वयं दिशानिर्देश करके जैसे पुकार ही लिया हो।

नदी पार एक स्थान पर विशाल चिता जल रही थी। दैत्यराज का वध हो जाने पर देवगण जो अब तक परोक्ष रूप से छिप कर अम्बिका की सहायता कर रहे थे वे अब सामने आ गये। इन्द्र ने अपने सैनिकों तथा सेवकों से कह कर वन में एक विशाल चिता बनवा कर सभी दैत्यों के शर्वों को उस पर रख कर उनका अन्तिम संस्कार कर दिया था। महामाया अपनी स्त्री - सेना तथा कन्याओं के साथ अपने कन्दरा-आवास में लौट चुकी थी। रात की काली चादर चारों ओर फैल गयी थी। ऐसे में मार्तंड ने मुचकुन्द के साथ वहीं नदी कि निकट स्थित वृक्ष के नीचे विश्राम करने तथा रात्रि व्यतीत करने का निश्चय किया।

०००

रुद्रायन – 2

प्रातः उषाकाल में महालसा, शारदा, महालक्ष्मी, मातंगी, बगला और तारा तथा अन्य स्त्रियाँ अपने अपने घड़े लेकर नदी तट पर पहुँची। प्रतिदिन के समान स्नान करके घड़ों में जल भरा और अपने घड़े कमर पर टिका कर वापस लौट पड़ीं। तब तक सूर्य और ऊपर चढ़ आया था। वन प्रान्त स्पष्ट हो चला था। कलियाँ प्रस्फुटित होने लगी थीं। महालसा ने कहा -

"मातंगी! तुम लोग चलो। मैं थोड़े से फूल चुन लूँ तो आती हूँ।"

"तुम अकेली रुकोगी?"

मातंगी ने पूछा।

"हाँ! अब दैत्यों का तो इस ओर आने का साहस होगा नहीं और वन में पशु सब हमें पहचानते ही हैं इसलिए कोई भय नहीं है।"

महालसा मुस्कराई।

"फिर भी!"

"ठहरो बहन! मैं भी चलती हूँ तुम्हारे साथ।"

तारा बोल पड़ी।

"और मैं भी।"

शारदा ने कहा।

"तो ठीक है। हम तीनों पुष्प चयन करने चलेंगी। तुम लोग जाओ।"

महालसा शारदा और तारा के साथ वन की झाड़ियों में खिले फूलों की ओर आकृष्ट हो गयीं। उन्होंने अपने आँचल को झोली-जैसा बना कर कमर में खोंस लिया और फूल चुन-चुन कर उसी में एकत्र करने लगीं। महालक्ष्मी, मातंगी और बगुलामुखी तथा अन्य स्त्रियों के साथ अपने घड़े लेकर आवास की ओर चली गयीं।

पुष्प-चयन की प्रक्रिया में वे तीनों एक दूसरी से कुछ दूर हो जातीं किन्तु फिर भी वे एक-दूसरी का साथ बनाए हुए थीं। वे नहीं चाहती थीं कि उन्हें अकेली पाकर पुनः कोई विपत्ति घेर ले।

"अब चलो बहन! बहुत फूल हो गये।"

तारा बोली।

"बस, उधर वो जो फूलों का गुच्छा दिखाई दे रहा है न! बस, उसे तोड़ लूँ फिर चलते हैं।" कह कर महालसा निर्दिष्ट पुष्प गुच्छ की ओर बढ़ गयी। अभी उसने उस फूल के गुच्छे को तोड़ने के लिए हाथ बढ़ाया ही था कि पीछे से पुरुष कंठ स्वर ने टोक दिया -

"ठहरो देवि! उस गुच्छ में बहुत सी कलियाँ भी हैं जो एक या दो दिन बाद खिलने वाली हैं। उन्हें क्यों तोड़ रही हो? खिले हुए फूल ही तोड़ कर उन कलियों को जीवनदान दे दो।"

महालसा ठिठक गयी। यह कंठ स्वर...?

उसने पलट कर देखा।

"स्वामी!"

पीछे खड़ा मार्टड मुस्कराया।

"कहाँ-कहाँ नहीं ढूँड़ा तुम्हें और अब मिली भी तो इतनी सन्निकट।"

"किसी चीज के खो जाने पर हम उसे दूर-दूर ही तो ढूँढ़ते हैं। उसके इतने निकट होने की बात कहाँ सोची जा पाती है?"

महालसा ने हँस कर कहा।

"कौन हैं बहन?"

तारा ने पूछा।

"महालसा ने उसे स्वामी कहा। सुना नहीं तुमने?"

कह कर शारदा ने मुट्ठी भर फूल अपनी झोली से निकाल कर दोनों पर बरसा दिये -

"दोनों के पुनर्मिलन के लिए... स्वागत अभ्यागत!"

"स्वस्ति देवि! आप?"

मार्टड ने पूछा।

"मैं शारदा और यह तारा! आप हमारे आवास पर पधारें।"

"अवश्य, यदि देवी-महालसा को कोई आपत्ति न हो?"

मार्टड ने कटाक्ष किया।

"आइए, इधर आइए!"

रुद्रायन – 2

लज्जित होकर महालसा बोली।
तब तक उन्हें दूँढ़ता मुचकुन्द भी आ पहुँचा -
"अपने इस दास को क्यों छोड़े जा रहे हैं गुरुदेव?"
"आओ आओ! तुम्हें कैसे छोड़ सकता हूँ? यह मुचकुन्द है देवी!"
"प्रणाम करता हूँ"
"स्वस्ति! आओ तुम भी आओ!"
शारदा हँसी।
सभी साथ चल कर गुहावास में पहुँचे।
चुलबुली तारा महामाया के पास जाकर बोली -
"माई! वन में दो अधोरी साधु धूनी रमाए बैठे थे। हम उन्हें भी साथ
ही ले आए!"
"अच्छा किया। अतिथि का तो सदैव स्वागत किया जाना चाहिए!"
माई ने उत्तर दिया। तब तक वे सभी उनके सम्मुख प्रांगण में पहुँच
चुके थे।
"आइए आइए अतिथिवर!"
महामाया ने स्वागत करते हुए कहा।
"ये विशेष अतिथि हैं माई!"
शारदा मुस्कराई।
"विशेष अतिथि?"
"हाँ माई! ये महालसा बहन के स्वामी और ये उनके शिष्य हैं।"
उसने बताया।
"फिर तो अहोभाग्य हमारा।"
माई ने उन्हें आसन पर बैठाते हुए कहा।
स्वागत सत्कार के पश्चात माई ने सभी स्थियों को बुला कर उनका
परिचय कराया। उनकी सारी कथा सुन कर मार्ट्ट ने अपनी कथा सुनाई।
काशी छोड़ कर सौराष्ट्र आने और स्वयं विश्वनाथ से मार्ट्ट बनने की
कथा। महालसा ने भी पति की खोज में आने और अपने उमा से
महालसा बनने की कथा कही तो महामाया खिलखिला कर हँस पड़ी।

"अच्छा प्रेम-सम्बन्ध है तुम दोनों का। चलो अब हम तुम्हें फिर से विवाह की गाँठ में बाँध कर तुम्हारे दाम्पत्य को और भी सशक्त बना देती हैं।"

माई ने सभी कन्याओं को आदेश दिया तो उत्सव की तैयारियाँ होने लगीं। सान्ध्य बेला में माई ने दोनों को वरमाला पहना कर आशीर्वाद दिया। दिन भर अच्छा उत्सव रहा। वह रात यूँ ही हँसी ठिठोली में बीत गयी।

उनके स्नेह पूर्ण आग्रह पर कुछ दिन वे वहाँ ठहर गये। वहाँ से प्रस्थान करते समय महालसा ने उन सबको कैलाश चल कर रहने का निमन्त्रण दिया। वह चाहती थी कि उनकी सम्पूर्ण स्त्री-सेना कैलाश में रहे और वे वहाँ की अन्य स्त्रियों को भी सुशिक्षित करके अपनी स्त्री-वाहिनी को सबल बनाएँ। माई ने उनका आग्रह स्वीकार कर लिया।

"तुम लोग अभी प्रस्थान करो। हम कुछ दिनों बाद कैलाश पर अवश्य आएँगी।"

महालसा और मार्टड ने उन्हें प्रणाम किया तो वे बोलीं -

"महालसा और खंडोबा की जोड़ी युगों तक बनी रहे।"

उस दिन वहाँ से प्रस्थान करते समय महालसा को ऐसा लगा जैसे वह प्रथम बार अपनी बहनों व माता से विदा होकर पति-गृह के लिए जा रही हों। वहाँ से वे पुनः सौराष्ट्र के शमशान के लिए चल पड़े। यद्यपि पार्वती सीधे कैलास जाना चाहती थी परन्तु उन्हें अभी वहाँ से गोदावरी को साथ लेना था। साथ ही रुद्रदेव यह भी जानना चाहते थे कि उनके द्वारा मुक्त कराई गयी कुमारियाँ अपने घर पहुँच गयी या नहीं।

तीन दिन की कठिन यात्रा के बाद वे पुनः उसी शमशान भूमि के निकट पहुँच गये जहाँ गोदावरी उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। मुख्य शमशान भूमि से कुछ दूर उन्होंने एक बड़ा झोंपड़ा बना देखा तो चकित रह गये। यहाँ शमशान भूमि में कौन बसने आ गया?

रुद्रदेव अपने पूर्व निर्धारित वृक्ष के नीचे पहुँच गये तो मुचुकुन्द ने जोर से हाँक लगाई।

रुद्रायन – 2

"अलख निरंजन!"

निस्तब्ध निशा में दूर तक वह स्वर हवा के पंखों पर तैरता चला
गया। कुछ देर बाद वह फिर दुगनी शक्ति से पुकार उठा -

"अलख निरंजन! अलख निरंजन!"

कुछ क्षणों बाद दूर नदी के तट से प्रत्युत्तर में जयघोष सुनाई दिया -

"अलख निरंजन!"

"पधारो गुरुदेव! माता आप भी आसन ग्रहण करों!"

मुचकुन्द ने अपने उत्तरीय से वृक्ष के नीचे का चबूतरा साफ कर
दिया।

पहले मार्टड ने आसन जमाया। महालसा वर्ही निकट बैठ गयी। तब
तक नदी की ओर से कुछ आकृतियाँ उसी ओर आती दिखाई पड़ीं।

"अलख निरंजन!"

मुचकुन्द ने हाँक लगाई।

"अलख निरंजन!"

इस बार प्रत्युत्तर आने में देर न हुई।

निकट आकर अधोरियों का दल खड़ा हो गया।

"अरे! गुरुदेव? प्रणाम प्रभु!"

उन्होंने समवेत प्रणाम किए।

"कल्याण हो!"

मार्टड मुनि ने हाथ उठा कर आशीर्वाद दिया।

"बहुत दिन लगा दिए स्वामी! आप सब सकुशल तो रहे न? और ये
देवी महालसा ही हैं न?"

नीलमणि ने आगे बढ़ कर पूछा।

"हाँ वत्स! हम सकुशल हैं। तुम यहाँ के समाचार बताओ। तुम सब
निर्द्वन्द्व होकर जीवन यापन कर रहे हो न? और उन कुमारियों को उनके
माता-पिता, परिवार के पास तो पहुँचा आए न?"

मार्टड ने पूछा।

"हम सब सकुशल हैं स्वामी! पर वे कुमारियाँ.... "

कहते-कहते नीलमणि रुक गया। जैसे वह समझ ही नहीं पा रहा था कि उस विषय को कैसे प्रस्तुत करे।

"क्या हुआ? तुम संकुचित क्यो हो रहे हो? सुकंठ! तुम कहो। क्या बात है? क्या वे कुमारियाँ"

"वे यहीं हैं स्वामी!"

सुकंठ ने सिर झुका कर कहा।

"कहाँ? यहाँ कहाँ?"

"वे उस विशाल झोंपडे में।"

नीलमणि ने हाथ से संकेत किया।

"किन्तु उन्हें तो उनके परिवार तक पहुँचाना था? वे यहाँ क्यों हैं?"

मार्टंड ने कुछ रोषपूर्ण स्वर में पूछा।

"रुष न हों प्रभु! क्रोध न करें। हमने प्रयास किया था उन्हें उनके माता-पिता तथा परिवार तक पहुँचाने का। कुछ अल्पवयस्का बालिकाओं को उनके घर पहुँचा भी दिया गया परन्तु..."

"परन्तु क्या मतंग?"

"परन्तु युवा स्त्रियों को लोक-लज्जा के कारण तथा सामाजिक दंड के भय से उनके परिवार ने स्वीकार नहीं किया। कुछ परिवारों की आपत्ति और उपेक्षा सुन कर अन्य स्त्रियों ने स्वयं अपने परिवार में लौटने से मना कर दिया।"

मतंग ने बताया।

"ओह!"

मार्टंड ने सिर थाम लिया।

"यह समाज ही हमारा सबसे बड़ा शत्रु है। इसके रीति-रिवाज, समाज की उपेक्षा और दंड का भय मानवीय संवेदनाओं को नष्ट कर देता है। तभी तो माता पिता अपनी सन्तान को स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत नहीं होते। उनके लिए वह समाज ही सब कुछ है जो नपुंसक बन कर उनकी पुत्रियों का अपहरण होता देखता रहा। जो उनकी कन्याओं की रक्षा नहीं कर सका वही समाज उन कन्याओं को ही लांछित कर देता है।

रुद्रायन – 2

छि, धिक्कार है ऐसे समाज को और ऐसी सामाजिक परम्पराओं को।"

मार्टड कुद्द हो उठे।

"शान्त ... शान्त होइए प्रभु! समाज को क्रोध से नहीं जीता जा सकता और न ही उसकी परम्पराओं या मान्यताओं को परिवर्तित किया जा सकता है। इस समस्या का समाधान शान्तिपूर्वक सोचना होगा।"

महालसा ने समझाया।

"हाँ! ठीक कहती हो तुम!"

मार्टड कुछ प्रकृतस्थ हुए।

"आप नदी पर चल कर मुँह हाथ धो लें। थकान दूर कर लें। तब तक हम आपके भोजन की व्यवस्था करते हैं।"

मारुति ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया।

"भोजन? हाँ, भोजन! नीलमणि! उन स्त्रियों के आवास के लिए तो तुम लोगों ने यह झोंपड़ा डाल दिया और जल गोदावरी दे रही है। परन्तु उनके भोजन की व्यवस्था कैसे होती है? इतनी स्त्रियों का भोजन तुम लोग अपनी भिक्षावृत्ति से तो जुटा नहीं पाते होंगे?"

मार्टड ने पूछा।

"उनके भोजन की व्यवस्था तो वे युवक करते हैं स्वामी? जो हमारे साथ उन्हें मुक्त कराने के अभियान में सम्मिलित थे। कुछ व्यवस्था ये स्त्रियाँ स्वयं भी कर लेती हैं।"

"वो कैसे?"

"ये झुंड में जाकर वन से खाद्य पदार्थ ढूँढ़ लाती हैं। कुछ व्यवस्था नगर निवासियों से भी हो जाती है। यह शमशान भूमि है। जो शव यहाँ अन्तिम संस्कार के लिए लाए जाते हैं उनके परिजन इन स्त्रियों के लिए अन्न वस्त्र आदि दान कर जाते हैं। इस प्रकार जो भी मिल जाता है उसमें ही सब सन्तोषपूर्वक निर्वाह कर लेती हैं।"

"हाँ! इस समस्या का भी कुछ स्थायी समाधान ढूँढ़ना होगा।"

मार्टड ने विचारमन होकर कहा।

सभी उठ कर नदी की ओर चल पड़े। हाथ मुँह धोकर वे स्वस्थ होकर पुनः वहीं आकर बैठ गये। कुछ सन्यासी भोजन व्यवस्था में लग गये। मार्ट्टंड को विचार करने के लिए एक गूढ़ समस्या मिल गयी थी। भोजन के उपरान्त गोदावरी आकर महालसा को अपने साथ स्थियों के उस अस्थाई आवास में लिवा ले गयी। वह रात मार्ट्टंड की चिन्तन में ही बीत गयी और महालसा उन स्थियों की दयनीय दशा को देखती, सोचती, उनके दुख का अनुमान लगाती रात भर जागती रही।

दूसरे दिन प्रातः सब मार्ट्टंड मुनि के निकट पहुँचे तब तक वे किसी निर्णय पर पहुँच चुके थे। सन्यासियों ने भिक्षाटन के लिए जाने से पूर्व जब उनका अभिवादन किया तो गम्भीर स्वर में मार्ट्टंड ने कहा -

"भाइयों! आज नवमी की तिथि है और परसों एकादशी। मैं चाहता हूँ कि आप आज और कल, दो दिनों में उन सभी लोगों को यहाँ आने के लिए कह दें जो हमारे साथ थे। मैं उन सबसे कुछ आवश्यक परामर्श करना चाहता हूँ और यहाँ से जाने से पूर्व उनसे एक बार मिलना भी चाहता हूँ।"

"अवश्य गुरुदेव! वे सभी आपका आदेश पाकर अवश्य आएँगे।"

"आदेश नहीं अनुरोध करना और प्रयत्न करना कि वे एकादशी की पावन तिथि को यहाँ अवश्य उपस्थित हों।"

"जो आज्ञा गुरुदेव!"

उन्हें विदा करने के बाद मार्ट्टंड विचार मुद्रा में बैठे थे तब महालसा और गोदावरी उनके निकट आयीं। महालसा की लाल आँखें देख कर मार्ट्टंड ने पूछ लिया -

"रात भर जागती ही रहीं सम्भवतः!"

"स्वामी! जब आप चिन्तित हों तो मुझे नींद कैसे आती?"

"चिन्ताग्रस्त नहीं चिन्तनग्रस्त कहो। मैं तो चिन्तन कर रहा था और तुम?"

"मैं रात भर उन अबलाओं की करुण कथा सुनती और उनकी पीड़ा को आत्मसात करती रही।"

महालसा ने उत्तर दिया।

"इनके लिए कुछ करना होगा प्रभु! इनका जीवन नष्ट नहीं होना चाहिए। जो कुछ भी इन्हें सहन करना पड़ा उसमें इनका क्या दोष?"

गोदावरी ने व्यग्र होकर पूछा।

"कोई दोष नहीं था इनका। किसी अन्य के किए कृत्य का परिणाम उन्हें भुगतना पड़ रहा है। परन्तु अब और नहीं। इसका समाधान भी होगा और यथाशीघ्र ही।"

मार्टड ने उन्हें आश्वस्त किया।

उस दिन महालसा ने गोदावरी का नवीन रूप देखा। अब तक वह उसे एक अभिभाविका तथा स्नेहमयी नारी ही जानती थी परन्तु आज उसने उसे उन दुखी स्त्रियों में उत्साह भरते देखा। सारे दिन वह उन्हें विभिन्न प्रकार से सान्त्वना देती और उनमें जीवन के प्रति आशा और विश्वास भरने का प्रयास करती रही। इस कार्य में महालसा भी उनकी सहयोगिनी बन गयी।

दो दिनों में सन्यासियों ने उन सभी लोगों को एकादशी की पावन तिथि को श्मशान भूमि में गुरुदेव से मिलने के लिए आने का निमन्त्रण दे दिया। गुरुदेव के पुनरागमन से वे अत्यन्त प्रसन्न हुए और वे स्वयं उनका दर्शन करने तथा उनके उपदेशों को ग्रहण करने के लिए अत्यन्त उत्सुक हो रहे थे। गुरुदेव का आगमन जान कर उन्होंने दो बैलगाड़ियों में भर कर अन्न भिजवा दिया। यह गुरुदेव की दक्षिणा स्वरूप था जिसे उन्होंने स्पर्श करके स्त्रियों के आवास में भिजवा दिया।

और फिर आयी एकादशी की पवित्र तिथि।

दिन के दूसरे प्रहर में ही आमन्त्रित युवकों का आगमन आरम्भ हो गया। वे दो-दो चार-चार के दल में आते गये और मार्टड मुनि का अभिवादन कर उनके सामने बैठते गये। लगभग एक घंटे में सभी आ गये। उनके एकत्र हो जाने पर मुचकुन्द बोला -

"अब सभी युवक आ गये हैं गुरुदेव!"

गुरुदेव ने आँखें खोल कर उन पर दृष्टिपात किया। मन ही मन उन्होंने उनकी गणना कर ली। उनकी संख्या पचास से अधिक थी।

"क्या कुछ नवीन युवक भी यहाँ आए हैं?"

उन्होंने पूछा।

"हाँ गुरुदेव! इनके साथ कुछ अन्य युवक भी आपके दर्शन की अभिलाषा से यहाँ उपस्थित हुए हैं। यदि आप कहे तो उन्हें अलग कर दिया जाए।"

"नहीं नहीं! यहाँ सभी का स्वागत है।"

गुरुदेव मार्टड अब उन युवकों की ओर आकृष्ट हुए -

"आप सभी सकुशल तो हैं न?"

"हाँ प्रभु आपकी कृपा से हम सभी सकुशल व सानन्द हैं।"

समवेत स्वर में उत्तर मिला।

"साथियों! आज मैं आपसे एक गम्भीर विषय पर वार्ता करना चाहता हूँ। आप सभी के सहयोग से एक ज्वलन्त समस्या का समाधान करना चाहता हूँ। आप सभी के सहयोग से हम हमारे नगर, समाज की कुमारियों को मणिदत्त और फणिदत्त जैसे अनाचारी अघोर-पन्थ का दुरुपयोग करने वाले अघोरियों से मुक्त कराने में सफल रहे हैं। आपके इस सहयोग के लिए साधुवादा!"

"वह अभियान तो आपके निर्देशन तथा मार्गदर्शन के कारण ही सफल हो सका था।"

एक युवक ने उठ कर कहा।

"परन्तु आप सबके सहयोग के बिना मैं अकेला कुछ भी नहीं कर सकता था। आज पुनः आपसे उसी वीरोचित सहयोग की अपेक्षा कर रहा हूँ क्या आप उसके लिए तत्पर हैं?"

मार्टड ने पूछा।

"आप आदेश करें गुरुवर! हम अपनी शक्ति भर अपनी पूर्ण सामर्थ्य के अनुसार आपका सहयोग करेंगे। क्यों भाइयों?"

अरुण नामक युवक ने उत्तर दिया और समुदाय से प्रश्न किया।

"हाँ हाँ! हम सब तैयार हैं।"

युवकों ने सम्मिलित स्वर में स्वीकृति दी।

मार्टड ने कहना आरम्भ किया -

"आप सभी अवगत हैं कि हमने चार सौ से अधिक कुमारियों को मुक्त कराया था तथा उन्हें आप लोग अपनी सुरक्षा में यहाँ ले आए थे। वे कुमारियाँ बलि देने के उद्देश्य से अपहृत की गयी थीं अतः उनका कौमार्य अक्षुण्ण है यह आप सभी जानते हैं। मैं चाहता था कि उस बन्दी-गृह की दुखद-स्मृतियों से मुक्त होकर वे अपने माता-पिता तथा परिवार के संरक्षण में पहुँच कर जीवन यापन करती परन्तु ऐसा सम्भव नहीं हो पाया। कम आयु की बालिकाएँ तो उनके परिवार के द्वारा अपना ली गयी हैं किन्तु शेष युवतियाँ समाज के भय से उनके परिवार द्वारा स्वीकार नहीं की गयीं। उनका भविष्य क्या और कैसा होगा इसका निर्धारण भी हमें ही करना है। वे सभी स्त्रियाँ पूर्णतया निर्दोष हैं। यदि उनका अपहरण हुआ तो केवल इसीलिए कि समाज और परिवार के लोग उनकी रक्षा नहीं कर सके। क्या आप सब इस बात को स्वीकार करते हैं?"

"हाँ प्रभु!"

"मैं चाहता हूँ कि आप उनसे विवाह कर लें और उन्हें जीवन में प्रवेश करने की अनुमति दें। उन्हें स्नेह तथा प्रेम दें जिससे वे समाज का अंग बन सकें। इस प्रकार उन्हें किसी की दया और भिक्षा पर परित्यक्त जीवन नहीं बिताना पड़ेगा।"

मार्टड ने कहा।

"किन्तु समाज? हमारे माता-पिता?"

एक युवक ने शंका की।

"समाज हमारा आपका समुदाय है और वह हमारे ही संरक्षण के लिए बना है। उसके नियम हमने ही तो अपनी सुविधा और सुरक्षा के लिए बनाए हैं। और ये स्त्रियाँ? ये भी तो उसी समाज से आई हैं? उन्हें यदि बन्दी बना कर रखा गया तो इसमें उनका क्या दोष? समाज क्या निरपराधों को दंड देने के लिए है? इनके अपहरण के लिए क्या समाज

की दुर्बलता ही उत्तरदायी नहीं है? वह समाज किस काम का जो मनुष्य को जीने का अधिकार न दे सके? वह समाज किस काम का जो निरपराध को दंडित करे? जो अपने ही अंग को अलग करके अपनी मान्यताओं और परम्पराओं को जीवित रखना चाहता है उस समाज का क्या महत्त्व? क्या समाज के नियमों को इतना रुढ़ होना चाहिए कि उनमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन न किया जा सके? ऐसा समाज जीवित रहने योग्य नहीं होता।"

क्षण भर ठहर कर वे पुनः बोले -

"नदी का कार्य बहते रहना है। यदि वह बहना छोड़ दे, उसके जल को एकत्र कर दिया जाए तो वह सड़ जाएगा दूषित हो जाएगा। उसे तो प्रवाहित ही होते रहना चाहिए। समाज भी निर्जीवों का समूह नहीं है। उसके नियमों और परम्पराओं में समय तथा आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जाना आवश्यक है और यह युवा समाज ही कर सकता है। जो शक्ति, उत्साह, ओज और गति के प्रतीक हैं। वे ही सच्चे समाज - निर्माता हैं। आप इस विषय में भलीभाँति विचार कर लें। यह जीवन भर का प्रश्न है और इस पर आपका सम्पूर्ण जीवन निर्भर करेगा। यदि आप आत्मशक्ति की सम्पूर्ण दृढ़ता से इस कार्य के लिए तैयार हों तो उन युवतियों से मिल लें तथा अपनी और उनकी सहमति से अपना जीवन साथी चुन लें। आज अत्यन्त पवित्र तिथि है। यदि आप तत्पर हों तो यह शुभ कार्य मैं अपने सम्मुख करा दूँ।"

मार्टड चुप हो गये। कुछ क्षण बाद मुचकुन्द बोला -

"आपको मैं भी यह अवगत करा देना चाहता हूँ कि इस दिशा में गुरुदेव ने पहल करके आदर्श उपस्थित कर दिया है। उन्होंने देवी महालसा से विवाह करके उन्हें अपनी जीवनसंगिनी बना लिया है। मैं स्वयं इसका साक्षी हूँ।"

युवकों ने चकित होकर मार्टड मुनि की ओर देखा। उनका तेजस्वी मुख दृढ़ इच्छाशक्ति के आत्मतेज से दमक रहा था।

"हम विचार करने के लिए कुछ समय चाहते हैं प्रभु!"

उन्मत्त ने आगे बढ़ कर कहा।

"अवश्य! आप चाहें तो आज सायं तक निर्णय कर लें या फिर चार दिन बाद पूर्णिमा तिथि है। तब तक आप निर्णय कर लें तो पूर्णिमा को दोपहर बाद अच्छा मुहूर्त है। मैं उसी दिन आप लोगों का विवाह कराने के पश्चात यहाँ से प्रस्थान करूँगा।"

सभा विसर्जित हो गयी।

दो दिन पश्चात ही उनकी सहमति प्राप्त हो गयी। युवतियों की सहमति का ध्यान खते हुए सत्तासी युवकों ने अपनी भावी पत्नियों का चुनाव कर लिया। पूर्णिमा की दोपहर शुभ मुहूर्त में माल्यार्पण करा के पवित्र अग्नि को साक्षी बना कर मार्तड के निर्देशन में समस्त स्त्रियों तथा सन्यासियों के सम्मुख सामान्य रीति से उनका विवाह सम्पन्न करा दिया गया। प्रसन्न मन वे युवक अपनी-अपनी सहधर्मिणियों के साथ विदा हुए। उस संक्षिप्त समारोह के बाद मार्तड ने पूछा -

"अब कितनी स्त्रियाँ शेष रहीं मुचकुन्द!"

"दो सौ तैतीस!"

मुचकुन्द ने बताया।

"अब इनके लिए क्या आज्ञा है गुरुदेव?"

"अब तुम यहीं ठहरो मुचकुन्द! कुछ दिन यहीं रह कर प्रतीक्षा करो। सम्भवतः इन साहसी युवकों से प्रेरित होकर कुछ अन्य जन भी विवाह करने के लिए तैयार हो जाएँ। यदि ऐसा हो जाए तो तुम्हें उनका विवाह करवाना होगा। किन्तु इस कार्य में इन युवतियों की इच्छा का आदर किया जाना आवश्यक है। मैं कल भोर होते ही महालसा के साथ प्रस्थान कर जाऊँगा।"

"उसके बाद जो स्त्रियाँ शेष रहें उन्हें साथ लेकर तुम कैलाश पर आ जाना। तुम्हारी सहायता के लिए गोदावरी यहीं रहेगी। तुम उसकी सहायता से सब कार्य सम्पन्न करा के सबके साथ कैलाश आ जाना। हम तुम्हें वहीं मिलेंगे।"

"जैसी आपकी इच्छा प्रभु!"

डॉ. रंजना वर्मा

मुचकुन्द तथा गोदावरी ने सहमति दी।
समस्त सन्यासियों तथा स्त्रियों से विदा लेकर मार्टड महालसा के
साथ अपने गृह-नगर की ओर चल दिए। उनका हृदय अपने पुत्रों से
मिलने के लिए आतुर हो रहा था।

०००

जलंधर !

ब्रह्मदेव का दिया हुआ नाम 'जलंधर' अर्थात् जल को धारण करने वाला किंतु जलंधर का अर्थ उसके जीवन में दिन पर दिन जलन को धारण करने वाला बनता जा रहा था। जलंधर समुद्र का पालित पुत्र, अज्ञात कुल शील वाला जिसकी माता उसे जन्म देते ही स्वर्ग सिधार गई और छोड़ गई अपने दुधमुहे बालक को समाज के झंझावात से अकेले जूझने के लिए कौन था उसका पिता? कौन थी उसकी माता? कुछ भी तो ज्ञात नहीं था उसे।

समुद्र देव ने उस अबोध शिशु को रनिवास में भिजवा दिया था जहां पहले से ही कई शिशु अपनी माताओं के अंक की शोभा बढ़ा रहे थे। ऐसे में उसे कौन अपना ममत्व देता? प्रधान रानी की सेवा में थी वह दासी मत्स्य-कन्या मीना जिसने अपने सद्य जात शिशु को खो दिया था। प्रधान महिषी के आदेश से वही अपने पुत्र के विकल्प में उसे पाकर धन्य हो गई। माता पिता दोनों का प्रेम और वात्सल्य दे देकर उसने जलंधर को पाला।

जैसे जैसे जलंधर बढ़ा होता गया उसे अपने तथा समुद्र देव की औरस संतानों के बीच का अंतर स्पष्ट रूप से समझ में आने लगा। उन बालकों को उनकी रानी माताओं का अपरिमित स्नेह पाता देख कर उसका बाल-मन विद्रोह कर उठता। वह समुद्रदेव का पुत्र है तो उसके प्रति दासी-पुत्र के समान व्यवहार क्यों किया जाता है? वह समुद्रदेव को अपना पिता क्यों नहीं कह सकता? उसे प्रत्येक वस्तु के लिए दूसरों का मुख क्यों देखना पड़ता है?

और तब उस बालक ने छीनना सीख लिया। जो वस्तु मांगने पर मिलेगी या नहीं इसका निश्चय न हो, जिसे मांगने की लज्जा सहन करनी पड़े उसे अपने बल से क्यों न प्राप्त कर लिया जाए? वह अन्य बालकों को सताता। उनके खिलौने तथा भोजन सामग्री अपनी इच्छानुसार छीन कर ले लेता। समुद्रदेव से यदि कभी कोई कुछ उपालंभ देता तो वह हँस देते।

"बालक है वहा छोटा और नासमझा। बड़ा होकर समझ जाएगा।"

परंतु जलंधर कुछ भी नहीं समझना चाहता था। अपने बलिष्ठ शरीर का उपयोग करना वह भली भाँति सीख गया था। उसकी शैतानियों से त्रस्त होकर समुद्रदेव ने बारह वर्ष की आयु में उसे दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य को सौंप दिया। शुक्राचार्य सदैव से देवों के विरोधी थे। बालक जलंधर को उन्होंने विभिन्न अस्त्र-शस्त्रों के संचालन की शिक्षा के साथ आचरण तथा नैतिकता का पाठ भी पढ़ाया किंतु स्वभाव से ही देव-विरोधी होने के कारण वे आरंभ से ही उसके मन में देवताओं के प्रति ईर्ष्या के बीज को अंकुरित तथा पल्लवित करते रहे। उन्होंने उसे देवों द्वारा किए जाने वाले अनाचारों की कहानियां सुनायीं तथा उसके हृदय में यह भली-भाँति स्थापित कर दिया कि दैत्य तथा असुर जातियां आरंभ से ही देवों द्वारा पीड़ित की जाती रही हैं। देवों के राजा इंद्र की अनाचार कथाएं तथा उद्धृत अभिमान की गाथाएं जलंधर ने अन्य लोगों से भी सुनीं और जानीं। अद्भुत पराक्रमी, शक्तिशाली तथा उद्भृत विद्वान होने के कारण जलंधर शीघ्र ही शुक्राचार्य का प्रिय शिष्य हो गया।

शिक्षा पूर्ण होने पर शुक्राचार्य उसे समुद्र देव के पास ले गये। पुत्र को सभी सदुण्णों से युक्त देख कर वे अत्यंत प्रसन्न हुए बातों ही बातों में शुक्राचार्य ने बताया -

"राजन ! मैंने अपनी ओर से जलंधर को एक उत्कृष्ट योद्धा और राजनीति का ज्ञाता बनाया है किंतु मैं उसके क्रोध को संयमित करना नहीं सिखा पाया तथापि आपका यह पुत्र शक्ति एवं सौष्ठव में अतुलनीय है।

शुक्राचार्य की बात सुन कर समुद्रदेव आशकित हुए। उन्हें अपने पुत्रों के सुरक्षा की चिंता थी अतः शुक्राचार्य से परामर्श करके उन्होंने जलंधर को दैत्यों का राजा घोषित कर दिया। बड़ी धूमधाम से उसका राज्यारोहण उत्सव मनाया गया जिसमें विभिन्न असुरों तथा राक्षसों को आमंत्रित किया गया।

जलंधर को सर्वगुण संपन्न पराक्रमी राजा के रूप में देख कर अत्यंत प्रतिष्ठित असुरों के राजा कालनेमि ने अपनी सुंदरी पुत्री वृंदा का उससे विवाह कर दिया।

वृंदा अत्यंत सुंदर तथा गुणवती थी। शीघ्र ही जलंधर उसके प्रेम में आकंठ ढूब गया। उनका प्रेम अनोखा था। दोनों ही एक दूसरे से अत्यंत प्रेम करते थे परंतु वृंदा कभी भी जलंधर को राजकार्य में आलस्य न करने देती। वह उसे सदैव दैत्यों तथा असुरों की सुख-समृद्धि के लिए प्रयत्नशील रहने की प्रेरणा देती रहती। वस्तुतः वह अपने पति को सब से शक्तिशाली, वैभवशाली तथा अजेय देखना चाहती थी। जलंधर के जीवन का भी यही उद्देश्य था। अन्याय का प्रतिरोध तथा न्याय पूर्वक शासन करना। शीघ्र ही उसने हुए बिखरे हुए दैत्यों तथा असुरों को संगठित करके एक प्रबल शक्ति के रूप में स्थापित कर लिया।

एक दिन की बात है। देवर्षि नारद सदा की भाँति घूमते हुए दैत्यराज जलंधर की सभा में जा पहुंचे। दैत्यराज ने उन का बड़ा आदर सत्कार किया। उनके आसन ग्रहण करने पर जलंधर ने उनकी कुशल क्षेम पूछी।

"आप सब कुशल से तो हैं न महर्षि? आज इस दैत्यलोक में आपका आगमन कैसे हुआ? आप तो देवताओं के प्रिय हैं।"

"नहीं दैत्यराज! आपका ऐसा सोचना अनुचित है। मैं सन्यासी हूँ और सन्यासी सभी का प्रिय होता है क्योंकि उसका कोई भी शत्रु नहीं होता। भेद-भावना तो सांसारिक व्यक्तियों में होती है। आपका स्नेह और भगवान की कृपा है तो सन्यासी की सर्वत्र कुशल है।"

नारद ने वीणा के तार छेड़ते हुए कहा।

"मेरा यहां आने का कोई विशेष प्रयोजन नहीं है। आपकी यश-गाथा तो चतुर्दिक फैल रही है। इधर से जा रहा था तो सोचा कि आपकी भी कुशलता जान लौँ।"

उसी समय आचार्य शुक्राचार्य भी सभा में आ गए। उनका समुचित सत्कार करके जलंधर ने उन्हें आसन दिया। कुछ देर इधर-उधर की बातें होती रहीं। अचानक जलंधर ने पूछ लिया -

"महर्षि! आप तो सर्वत्र भ्रमण करते रहते हैं। देवलोक में आप ने देवराज इंद्र की राज्यसभा भी देखी है और आज यहां मेरी राज्य सभा को भी देख रहे हैं। दोनों में आपको क्या अंतर दिखाई दिया?"

"इस प्रश्न का क्या अर्थ है दैत्यराज? प्रत्येक राजा अपनी राज्यसभा को अपनी रुचि तथा वैभव के अनुरूप सजाता, सँवारता है। उसमें तुलना कैसी?"

नारद सावधान होकर बोले।

"फिर भी ... मैं सुनने के लिए उत्सुक हूँ। महर्षि! आप कभी असत्य वादन नहीं करते। आप बतायें - मेरी राज्यसभा में क्या कुछ न्यूनता रह गई है जो आप इस प्रकार कह रहे हैं?"

जलंधर ने पूछा।

"नहीं नहीं दैत्यराज! परंतु देवताओं की इंद्रसभा का क्या कहना? वह तो अद्भुत, अतुलनीय है। उसके वैभव का बखान नहीं किया जा सकता।"

नारद बोले।

"और दैत्यों की यह राज्यसभा?"

जलंधर ने भृकुटि टेढ़ी कर के पूछा।

"यह भी अद्भुत है। अत्यंत सुंदर है किंतु..... यदि आप सत्य ही सुनना चाहते हैं तो सुनिये। आपकी यह सभा इंद्रसभा की बराबरी नहीं कर सकती। उसका वैभव अपार है..... अब मुझे आज्ञा दें दैत्यराज!"

नारद जी गम्भीर होकर बोले।

"नहीं महर्षि! अभी आप ठहरें। मैं इसका कारण जानना चाहता हूँ। गुरुदेव ! आप बताइए। मेरे पिता समुद्रदेव रत्नों के आकर कहे जाते हैं फिर भी हमारे पास वैभव की कमी क्यों है और देवताओं में हम से अधिक संपन्नता क्यों है?"

दैत्यराज जलंधर ने शुक्राचार्य से पूछा।

"यह लंबी कथा है!"

"मैं सुनना चाहता हूँ गुरुदेव! कृपा करके बताएं।"

जलंधर ने अनुरोध किया।

"ठीक है दैत्यराज, यदि आप जानना ही चाहते हैं तो सुनिए। देवराज इंद्रदेव को धन की आवश्यकता बनी ही रहती है क्योंकि देवगण

रुद्रायन – 2

केवल उपभोग करते हैं। वे धन को बढ़ाने के लिए या जीविकोपार्जन के लिए कोई कार्य नहीं करते। समय समय पर मानव जाति द्वारा किए गए यज्ञ कर्म तथा दान आदि द्वारा ही उन्हें धन वैभव तथा जीवनोपयोगी वस्तुएं प्राप्त होती हैं। ऐसे ही धन की आवश्यकता होने पर उन्होंने समुद्रदेव को पराजित करके उनका उत्पीड़न करके उनके रत्न-भंडार को लूट लिया। यहाँ तक कि अमृत-कलश को भी उठा ले गए और यह सब उन्होंने छल पूर्वक किया।"

"कैसा छल गुरुदेव?"

"धन प्राप्त करने के उद्देश्य से देवों के राजा इंद्र ने दैत्यराज से संधि की तथा इस शर्त पर दोनों ने मिल कर समुद्रदेव को पराभूत किया कि उनसे जो भी धन प्राप्त होगा उसे वे आधा-आधा बांट लेंगे। लेकिन हुआ इसके विपरीत। समुद्रदेव से प्राप्त समस्त श्रेष्ठ धन देवताओं ने ले लिया। दैत्यों ने फिर भी कुछ नहीं कहा क्योंकि वे तो केवल अमृत का आधा भाग ही चाहते थे। देवों ने जब अमृत-कलश पर भी अधिकार कर लिया तब दैत्यों ने विरोध किया। उस समय विष्णु ने मोहिनी नामक सुंदर स्त्री का रूप धारण करके देवताओं को अमृत पिला दिया। जब देवताओं के छल का दैत्यों को ज्ञान हुआ तो उन्होंने विरोध किया परंतु देवता समस्त धनराशि तथा अमृत घट लेकर जाने में सफल रहे। इसी कारण वे दैत्यों से अधिक वैभवशाली हैं तथा इसीलिए उन्हें स्वयं को अमर कहलाना प्रिय है।"

"यह तो घोर अन्याय है। हम इसका प्रतिशोध लेंगे। हम अपना धन इंद्र से वापस छीन लेंगे। उस पर हमारा ही अधिकार है।"

दैत्यराज क्रोध में भर कर चीख पड़ा। सभी दैत्यों ने उसका अनुमोदन किया। उनका क्रोध देख कर नारद महर्षि अवसर पाकर वहाँ से खिसक गये।

असीम शक्ति का स्वामी होते हुए भी जलांधर नीति का पालन करने वाला तथा सदाचारी था। अन्याय उससे सहन नहीं होता था। दैत्याचार्य शुक्र ने उन्हें देवताओं के दैत्यों के प्रति अनाचार तथा अन्याय की अनेक

कहानियां सुनाई जिससे उसका क्रोध बढ़ गया। उसने इंद्र को उसके किए दुष्कर्मों का दंड देने का निर्णय कर लिया।

राजनीति का पालन करते हुए उसने अपने वीर तथा पराक्रम संपन्न दूत घस्मर को इंद्र के पास अपना संदेश वाहक बना कर भेजा। घस्मर ने इंद्र की सभा में जाकर अपने स्वामी का संदेश दिया -

"दैत्यों के राजा तथा समुद्र देव के पालित पुत्र दैत्यराज जलंधर ने आपके लिए संदेश भेजा है। वे चाहते हैं कि आप उनके पिता से लूटे हुए रत्न आदि संपूर्ण धन भंडार को लौटा दें। उन्होंने यह भी कहलाया है कि अमृत-कलश समुद्रदेव की संपत्ति होने के कारण दैत्यों की संपत्ति है अतः आप उसे भी दैत्यराज को सौंप दें। वे आप से युद्ध नहीं करना चाहते अतः आप मैत्री भाव से उन्हें वे सभी वस्तुएं लौटा दें जिन पर उनका अधिकार है।"

जलंधर का संदेश सुन कर इंद्रदेव कुपित हो उठे।

"हम ने समुद्रदेव को पराजित करके धन संपदा तथा अमृत-कलश प्राप्त किया है। उस पर हमारा अधिकार है।"

"नहीं देवराज! आपने दैत्यों के सहयोग से ही समुद्रदेव को पराजित किया था अतः वह संपत्ति आपकी नहीं है। उस पर दैत्यों का भी उतना ही अधिकार है वरन् वे आप से भी कहीं अधिक उसके अधिकारी हैं। अमृत-कलश भी आपने पराक्रम से नहीं वरन् छल प्रवंचना के द्वारा प्राप्त किया था।"

इंद्रदेव क्रोधित होकर बोले -

"समुद्रदेव ने मुझ से भयभीत होकर अपना सारा धन छुपा लिया था। उसे तथा अमृत को हमने अपने कौशल तथा पराक्रम से प्राप्त किया है। जाकर अपने स्वामी जलंधर से कह दो, इंद्र किसी से नहीं डरता। यदि साहस और पराक्रम है तो युद्ध भूमि में मुझे पराजित करो।"

इंद्रदेव का उत्तर सुन कर घस्मर लौट गया। उसने अपने स्वामी से इंद्रसभा की समस्त सूचना तथा इंद्र देव का उत्तर बता दिया। यह सुन कर जलंधर के क्रोध की सीमा न रही। उसने शीघ्र ही देवलोक आक्रमण कर

दिया। युद्ध के उद्घोष से संपूर्ण इंद्रलोक गूँज उठा। भयंकर युद्ध प्रारंभ हो गया परंतु शीघ्र ही दैत्यराज जलांधर ने अनुभव किया कि देवताओं की सेना को वह तथा उसके सैनिक अभूतपूर्व पराक्रम दिखा कर भी नष्ट नहीं कर पा रहे हैं। प्रतिदिन वे असंख्य देव-गणों का विनाश करते थे पर दूसरे दिन युद्ध में वे देवगण पूर्ण स्वस्थ तथा जीवित होकर उनसे युद्ध करने के लिए युद्ध भूमि में आ जाते थे।

व्यथित होकर उसने शुक्राचार्य को बुला कर इसका कारण पूछा। शुक्राचार्य ने बताया -

"देवलोक के पीछे हिमालय पर्वत पर एक दोने के आकार की घाटी है जिसका नाम द्रोणगिरि है। उस घाटी में अनेक औषधीय पेड़ पौधे तथा वनस्पतियाँ हैं जिनसे देवों के आचार्य बृहस्पति देव औषधियाँ तैयार करते हैं। उन्हीं के उपचार से देवगण पुनर्जीवित होने के समान ही स्वस्थ व पराक्रमी होकर युद्ध कर रहे हैं। बृहस्पति देव के विलक्षण उपचार से देवगण अति अल्प अवधि में ही स्वस्थ हो जाते हैं।"

"इस प्रकार तो हम उन पर कभी विजय नहीं प्राप्त कर सकेंगे। गुरुदेव! अब आप ही कोई उपाय बताएं जिससे हम उन्हें मार सकें।"

दैत्यराज ने पूछा।

"इसका एकमात्र उपाय यही है कि द्रोणगिरि पर स्थित बृहस्पतिदेव की औषधि निर्माण करने की प्रयोगशाला को नष्ट कर दिया जाये। ऐसा करने पर देवगणों का उपचार नहीं हो सकेगा। तभी दैत्य उन्हें नष्ट कर सकते हैं।"

दैत्यराज ने शुक्राचार्य को विदा किया। उसने अपने विश्वस्त गुप्तचर-प्रमुख तथा पराक्रमी नरेश कालनेमि को बुलवाया जो उसका श्वसुर भी था। उनसे परामर्श करके दैत्यराज ने अपने श्वसुर असुरराज कालनेमि के नेतृत्व में छापामार युद्ध में निपुण लड़ाकों का एक दल तथा कुछ गुप्त जनों को द्रोण घाटी को तहस-नहस कर देने तथा देवराज की औषधि निर्माण शाला को पूर्णतया नष्ट कर देने के उद्देश्य से भेज दिया। गुप्तचरों ने आगे जाकर घाटी के दुर्बल स्थलों का गुप्त रूप से निरीक्षण करके असुरराज

कालनेमि को सूचित कर दिया। अपनी अत्यल्प सैन्य टुकड़ी की सहायता से सहज ही कालनेमि ने औषधि निर्माण को नष्ट कर दिया। औषधि निर्माण संयंत्रों को तोड़ डाला और औषधि निर्माण में लगे हुए कर्मचारियों को मार डाला। इस आकस्मिक आक्रमण के लिए वे तैयार नहीं थे। बृहस्पतिदेव किसी प्रकार अपने दो अनुचर शिष्यों के साथ वहाँ से पलायन करने में समर्थ हुए। उन्होंने देवराज इंद्र को वस्तुस्थिति से अवगत कराया।

"अब हमें क्या करना चाहिए गुरुदेव?"

देवराज ने पूछा।

"मेरे विचार से तो युद्ध रोक देना चाहिए क्योंकि प्रबल पराक्रमी दैत्य-सेना के सामने देवगणों की सेना अधिक देर तक टिक नहीं सकेगी। देवता तो केवल उपभोग तथा राग रंग में ही व्यस्त रहने के अभ्यासी हैं। उन्होंने केवल तभी युद्धाभ्यास किया है जब उन्हें इसकी आवश्यकता पड़ी है। इसके विपरीत दैत्य तथा असुर कठिन जीवन व्यतीत करने के अभ्यासी हैं तथा युद्ध का सतत अभ्यास करते रहते हैं। अब हमारे पास शीघ्र प्रभाव करने वाली चमत्कारी औषधियां भी नहीं रहीं जिनसे देवों की सेना अमर तथा अक्षय बनी रहती थी। ऐसी स्थिति में प्राण-रक्षा करना ही श्रेयस्कर है।"

"गुरुदेव! क्या औषधि निर्माण-शाला का पुनर्निर्माण नहीं किया जा सकता?"

देवराज ने पूछा।

"अवश्य किया जा सकता है परंतु उसके लिए वर्षों की लंबी अवधि की अपेक्षा होगी। अतः युद्ध रोक देना ही बुद्धिमानी है।"

आचार्य बृहस्पति की बात मान कर इंद्र ने युद्ध रोक दिया।

अभीष्ट सिद्धि न होने के कारण दैत्यराज जलांधर का क्रोध भभक उठा। देवताओं द्वारा युद्ध रोक देने तथा प्रतिरोध न करने के कारण विवश होकर युद्ध के नियमों का पालन करते हुए उसने भी युद्ध रोक दिया किंतु इंद्र पर उसका क्रोध कम नहीं हुआ। अतः वह उसे द्वंद युद्ध के लिए

रुद्रायन – 2

ललकारने लगा। उसके ललकारने तथा तथा बार-बार युद्ध का आह्वान करने पर भी जब देवराज इंद्र बाहर नहीं निकला तब उन्मत्त होकर वह इंद्रलोक में घुस गया और इंद्र को ढूँढने लगा। प्राणों के भय से डर कर देवराज अन्य प्रमुख देवताओं के साथ गुप्त मार्ग से इंद्रलोक से पलायन कर गये। निराश होकर दैत्यराज पुनः अपनी सेना में लौट गया।

इंद्रलोक से भाग कर देवताओं के साथ इंद्र विष्णुदेव के बैकुंठ लोक में पहुंचा तथा उनसे युद्ध में सहायता करने का अनुरोध किया।

विष्णुदेव बड़े असमंजस में पड़ गये। वे इंद्रदेव के नीति विरुद्ध कार्यों से अवगत थे तथा उनकी स्वार्थपरता का भी उन्हें भली-भांति ज्ञान था। वे जानते थे कि दैत्यराज जलांधर ने देवलोक पर आक्रमण किया है। ऐसी स्थिति में वे स्वयं तटस्थ ही रहना चाहते थे परंतु सहायता मांगने के लिए याचक बन कर आए देवताओं को निराश लौटाना भी उनकी मर्यादा के विपरीत था। बहुत विचार करने के उपरांत उन्होंने देवराज की ओर से जलांधर से युद्ध करने का निश्चय किया। उन्होंने अकेले ही देवगणों की ओर से युद्ध करने की स्वीकृति दी तथा गरुण - यान को युद्ध सामग्री से भरने का आदेश दे दिया।

विष्णुदेव को युद्ध के लिए उद्यत देख कर विष्णु पत्नी लक्ष्मी ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की -

"प्रभु!"

"क्या बात है प्रिये?"

"आप जानते हैं स्वामी कि जलांधर मेरे पिता का पालित पुत्र है। इस नाते वह मेरा भाई है। वह विद्वान और सदाचारी है। नीतिपूर्वक अपने राज्य का पालन करता है तथा समय आने पर अन्याय का विरोध करता है। यह तो नारद जी आपको बता ही चुके हैं।"

"हाँ कमलनयनी! तुम अपना अभीष्ट कहो किंतु मुझे युद्ध से विरत रहने के लिए मत कहना। याचना करने आए इंद्र की सहायता करने के लिए उनकी ओर से युद्ध करना मेरी विवशता है।"

विष्णु देव बोले।

"मैं समझती हूँ प्रभु ! मैं तो केवल इतना ही चाहती हूँ कि आप मेरे भ्राता के प्राणहंता न बनें। वह आप से युद्ध करके विजयी भले ही न हो परंतु उसके प्राणों को संकट में न डालें।"

लक्ष्मी बोलती।

"जैसी तुम्हारी इच्छा।"

"आप वचन दे रहे हैं प्रभु?"

"हां प्रिये! मैं तुम्हें वचन देता हूँ। मैं युद्ध में जलंधर के प्राण नहीं लूँगा। वह मेरे हाथों मृत्यु को नहीं प्राप्त करेगा।"

विष्णु ने पत्नी को आश्वस्त किया और स्वयं अपने गरुणाकार वाहन पर सवार होकर युद्ध-भूमि की ओर प्रस्थान कर गये।

युद्ध में विष्णु देव को अपने पक्ष में युद्ध करने के लिए आया देख कर देवों की सेना में उत्साह की लहर दौड़ गई। वे नवीन जोश में भर कर विष्णु के नेतृत्व में युद्ध करने लगे।

विष्णुदेव के सम्मुख आकर दैत्यराज जलंधर ने उन्हें प्रणाम किया।

"प्रणाम विष्णुदेव!"

"निर्विकारी बनो दैत्यराजा!"

विष्णुदेव बोले।

"यह युद्ध मेरे और आपके मध्य नहीं है विष्णुदेव!"

जलंधर ने कहा।

"मैं जानता हूँ जलंधर! किंतु देवराज इंद्र ने मुझसे युद्ध भूमि में सहयोग देने की प्रार्थना की है। तुम्हें तो विदित ही है कि मैं विनम्र भाव से याचना करने वाले याचक को निराश नहीं करता। यह मेरा व्रत है।"

विष्णुदेव ने कहा।

"अवश्य। यदि आप अपने वचन का पालन कर रहे हैं तो मुझे भी अपने व्रत का पालन करने दें। सम्मुख आये युद्ध के अभिलाषी से युद्ध करना मेरा व्रत है। लीजिए, प्रहार संभालिए।"

कह कर जलंधर विष्णु पर बाणों की वर्षा करने लगा। कुछ ही क्षणों में उसने भयंकर बाण वर्षा से देवों की सेना को त्रस्त कर दिया। यह देख

रुद्रायन – 2

कर विष्णुदेव ने अपने गरुण वाहन के यांत्रिक पंखों को तीव्र गति से चलाया। तेज आंधी आ गयी। उस तीव्र हवा में दैत्यों की सेना के पांच उखड़ने लगे। हवा के वेग को संभाल न सकने के कारण वे इधर-उधर गिरने लगे। फिर पंखों की गति कम करके विष्णु देव ने अपना शारङ्गव नामक धनुष उठा कर उसकी प्रत्यंचा चढ़ाई और तीव्र टँकार की तथा दैत्य सेना पर बाणों की वर्षा करने लगे।

उन्होंने दैत्यराज के रथ की धजा, छत्र और प्रत्यंचा काट दी तथा उसे उठा कर भूमि पर पटक दिया। जलांधर तेजी से उठा और दूसरे रथ पर चढ़ कर देवों की सेना पर बाण बरसाने लगा। भयंकर युद्ध होने लगा। दैत्यराज जलांधर ने विष्णुदेव का धनुष तोड़ दिया तो वे गदा लेकर उस पर टूट पड़े। जलांधर ने विष्णुदेव पर त्रिशूल से प्रहार किया जिसे उन्होंने अपने त्रिशूल से काट दिया।

अब दोनों अपने वाहन से कूद कर धरती पर आ गये और मल्लयुद्ध करने लगे। दोनों एक दूसरे पर धूँसों तथा मुक्कों का प्रहार करने लगे। दोनों का यह बाहु-युद्ध बहुत देर तक चलता रहा। दोनों ओर की सेनाएं लड़ा छोड़ कर उन दोनों के उस अद्भुत मल्लयुद्ध को देखने लगीं। बहुत देर तक युद्ध करने पर भी दोनों में कोई एक दूसरे को परास्त न कर सका। न विष्णुदेव जलांधर को गिरा सके और न जलांधर ने ही हार मानी।

सायंकाल होने पर दोनों ने युद्ध रोक दिया। दैत्यराज के अतुलनीय पराक्रम से प्रसन्न होकर विष्णु देव ने कहा -

"तुम निश्चित रूप से अद्भुत वीर हो। तुम्हारा पराक्रम प्रशंसनीय है। तुम न तो मेरे भयंकर अस्त्र शस्त्र से भयभीत हुए और न ही तुमने हार मानी। अभी भी तुम युद्ध के लिए तत्पर हो। तुम्हारी इस युद्ध-कला और अद्भुत पराक्रम से मैं अत्यंत प्रसन्न हूँ।"

विष्णुदेव की बात सुन कर जलांधर उन्हें प्रणाम कर के कहने लगा -

"आप मेरे भगिनीपति होने के कारण मेरे द्वारा वंदनीय है। आपसे मैं युद्ध करूँ यह शोभा नहीं देता। यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं तो मैं आपको

सपरिवार अपने भवन में आमंत्रित करता हूँ मेरे भवन में पधार कर हमें
अनुग्रहीत करें।"

"अवश्य बंधु! शीघ्र ही मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा।"

कह कर विष्णुदेव ने जलंधर को गले से लगा लिया।

युद्ध समाप्त हो गया। विष्णुदेव वापस लौट गये। दैत्यराज प्रसन्न हृदय से विष्णु देव की इच्छा का आदर करते हुए अपने नगर लौट गया। कुछ ही दिनों बाद विष्णुदेव अपनी पत्नी लक्ष्मी तथा परिवार के साथ दैत्यराज का आतिथ्य स्वीकार करने पहुँचे। अपनी बहन लक्ष्मी को माता के समान मान कर जलंधर ने सम्मानित किया। उनको अनुकूल पाकर दैत्यराज निर्द्वन्द्व हो कर धर्मानुसार अपने राज्य का पालन करने लगा। उसके राज्य में सभी प्रजाजन सुखी, सदाचारी तथा धर्म का पालन करने वाले थे।

रुद्रायन – 2

कई दिनों की कठोर यात्रा के पश्चात रुद्रदेव (मार्तण्ड) पत्नी पार्वती (महालसा) के साथ कैलाश पर पहुंचे। उनके बहाँ पहुंचते ही कैलाशपुरी में आनंद की लहर फैल गई। विद्युत-गति से रुद्रदेव के सपत्नीक स्वगृह आगमन का शुभ समाचार चारों और स्वतः ही प्रसृत हो गया। बालक विनायक माता से मिलने आया और 'माँ' कहकर पार्वती से लिपट गया।

"यह तुम्हारे पिता हैं पुत्र! इन्हें प्रणाम करो।"

पार्वती ने पुत्र को गले से लगाते हुए कहा।

"प्रणाम पिताश्री!"

विनायक ने प्रणाम किया।

"पुत्र !"

रुद्रदेव ने उसका मुख ऊपर उठाया तो चकित रह गये। क्या यह उनका पुत्र विनायक है? कहाँ गया उसका वह गोल मटोल भोला सा चंद्रमुख? धुँधराले बालों की लटों को हटाते ही उसके विचित्र मुख का साक्षात्कार हुआ। उसके कानों का आकार बहुत बढ़ गया था और नाक ने संपूर्ण मुख का आकार बिगाढ़ दिया था। पूरे मुख पर हाथी की सूँड के समान लंबी नाक पर ही दृष्टि जाती थी। नाक के वृहद आकार के कारण उसकी आंखें भी छोटी-छोटी लगने लगी थीं परंतु मुख मंडल पर वही भोलापन और नेत्रों में वही अबाध चमक थी।

"विनायक! मेरे पुत्र!"

रुद्रदेव ने उसे सीने से लगा लिया। कुछ देर बाद उन्होंने विनायक के मुख को छूते हुए पूछा -

"कहीं पीड़ा तो नहीं है पुत्र?"

"नहीं पिताश्री! कोई पीड़ा नहीं। माता तो यों ही चिंतित रहती हैं। मुझे कोई कष्ट नहीं है। और जानते हैं पिताश्री! इस नाक के कारण मुझे मेरे सहपाठी मित्र 'हस्तीमुख' कहते हैं।"

विनायक हँस कर बोला।

"उनके ऐसा कहने से तुझे कष्ट नहीं होता?" "नहीं पिताश्री! मैं भी उनके साथ हँसता हूँ और अपनी लंबी नाक हिला कर कहता हूँ -

मैं हस्तीमुख हूँ मुझे ढेर सा भोजन दो। और तब सब मुझे बहुत से भोज्य पदार्थ लाकर खिलाते हैं। बहुत आनंद आता है।"

भोले विनायक ने बताया।

"अब तू चिंता मत कर। अब मैं आ गया हूँ न! तेरी इस व्याधि का कोई न कोई उपचार तो अवश्य करूँगा।"

रुद्रदेव ने कहा।

उन्होंने उसी दिवस नंदीश्वर आदेश दिया -

"आर्य नंदीश्वर! आप आज ही विशेष चर को भेज कर देवगुरु बृहस्पति को बुलावा लीजिए। औषधि विज्ञान में वे विशेष पैठ रखते हैं।"

"अवश्य प्रभु!"

"और नंदीश्वर! हमारे प्रथम पुत्र का पता चल गया है। वह उत्तर-पूर्व की पर्वतमाला में स्थित 'कृत्तिका लोक' में है।"

"कृत्तिका-लोक?"

नंदीश्वर चकित हुआ।

"हाँ नंदीश्वर! मुझे यही सूचना मिली है कि 'कृत्तिका लोक' में मेरा पुत्र छै कृत्तिकाओं द्वारा पाला जा रहा है। मैं चाहता हूँ कि आप स्वयं कुछ प्रमुख गणों के साथ जाकर सम्मान पूर्वक मेरे पुत्र कार्तिकेय को यहाँ ले आयें। उसकी माताओं को समझा-बुझा कर शांत करा दें परंतु उन्हें किसी प्रकार का कष्ट न होने पायें।"

"जैसी आपकी इच्छा प्रभु! मैं आज ही बृहस्पतिदेव को बुलाने की व्यवस्था करता हूँ तथा स्वयं आपके ज्येष्ठ पुत्र को लाने के लिए कल प्रात ही 'कृत्तिका लोक' की ओर प्रस्थान करूँगा।"

नंदीश्वर ने रुद्रदेव का आदेश शिरोधार्य किया।

उसी दिन देवगुरु बृहस्पति को बुलाने के लिए विशेष चर को भेज दिया गया। दूसरे दिन प्रातः ही नंदीश्वर चार प्रमुख गणों के साथ सुंदर स्वर्णखचित पालकी वस्त्र आभूषणों से भर कर उसे साथ लेकर कृत्तिका-लोक की खोज में चल पड़े। देवगुरु बृहस्पति को लाने के लिए गए हुए चर शीघ्र ही देवलोक की नवीन सूचनाओं के साथ लौट आए। उन्होंने

लौट कर बताया कि किस प्रकार देवासुर संग्राम में देवताओं को जालंधर से युद्ध भूमि में पराजित होकर अपनी प्राण-रक्षा हेतु यत्र तत्र भ्रमण करके अपने जीवन की रक्षा करनी पड़ रही है। वे तो बड़ी कठिनाई से कुछ घायल सैनिकों से ही संपर्क कर पाये थे। उन्होंने ही देवलोक का समाचार बताया था। देवगुरु बृहस्पति, इंद्रदेव तथा अन्य देवगण कहाँ हैं इसका कुछ पता नहीं चला।

इंद्रलोक पर दैत्यराज जलंधर ने अधिकार कर लिया था अब वह स्वयं देवों तथा दैत्यों के राज्य का अधिपति बन कर राज्य कर रहा है। उसके भगिनी पति विष्णुदेव तथा बहन लक्ष्मी की कृपा भी उसे प्राप्त हो गई है। देवों के गुरु बृहस्पति देव की द्रोण गिरि की गुप्त घाटी में बनाई गई औषधि शाला दैत्यों के द्वारा पूरी तरह नष्ट कर दी गई है तथा निकट भविष्य में उसके पुनर्निर्माण की कोई संभावना भी नहीं दिखाई देती।

अब क्या होगा? विनायक की चिकित्सा कैसे की जा सकेगी? रुद्रदेव चिंतित हो उठे। अन्य कोई उपाय न देख कर उन्होंने स्वयं अपनी औषधि निर्माण शाला में जाकर विनायक के लिए उचित औषधि निर्माण करने का निश्चय किया परंतु तत्काल ऐसा करना संभव नहीं हो सका। उन्हें अपने प्रथम पुत्र के आगमन की प्रतीक्षा भी करनी थी। उसके आने तक वे कैलाशपुरी में रहने के लिए विवश थे क्योंकि नंदीश्वर भी नगर में नहीं थे। ऐसी स्थिति में कैलाशपुरी की संपूर्ण सुरक्षा व्यवस्था करनी आवश्यक हो गई थी।

कुछ समय पश्चात मुचकुंद सौराष्ट्र से उन स्त्रियों को लेकर कैलाश पहुंच गया जिनको आश्रय नहीं मिल सका था। रानी पार्वती ने खुले हृदय से उनका स्वागत किया और वीरक से कह कर उनके रहने तथा भोजन आदि की व्यवस्था करा दी। माई के आश्रम में रह कर पार्वती खी सेना की अद्भुत युद्ध कला तथा क्षमता का आकलन कर चुकी थी। इन स्त्रियों को अन्य कैलाश की स्त्रियों के साथ उन्होंने सैन्य शिक्षा दिलानी आरंभ कर दी। वह उन्हें युद्ध कला में पूर्ण निपुण तथा आत्म-रक्षा के साथ देश-रक्षा में भी सक्षम बना देने का प्रयास कर रही थीं। विनायक इस कार्य में

उनका पूर्ण सहयोग कर रहा था। विभिन्न मल्लों से वह स्वयं भी उन स्थियों के साथ शिक्षा प्राप्त कर रहा था। अपने भोलेपन तथा विनोदी स्वभाव से शीघ्र ही विनायक उन सबका प्रिय हो गया। इन सभी व्यवस्थाओं के साथ पार्वती तथा रुद्रदेव को अपने ज्येष्ठ पुत्र की आकुल प्रतीक्षा थी।

कई दिन इधर उधर भटकने के बाद नन्दीश्वर को कृतिका-लोक की सही स्थिति का ज्ञान हो पाया। साथियों के साथ मार्ग की अनेक कठिनाइयों को पार करके अंततः वह कृतिकाओं के वृहद आवास तक पहुंच पाये। आवास क्या था वह तो मानो स्वर्ग का टुकड़ा ही था। चारों ओर हरे-भरे वृक्षों से घिरा हुआ सुरम्य प्रदेश। फलदार वृक्ष की पंक्तियों को पार करने पर रंग-बिरंगे फूलों से सुशोभित उद्यान। इतने प्रकार के फूल एक ही स्थान पर नन्दीश्वर ने इससे पूर्व कभी नहीं देखे थे। वह स्थान फूलों की घाटी ही प्रतीत होता था। उन पुष्प उद्यानों के मध्य बन्य काष्ठ से निर्मित सुंदर भवन था जिसे रंग-बिरंगे चित्रों से चित्रित किया गया था।

पुष्प उद्यान तक जा कर नन्दीश्वर ठहर गये। साथ लायी हुई पालकी उन्होंने एक ओर रखवा दी। साथ आये युवक भवन के निकट पहुंच कर चारों ओर से उसके अनुपम सौंदर्य को देखने लगे।

इतने बलिष्ठ आयुध लिये हुए पुरुषों को देख कर कृतिकाएँ घबरा गयीं। उन्होंने व्याकुल होकर सोचा- 'यह कैसी विपत्ति आ गयी? कहीं उनके पुत्र को हानि पहुंचाने के लिये किया गया यह कोई षड्यंत्र तो नहीं है?'

उनमें इतनी शक्ति नहीं थी कि वे उन सशस्त्र पुरुषों का सामना कर सकें। भयभीत होकर वे कार्तिकेय के निकट एकत्र हो गयीं।

"पुत्र! लगता है किसी बलिष्ठ अनी ने हमें चारों ओर से धेर लिया है। वे हम पर आक्रमण कर के हमें तथा हमारे आवास को नष्ट कर देंगे। आओ, हम पीछे के द्वार से निकल कर जंगल में भाग कर अपने प्राणों की रक्षा करें।"

माताओं को इस प्रकार अधीर और व्याकुल देखकर कार्तिकेय ने

रुद्रायन – 2

उन्हें समझाते हुए कहा -

"माताओं! आप चिंता न करें। भयभीत होने की कोई बात नहीं है। आपके इस पुत्र के रहते कोई आपको हानि नहीं पहुँचा सकता। मैं देखता हूँ कि कौन लोग आ कर इस प्रकार हमारे भवन में अनधिकृत रूप से प्रविष्ट हो गए हैं।"

"नहीं नहीं पुत्र! तुम यहीं ठहरो। पहले हम देखती हैं।"

कृतिकाओं ने पुत्र कार्तिकेय को अभ्यंतर कक्ष में ही रोक लिया। तभी नंदीश्वर ने द्वार पर आ कर पुकार कर कहा -

"भवन में कौन है? क्या यहाँ इस आवास में कृतिकाएँ निवास करती हैं? देवियों! द्वार पर कैलाशपति रुद्रदेव का प्रमुख सेवक नंदीश्वर उनके संदेश के साथ प्रस्तुत है। क्या अभ्यागत का स्वागत इस भवन में नहीं किया जाएगा?"

'रुद्रदेव का संदेश'- चकित होकर कृतिकाओं ने सोचा। उनमें से एक बाहर द्वार तक जाकर बोली -

"स्वागत है अभ्यागत, परंतु संदेश देने के लिए एक ही व्यक्ति पर्याप्त है। इतने सैन्य बल का क्या प्रयोजन?"

"रूष न हों देवि! ये मार्ग की सुरक्षा हेतु साथ आये हैं। रुद्रदेव ने आप की सेवा में कुछ उपहार प्रेषित किये हैं।"

नंदीश्वर ने द्वार की ओर हाथ जोड़ कर प्रणाम करते हुए कहा।

"कैसा उपहार?"

कृतिका ने पूछा। नंदीश्वर ने साथ लायी पालकी द्वार पर रख दी और उसमें से आभूषणों की मंजूषा तथा वस्त्र निकाल कर सामने रख दिए।

"इन्हें स्वीकार करें देवी!"

"नहीं महानुभाव! आप पहले शांत होकर पधरें। जलपान करें तथा रुद्रदेव का संदेश निवेदन करें। तदुपरांत ही हम उनके उपहार के संबंध में निर्णय लेंगे।"

कृतिकाओं ने उन्हें सादर काषासन पर बैठाया और मीठे फल, मधु तथा निर्मल जल से उनका स्वागत किया। जलपान ग्रहण करके वे कुछ

आश्वस्त हुए। तब कृतिकाएँ उनके निकट आ गयीं। सावधानीवश कुमार कार्तिकेय भी उनके निकट आ खड़े हुए।

"प्रणाम निवेदन करता हूँ कुमार!"

नन्दीश्वर ने प्रणाम किया।

"अब आप अपना संदेश सुनायें।"

"अवश्य देवि! कैलाशपति रुद्रदेव ने सर्वप्रथम आपका आभार माना है कि आप ने उनके पुत्र का पालन पोषण किया। इसके लिए वे आपके अत्यंत ऋणी हैं। उन्होंने हमें अपना पुत्र वापस लेने के लिए भेजा है।"

"रुद्रदेव का पुत्र? आपको अवश्य कोई भ्रम हुआ है आर्य। यहाँ रुद्रदेव का पुत्र नहीं है। यहाँ तो केवल हम कृतिका बहने और हमारा पुत्र कार्तिकेय ही हैं।"

कृतिकाओं ने चकित होकर कहा।

"यह कार्तिकेय ही रुद्रदेव के पुत्र हैं देवी!"

"यह कैसे संभव है?"

"कार्तिकेय को आपने गंगा के किनारे प्राप्त किया था यह तो सत्य है न?"

नन्दीश्वर ने पूछा।

"यह तो सत्य ही है किंतु इस से रुद्रदेव का क्या संबंध?"

"वही निवेदन कर रहा हूँ देवी! कुछ वर्ष पूर्व रुद्रदेव के पुत्र को जन्म के कुछ दिनों बाद ही अग्नि कबीले के प्रमुख पावक ने चुरा लिया था। उसे लेकर भागते समय जब वह गंगा नदी को पार कर रहा था तब उसके हाथ से छूट कर वह बालक नदी में गिर कर बह गया जिसे सप्तर्षियों की स्त्रियों ने गंगा स्नान के समय उठा लिया। लोकापवाद के भय से वे उसे सरपत की झाड़ियों में फेंक कर चली गयीं। वर्ही से आपने उसे प्राप्त किया और अपनी संतान के समान उसका पालन पोषण कर रही हैं। आप लोगों ने जिस ममता और वात्सल्य के साथ कुमार को पाला है उसका मूल्य नहीं चुकाया जा सकता।"

"परंतु उन्होंने इतने दिनों तक उसकी खोज खबर क्यों नहीं ली? अब हम उसे अपने पुत्र के रूप में पाल रहे हैं तो वे उसे वापस पाना चाहते हैं। ऐसा क्यों भद्र?"

"रुद्रदेव ने अपने खोये हुए पुत्र की बहुत खोज करायी किंतु उसका कुछ पता न चला। निराश हो कर वे स्वयं उसकी खोज में घर छोड़ कर भटकने लगे। अंततः कुमार के आप के पास होने की सूचना पा कर वे कैलाशपुरी में लौटे हैं तथा अब कुमार को लाने के लिए हमें आपके निवास स्थान 'कृत्तिका लोक' भेजा है।"

"परन्तु आर्य! कर्तिकेय हमें औरस पुत्र के समान ही प्रिय है। हम तो उसका मुख देख कर ही जीवित रहती हैं। वह हमारे जीवन का आधार है। उसके बिना हम किसके सहारे जीवित रहेंगी?"

कृत्तिकाओं ने व्याकुल होकर कहा।

"हम आप की विवशता समझते हैं किंतु आप भी उस माँ की विकलता को समझने का प्रयास कीजिए जो इतने वर्षों से अपने पुत्र को पाने की आशा में जीवित है। उस पिता के व्याकुल वात्सल्य की तड़प का अनुमान लगाइए जो अपने पुत्र को जी भर कर गोद में खिला भी नहीं सका। आप कुमार के उज्जवल भविष्य के लिए उसे हमारे साथ भेज दीजिए। वह कैलाशपति का पुत्र है। उसकी शिक्षा-दीक्षा तथा पालन-पोषण कैलाशपुरी में उसके माता-पिता की देखरेख में होगा तो क्या यह उसके भविष्य के लिए उचित नहीं होगा? आप केवल अपना स्वार्थ ही ही न देखें वरन् कुमार के आगत भविष्य का भी विचार करें।"

नंदीश्वर ने उन्हें समझाया तो कृत्तिकाएँ सोच में पड़ गयीं। सत्य ही तो कह रहे हैं नंदीश्वर। वे स्नियां हैं और वह भी समाज से अलग, बहिष्कृत। निष्कासित जीवन जीने वाली। कुमार के व्यक्तित्व के विकास के लिए माता के वात्सल्य के साथ पिता के कठोर अनुशासन की भी आवश्यकता होगी। उसे तो रुद्रदेव ही दे सकते हैं। अपने जन्म देने वाले माता पिता के पास पहुंच कर ही वह सुखी हो सकेगा। कृत्तिकाओं ने आपस में परामर्श करके अपना कर्तव्य निर्धारित कर लिया।

"ठीक है आर्य! आप कुमार को अवश्य ले जायें परंतु हमें इतना आश्वासन देते जाइए कि जब भी हमारी इच्छा हो हम कैलाशपुरी में आ कर पुत्र कुमार कार्तिकेय से मिल सकें।"

"अवश्य देवियों! मैं कैलाशपति रुद्रदेव का प्रधान अमात्य अपने स्वामी की ओर से आपको वचन देता हूँ। आप जब भी जी चाहे आकर पुत्र के साथ समय व्यतीत कर सकेंगी। यदि कभी आपको हमारी किसी सहायता की आवश्यकता पड़े तो निःसंकोच बताइएगा। आप हमें अपनी सहायता के लिए सदैव प्रस्तुत पाएँगी। यह नन्दीश्वर का वचन है।"

"हम कृतार्थ हुई आर्य!"

कृतिकाओं ने नन्दीश्वर के लाये हुए उपहारों को स्वीकार कर लिया और विभिन्न अलंकारों से सजा कर कुमार को विदा किया। जाने से पूर्व कुमार बहुत मचला। वह अपनी माताओं को छोड़ कर अनजान स्थान पर जाने के लिए किसी भी प्रकार तैयार नहीं होता था।

"मेरी माताएं तो आप सब हैं। आपके अतिरिक्त मेरी कोई दूसरी माता नहीं है। न ही कोई पिता है। इतने वर्षों तक कहाँ थे मेरे माता-पिता? मैं उन्हें क्या जानूँ? क्यों जाऊँ उनके पास जिन्हें मैं नहीं जानता? जब से मैंने आँखें खोली हैं आप लोगों को ही देखा है। मैं किसी और को अपना कैसे मान लूँ?"

बड़ी कठिनाई से कुमार कार्तिकेय को समझाया जा सका। अश्रुपूरित नेत्रों से कृतिकाओं ने उसे कैलाशपुरी के लिए विदा किया।

छै दिनों की कठिन यात्रा पूर्ण करके नन्दीश्वर का दल कुमार कार्तिकेय के साथ कैलाशपुरी पहुँचा तो कैलाशपुरी के निवासियों ने प्रसन्नता पूर्वक उनका स्वागत किया। माता पार्वती तथा पिता रुद्रदेव के आनंद का पार न रहा। माँ ने दौड़ कर अपने खोए हुए पुत्र को अंक में भाग लिया। बार-बार वह व्याकुल होकर उसका मुख चूमती और शरीर पर हाथ फेरती रही जैसे स्वयं को ही पुत्र के निकट होने का विश्वास दिलाना चाहती थी। उसके असीम वात्सल्य से अभिभूत होने पर भी कार्तिकेय सहज नहीं हुआ। उस का हृदय अपनी कृतिका माताओं को ही

रुद्रायन – 2

याद करता रहा।

जब रुद्रदेव ने उसे सीने से लगा कर उसका सिर सूंधा तो जैसे कार्तिकेय का उत्तम हृदय शीतल हो गया। इतने दिनों तक वह 'पिता' शब्द तथा उसके अर्थ से पूर्णतया अनजान था। पिता के वक्ष से लग कर वह स्वयं को सनाथ तथा सुरक्षित अनुभव करने लगा। विनायक ने 'भैया' कहकर उसका अभिवादन किया तो उसकी लंबी नाक देख कर वह चकित हो गया।

सहज विनोदी विनायक हँस दिया।

"यह नाक ही अब मेरी पहचान बन गई है भैया! बिल्कुल विदूषक जैसा लगता हूं न मैं? आपका अच्छा मनोरंजन रहेगा।"

"नहीं नहीं भाई! ऐसा नहीं है। तुम तो बहुत अच्छे हो।"

"अभी आपने मेरी शरारतें देखी नहीं हैं न इसीलिए ऐसा कह रहे हैं।"

विनायक हँस कर बोला।

"तुम बहुत हँसमुख और भोले हो भाई! तुम्हारे जैसा भाई तो बड़े भाग्य से मिलता है।"

कार्तिकेय ने विनायक को सीने से लगाते हुए कहा।

"आप को बड़े भाई के रूप में पा कर मैं कृतार्थ हो गया भैया!"

विनायक की आंखें छलक उठीं। रुद्रपुत्र कार्तिकेय तथा विनायक के जयघोष से कैलाश की पर्वत मालाएं गूँजने लगीं।

रुद्रदेव उदास से एक चट्टान से टेक लगा कर बैठे हुए थे। उनके मस्तक पर चिंता की रेखाएं नृत्य कर रही थीं। हिमालय पर स्थित यह उनकी औषधि निर्माण शाला थी जहाँ वे अपने सहयोगियों के साथ मिल कर पुत्र विनायक के लिए औषधि बनाने में लगे हुए थे। पूरे तीन वर्ष व्यतीत हो गये थे उन्हें कैलाशपुरी से यहां आये हुए। अथवा प्रयास करके वे बार-बार औषधियां बनाते, अनेक रसायनों को मिलाते, वनस्पतियों का रस निकालते तो कभी अन्य वैद्यों से सम्पर्क करते।

इसी संदर्भ में अश्विनी कुमारों से भी परामर्श किया था किंतु कोई लाभ नहीं हो रहा था। बड़े यत्न से उन्होंने अश्विनी कुमारों के सहयोग से नवीन औषधि का निर्माण किया था तथा उसे पुत्र विनायक के लिए अश्विनी कुमारों के हाथों से ही भिजवा दिया था। अब वे उनके लौटने तथा औषधि के परिणाम की प्रतीक्षा कर रहे थे।

उन्हें अनेक प्रकार की चिंताओं ने धेर रखा था। अब तक कितनी ही औषधियों तथा न जाने कितने लेप आदि का प्रयोग किया जा चुका था किंतु विनायक की नाक का बढ़ना नहीं रुक रहा था। हाँ, उसके बढ़ने की गति कुछ कम अवश्य हो गई थी। यदि इस बार भी औषधि का परिणाम नकारात्मक ही रहा तो? नहीं, इस बार तो औषधि का सकारात्मक प्रभाव होना ही चाहिए। अब किसी प्रकार की असफलता सहन करना उनके लिए अत्यंत कठिन होगा।

रुद्रदेव चिंता के सागर में डूब उतरा रहे थे उसी समय वह पर्वतीय क्षेत्र 'नारायण नारायण' के मध्य गान से रसमय हो उठा। 'नारायण' मंत्र का जाप करते नारद मुनि वहाँ आ पहुँचे थे।

"कौन? नारद? आइए मुनिवर!"

रुद्रदेव ने विचारों के सागर से उबरते हुए नारद की अभ्यर्थना की।

"प्रणाम प्रभु!"

नारद मुस्कुराये।

"आज इधर कैसे नारद मुनि!"

रुद्रदेव ने पूछा।

रुद्रायन – 2

"मैं तो यहाँ आपके समाचार लेने तथा जगत के समाचारों से आपको अवगत कराने आया हूँ। यही तो मेरा कार्य है।"

नारद बोले।

"मैं सकुशल हूँ। आप अन्य समाचार बताइए मुनिवर!"

"सकुशल ही तो नहीं हैं आप। प्रभु! आपके मस्तक पर चिंता की रेखाएं विराजमान हैं। मुख की कांति कुम्हला गयी है। मैं कैलाशपुरी की ओर से आ रहा हूँ। आपके दर्शन की इच्छा से मैं वर्हीं गया था।"

"वहाँ सब कुशल तो है न मुनिवर?"

रुद्रदेव उत्कंठित हुए।

"हाँ प्रभु! वहाँ देवी पार्वती के दर्शन हुए। आपके प्रथम पुत्र कार्तिकेय को देख कर आत्मा शीतल हो गयी। भरपूर देह सौष्ठव पाया है उस ने युद्ध कला में पूर्ण निष्णात हो गया है। उसकी बलिष्ठ भुजाएं सहज ही संसार को अभ्य प्रदान करती हैं।"

प्रसन्न भाव से नारद ने बताया।

"और विनायक? उस से नहीं मिले आप?"

रुद्रदेव का स्वर अधीर हो उठा।

"प्रभु! उस से भी मिला। अच्छा विनोदी स्वभाव है उसका। सहज स्नेही और परोपकारी। दूसरे के मार्ग को भी सुगम बना देने वाला।"

"और और"

"और क्या जानना चाहते हैं? उसके रोग के विषय में? संभवतः आपकी चिंता का कारण यही है।"

"हाँ नारद! उस विचित्र रोग ने जीवन नष्ट कर दिया है मेरे पुत्र का।"

"नहीं प्रभु! ऐसा मत कहिए। आपका पुत्र आकाश में जगमगाते चंद्रमा के समान ही शीतलता देने वाला है। उसकी विद्वत्ता अपरिमित है। उसके विवेक की कोई समानता नहीं कर सकता।"

"और उसका रूप?"

"वह विरूप हो कर भी सुंदर है प्रभु! उससे मिल कर, बातें करके जी जड़ा जाता है। उसकी विरूपता का तो क्षण भर भी आभास नहीं

होता। जैसे चंद्रमा की किरणों में उसका कलंक छिप जाता है वैसे ही विनायक के गुणों ने उसकी विरूपता को प्रच्छन्न कर दिया है। अश्विनी कुमारों की दी हुई औषधि के प्रयोग से उसकी नाक का बढ़ना रुक गया है। उसका मुख गज - शिशु के मुख के समान प्रतीत होता है तथापि वह वैसे भी अत्यंत सुंदर है। उसकी झील सी नीली आँखें आगंतुक को अपने आकर्षण में बांध लेती हैं। उसको प्यार किया जा सकता है। कोई अभागा ही होगा जो उसे विरूप कह कर उसकी उपेक्षा या तिरस्कार करेगा।"

नारद के वचनों ने रुद्रदेव के उद्घम हृदय को शांत कर दिया। भले ही विनायक का मुख पूर्व के समान न हो सके परंतु उसकी नाक का बढ़ना रुक गया है यह भी बड़ी उपलब्धि है। उसके मुख को पूर्व के समान आकार देने का प्रयास फिर कभी किया जा सकेगा। उसके लिए औषधियाँ ढूँढ़ने का कार्य निरंतर चलता रहेगा।

"एक विशेष बात और भी है प्रभु!"

नारद बोले।

"वह क्या?"

"आप तो जगदाधार हैं। सब को आश्रय देने वाले। कितने ही विरूपों और विकलांगों को सम्मान सहित आपने अपने गणों में पूर्ण समादर से आश्रय दे रखा है। वे गण विनायक से विशेष प्रेम करते हैं।"

"संभवतः उसकी विरूपता ने उसे उन सभी विचित्र रूप धारी गणों का आत्मीय बना दिया है।"

"संभवतः।"

नारद ने उत्तर दिया। तब तक रुद्रदेव के सेवक नारद तथा रुद्रदेव के लिए फलाहार और शीतल जल ले आये।

"जलपान करें मुनिवर!"

रुद्रदेव ने आग्रह किया।

"अवश्य प्रभु! यह तो आप का प्रसाद है।"

नारद ने एक खिरनी उठा कर मुख में डाल ली।

रुद्रायन – 2

"आज रात्रि विश्राम यहीं करें नारद! प्रातः जहां जी चाहे चले जाएं!"

रुद्रदेव ने चारों ओर फैली रात की चादर की ओर संकेत करते हुए कहा।

वह रात नारद ने रुद्रदेव के सान्निध्य में व्यतीत की। गुफा में वैज्ञानिक सहयोगियों के साथ ही दोनों ने कंद तथा आड़ आदि खाकर अपनी भूख मिटाई। उनके निकट अग्नि की व्यवस्था करके सब लोग दूसरी गुफा में विश्राम के लिए चले गये।

"अब आप भी शयन करें प्रभु!"

नारद बोले।

"नहीं नारद! मुझे नींद नहीं आ रही है परंतु आप थके हैं। शयन करें।"

"यात्रा करने में नारद को कभी थकान नहीं होती रुद्रदेव! आप तो जानते ही हैं कि भ्रमण मेरा प्रिय कार्य है और जिसमें मनुष्य की रुचि होती है वह कार्य करने में थकान या ऊब नहीं होती।"

"सत्य कहा आपने।"

रुद्रदेव ने कहा।

देर रात तक दोनों बातें करते रहे। बातों ही बातों में नारद ने देवताओं की दुर्वस्था का उल्लेख किया। उन्होंने बताया कि जलांधर ने किस प्रकार दैत्यों तथा असुरों की सेना संगठित करके देवलोक पर अधिकार कर लिया जिसके कारण देवगण पर्वत गुफा तथा गहन वनों में छद्य रूप से निवास कर रहे हैं।

संपूर्ण संसार पर आधिपत्य करने के कारण जलांधर अहंकारी हो गया है। देवी लक्ष्मी उसकी बहन है अतः विष्णु देव भी उसके अनुकूल हैं। ब्रह्मदेव वृद्ध तथा तटस्थ हैं अतः वह स्वयं को अजेय समझने लगा है।

यद्यपि वह सदाचारी तथा नियमों का पालन करने वाला तथा धर्मानुसार आचरण करने वाला है तथापि अहंकार के कारण वह

स्वेच्छाचारिता की ओर कदम बढ़ा रहा है। देवताओं की संतुष्टि के लिए मानव गण जो उन्हें हवन आदि द्वारा उनका भाग देते थे वह सारे यज्ञ आदि कर्म जलंधर ने बंद करवा दिए हैं। वह जन गण से यज्ञ रूप में कर नहीं लेता जैसे देवगण लिया करते थे। इससे उसकी प्रतिष्ठा बढ़ गई है किंतु देव गणों के लिए जीवन-यापन भी कठिन हो गया है। परिश्रम करके आजीविका कमाना देवगण नहीं जानते। वे तो सदा से ही मनुष्यों के हवन, यज्ञ, दान आदि द्वारा पोषित होते रहे हैं। ये सारे धार्मिक कृत्य बंद कर के जलंधर ने समस्त प्रजा को कर्म तथा श्रम प्रधान बना दिया है। दैत्य, असुर तथा मानव सभी श्रम करके जीविकोपार्जन कर रहे हैं। धार्मिक कार्यों का तो नाश ही हो गया है।"

नारद की बात सुन कर रुद्रदेव हँस पड़े।

"यह तो अच्छी बात है नारद! श्रमजीवी होना तो अच्छा कार्य है। दान, हवन, यज्ञ का परित्याग करके भी यदि प्रजा परिश्रम कर रही है तो उसे धर्म कर्म की आवश्यकता ही क्या है? देव गणों को भी जलंधर से शिक्षा लेनी चाहिए। देव भी श्रमजीवी बन जायें तो उनका संकट दूर हो जाये। यहाँ कैलाश वासी भी तो कठोर पर्वतीय जीवन बिताते हुए भी कठिन परिश्रम करके अपनी आजीविका कमाते हैं। इसमें बुराई क्या है?"

"कोई नहीं प्रभु! परंतु देवगण ऐसा नहीं कर सकते।"

"क्यों? क्यों नहीं कर सकते? केवल इसलिए कि वे देवगण हैं? यह तो कोई बात नहीं हुई। इतनी परोपजीविता किसलिए? यदि मनुष्य या दैत्य या असुर देवगणों की कृपा नहीं प्राप्त करना चाहते तो क्यों वे यज्ञ आदि कर्म करके उन्हें संतुष्ट करें?"

रुद्रदेव ने पूछा।

"उचित कहा आपने प्रभु! परंतु इस तथ्य को समझने तथा श्रमजीवी बनने में देव-गणों को बहुत समय लगेगा। तब तक"

"तब तक वे अपने ग्राणों की रक्षा स्वयं करें। अब विश्राम करें नारद! रात बहुत हो गई है। मैं भी विश्राम करूँगा।"

रुद्रदेव ने बात समाप्त करते हुए कहा।

रुद्रायन – 2

"अवश्य प्रभु!"

कह कर नारद एक ओर स्थिसक कर लेट गये। आग की दूसरी ओर रुद्रदेव सो गये। कैलाशपुरी के समाचार पाकर रुद्रदेव की चिंता कम हो गई थी और वे अपनी सहज अवस्था में लौट गये थे।

स्वाभाविक रूप से कुछ ही क्षणों में निद्रा देवी ने उन्हें अपनी गोद में ले लिया।

देर तक नारद अग्नि की उठती लपटों को देखते रहे। विचारों के झंझावात से जूझते न जाने कब उन्हें नींद आयी।

दूसरे दिन प्रातः काल नित्य स्नान आदि करके दोनों ने जलपान किया और नारद को विदा करके रुद्र देव भी कैलाशपुरी की ओर चल पड़े।

०००

रुद्रदेव से मिल कर नारद मुनि ब्रह्म लोक पहुँचे। वहां देवगुरु उपस्थित थे तथा देव-गणों के संकट के संबंध में ब्रह्मदेव से विचार-विमर्श कर रहे थे। देवों की दुरवस्था का प्रभाव उन पर भी पड़ा था। बल्कि सबसे अधिक हानि तो उन्हें ही हुई थी।

इंद्रदेव के संरक्षण में वे अपनी औषधि निर्माण-शाला का कार्य सुचारू रूप से चला रहे थे। उनके वैज्ञानिक दिन रात उनके निर्देशन में अनेक औषधियों के संधान तथा निर्माण में लगे रहते थे। वे कितने ही असाध्य रोगों का निदान करके उनके उपचार के लिए अद्भुत परिणाम देने वाली औषधियों का निर्माण कर चुके थे। वास्तव में उनकी औषधियों का ही प्रभाव था यह जो देव-गण कभी रोग ग्रस्त नहीं होते थे तथा वृद्धावस्था का प्रभाव उन पर नहीं पड़ता था। वृद्ध होने पर भी उनके शरीर युवाओं के समान ही सुंदर तथा शक्तिशाली रहते थे।

जलंधर ने औषधि निर्माण शाला नष्ट कर के बृहस्पतिदेव के सारे जीवन की उपलब्धियां नष्ट कर दी थी। उनके लगभग सभी सहयोगी, सहायक तथा सहकर्मी मार डाले गये थे। जो एकाध बच रहे थे वे भी किसी गुहा गढ़र में छिप कर समय बिता रहे थे।

बृहस्पतिदेव जानते थे कि जब तक देवों का वर्चस्व स्थापित नहीं हो जाता वे औषधि निर्माण शाला के पुनर्निर्माण की बात सोच भी नहीं सकते इसीलिए संपूर्ण चेष्टा करके वे देवों को देवलोक में पुनः स्थापित करने का उपाय ढूँढ़ रहे थे।

ब्रह्मदेव ने स्पष्ट रूप से कहा -

"देखिए देवगुरु! आप स्वयं जानते हैं कि मैं युद्ध में भाग नहीं लिया करता। जलंधर से मेरा कोई प्रत्यक्ष वैर भी नहीं है। देवताओं से मुझे पूर्ण सहानुभूति है किंतु इंद्र के अनैतिक तथा अन्याय पूर्ण कार्यों का मैं समर्थन नहीं करता। ऐसे मैं मैं आपकी क्या और कैसे सहायता कर सकता हूँ?"

"ब्रह्मदेव! मानता हूँ कि इंद्र अविवेकी तथा अनाचारी है किंतु उसके नेतृत्व में ही देवलोक का अस्तित्व है। देव-गणों का अस्तित्व है।

रुद्रायन – 2

देवलोक में कोई ऐसा समर्थ देवता नहीं है जिसे इंद्रासन पर बिठाया जा सके अतः वर्तमान इंद्र को ही पुनः प्रतिष्ठित करना पड़ेगा।"

बृहस्पति देव ने कहा।

"इस संबंध में मैं क्या कर सकता हूँ? आप प्रयत्न करें। मैं आपकी सफलता के लिए इश्वर से प्रार्थना करूँगा।"

ब्रह्मदेव तटस्थ भाव से बोले।

"मैं आपसे सत्परामर्श चाहता हूँ ब्रह्मदेव! आप बताएं कि मैं इस संबंध में किस से सहायता की आशा रखूँ?"

बृहस्पति देव ने पूछा।

"मैं क्या कहूँ? आप विष्णु देव से बात कीजिए।"

"विष्णु देव? वह मेरी सहायता क्यों करना चाहेंगे? जलंधर उनकी पत्नी लक्ष्मी देवी का भाई है। वे जलंधर से प्रसन्न भी हैं। देवों के लिए वे कुछ करेंगे इसका मुझे विश्वास नहीं है। इंद्रदेव के कृत्यों से वे पहले से ही असंतुष्ट हैं।"

बृहस्पति देव ने विवश स्वर में कहा।

"फिर भी आपको प्रयास तो करना ही चाहिए या फिर रुद्रदेव से बात कीजिए। यदि वे चाहें तो दैत्यों और असुरों को संयमित कर सकते हैं।"

ब्रह्मदेव बोले।

"बीच में बोलने के लिए क्षमा चाहता हूँ पिताश्री! यदि आप अनुमति दें तो मैं भी कुछ कहूँ..."

उन दोनों को प्रणाम करके नारद ने पूछा।

"हाँ हाँ, कहिए। आपकी बारें संभवतः मुझे कोई मार्ग दिखा सकें।"

बृहस्पति देव ने उसे प्रणाम करके कहा।

"मैं रुद्रदेव से मिल कर ही आ रहा हूँ। वे जलंधर की नीतियों से संतुष्ट हैं। देवराज इंद्र ने अपने अशोभनीय कर्मों से सभी को असंतुष्ट कर दिया है। देवताओं का परजीवी होना, स्वयं परिश्रम न करके दूसरों से कर स्वरूप प्राप्त धन से ऐश्वर्यशाली जीवन बिताना तथा स्वेच्छाचार रुद्रदेव

को रुचिकर नहीं प्रतीत होता। इसके विपरीत दैत्यराज जलांधर का न्याय तथा नैतिकता पूर्ण आचरण उन्हें प्रिय तथा श्रेष्ठ लगता है। वह देवगण की सहायता करेंगे और वह भी दैत्यराज के विरुद्ध युद्ध करने में मुझे इसमें संदेह है।"

नारद ने बताया।

"तो अब हम क्या करें? देवराज की प्रतिष्ठा हुए बिना मैं भी निर्थक हो गया हूँ।"

बृहस्पति देव के स्वर में घोर निराशा भर गयी।

"मेरे विचार से आपको तथा देव गणों को समय अनुकूल होने की प्रतीक्षा करनी चाहिए। परिस्थितियों के अनुकूल होने पर वे स्वयं अपना साम्राज्य प्राप्त करने में सक्षम हो जाएंगे तथा विष्णु देव और रुद्रदेव की सहायता भी प्राप्त हो सकेगी।"

ब्रह्मदेव ने समझाया। पुनः विचार करते हुए नारद से बोले -

"पुत्र! तुम एक बार देवगणों से संपर्क करके देखो। यदि देवराज इंद्र को अपने अन्याय पूर्ण कृत्यों का पश्चाताप हो तथा वे भविष्य में सदाचारी बनकर नीति पूर्वक देव लोक का शासन करने के लिए तत्पर प्रतीत हों तो तुम स्वयं अपने ढंग से उनकी सहायता करने का प्रयत्न कर सकते हो।"

ब्रह्मदेव के कूट वचन सुन कर नारद मुस्कुरा दिये। वे ब्रह्मदेव का आशय समझ गये।

ब्रह्मदेव वस्तुतः: देवगण की सहायता करना चाहते थे किंतु इंद्रदेव के आचरण मे सुधार भी चाहते थे। शेष कूटनीतिक चाल तो नारद ही चल सकते थे क्योंकि वह इस में निपुण थे।

"अवश्य पिताश्री! मैं ऐसा ही प्रयत्न करूँगा।"

नारद ने ब्रह्मदेव को प्रणाम किया और वहां से बृहस्पति देव के साथ ही प्रस्थान कर गये। उन्हें इंद्रदेव के सदाचार तथा पश्चाताप का ज्ञान जो करना था।

देवलोक पर दैत्यराज जलधर का अधिकार हो जाने के कारण देवगणों की स्थिति अत्यंत शोचनीय हो गई थी। दैत्यों से संधि करने के लिए वे तैयार नहीं थे अतः अपने प्राणों की रक्षा के लिए उन्हें दर-दर भटकना पड़ रहा था। देवराज प्रमुख देवताओं के साथ हिमालय की गुफा में चंद्रदेव के आश्रय में निवास कर रहे थे। नारद मुनि को साथ लेकर बृहस्पति देव वहीं पहुँचे। देवगण की दुर्दशा देख कर नारद मुनि को अत्यधिक कष्ट हुआ। सच है, सभी दिन एक समान नहीं होते। संसार में कुछ भी स्थाई नहीं है। सुख के बाद दुख, दिन के बाद रात, ऐश्वर्य के बाद दरिद्रता और पुनः पूर्व अवस्था - यही संसार का नियम है।

समय का चक्र बिना रुके निरंतर धूमता रहता है। जैसे रात के बाद दिन का आगमन अवश्यंभावी है उसी प्रकार दुख के बाद सुख का आना भी अनिवार्य है। जय और पराजय भी एक ही सिक्के के दो पहलुओं के समान हैं। इसलिए मनुष्यों को धन ऐश्वर्य पाकर सुख के अभिमान में विवेक का परित्याग नहीं करना चाहिए। अवस्थाएं तो निरंतर परिवर्तित होती रहती हैं अतः उन पर अभिमान करना मूर्खता है। इतने दिनों धन वैभव तथा ऐश्वर्यमय जीवन से दूर रह कर इंद्र को अपनी भूल का ज्ञान हो गया था। वह निरंतर अपने पूर्व में किए गए कृत्यों का स्मरण करता तथा दुखी होता रहता। देवगुरु बृहस्पति तथा नारद ने अनेक प्रकार से उसे समझा-बुझाकर आश्वासन दिया।

नारद का हृदय नवनीत के समान कोमल तथा दूसरों के दुख की आंच पाकर सहज ही पिघल जाने वाला था। इंद्र तथा देवों का वैभव उन्होंने देखा था। रत्नजटित सिंहासन पर बैठ कर अतुल ऐश्वर्य का उपभोग करने वाले देवों के शिरोमणि जर्जर वस्त्रों में लिपटे धूलधूसरित भूमि पर शयन करते तथा हिमगिरि की गुफाओं में निवास करते हुए वन में उपलब्ध होने वाली जड़ी बूटी, फल-फूल आदि का सेवन कर रहे थे। यह देख कर नारद का हृदय दयार्द्र हो उठा। उन्होंने देवों के हित के लिए कुछ न कुछ करने का निश्चय किया। विभिन्न प्रकार से उन्हें आश्वासन देकर नारद वहां से चल पड़े। बहुत सोच विचार के पश्चात नारद ने पुनः

कैलाशपुरी जाकर रुद्रदेव से मिलने का विचार किया। वह जानते थे कि अब एकमात्र रुद्रदेव ही देवों की सहायता करने में सक्षम हैं।

विनायक को औषधि से लाभ हो रहा है यह जान कर रुद्रदेव प्रसन्न थे। कैलाशपुरी आ कर उन्होंने विनायक को बुला कर देखा। उसके मुख का शोथ कुछ कम हो गया था तथापि उसका मुख किसी हाथी के शिशु के मुख के समान ही प्रतीत होता था। लंबी नाक बढ़ कर दो बालिशत भर लंबी हो गई थी। नाक की लंबाई के साथ-साथ चौड़ाई भी बढ़ गई थी जिस से आँखें बहुत छोटी दिखाई देती थीं और कानों का आकार भी बढ़ गया था। उसके मुख से एक दांत भी बढ़ कर बाहर झांकने लगा था। विचित्र आकृति हो गई थी उसकी। रुद्रदेव ने दुखी होकर उसे हृदय से लगा लिया।

"पुत्र! कितना भाग्यहीन है तुम्हारा पिता जो तुम्हारे इस विषम रोग से तुम्हें मुक्ति नहीं दिला पा रहा है!"

उनकी आँखों से आँसू बरसने लगे।

"आप दुखी मत होइए पिताश्री! आपकी औषधि ने मेरा कष्ट समाप्त कर दिया है। अब मुझे कोई पीड़ा नहीं होती और इस नाक से कोई असुविधा भी नहीं है। आप नहीं जानते मेरी घ्राण शक्ति बढ़ गई है और मैं इस नाक को इच्छानुसार हिला डुला भी सकता हूँ क्योंकि यह हाथी की सूँड के समान ही है और छल्लेदार मांसपेशियों से युक्त है। मुझे अपने रूप से कोई कष्ट नहीं है। मेरे मित्र मुझे इस रूप में भी प्रेम करते हैं और माँ भी मुझसे बहुत प्रेम करती है। ऐया कार्तिकेय और आप भी तो मुझसे प्रेम करते हैं। मैं आपका गजानन पुत्र हूँ तो क्या हुआ? पुत्र तो हूँ न!"

विनायक ने पिता के गते में अपनी बाहें डाल दीं।

"हाँ पुत्र! मुझे ही नहीं हम सब को तुम अत्यंत प्रिय हो।"

रुद्रदेव ने उसकी नाक सहलायी तो वह हँस पड़ा।

पुत्रों की युद्ध कला तथा शास्त्र अभ्यास से रुद्रदेव अत्यंत प्रसन्न थे। उनके पुत्रों ने कैलाशपुरी के नवयुवकों को संगठित करके उनकी सेना तैयार कर ली थी जो प्रतिदिन के अभ्यास से सशक्त और सुसंगठित हो

रुद्रायन – 2

गयी थी। पार्वती ने भी अपनी स्त्री सेना को पूरे मनोयोग से अभ्यास कराया था।

यह सब देख समझ कर रुद्रदेव ने अपने मंत्रियों से मिल कर नगर तथा अपने राज्य की सुख-सुविधाओं का प्रबंध देखा। उन्हें नवीन योजनाएं समझायीं और तब नंदीश्वर की देख रेख में राज्य और परिवार को सौंप कर पुनः स्वाध्याय व तप हेतु वन गमन के लिए तत्पर हो गए। उनका मुख्य उद्देश्य उस नवीन व्याधि का निराकरण करना तथा उसको रोकने का उपाय ढूँढना था जिससे स्वयं उनका पुत्र ही ग्रसित हो गया था। राज्य में कुछ और बालकों में भी यह विचित्र व्याधि फैलने लगी थी जो उनके किसी एक अंग का आकार बढ़ा देती थी। अद्भुत बात यह थी कि इससे उनमें नवीन शक्ति का भी संचार हो रहा था।

प्रस्थान से पूर्व पार्वती ने साथ चलने की इच्छा प्रगट की तो वे मना न कर सके। वैसे भी अधिकांश समय वे पत्नी से अलग ही रहे थे अतः उसके दुख को अनुभव कर रहे थे। उन्होंने उसे साथ चलने की अनुमति दे दी। एक बार फिर नंदीश्वर पर राज्य तथा पुत्रों का भार सौंप कर रुद्रदेव पत्नी सहित वनवासी जीवन व्यतीत करने के लिए गंधमादन पर्वत की ओर चल पड़े।

नारद रुद्रदेव से मिलने के लिए कैलाशपुरी पहुंचे तो उन्हें उनके पत्नी सहित गंधमादन पर्वत पर जाने की सूचना मिली। नंदीश्वर से मिलकर नारद स्वयं भी गंधमादन पर्वत की ओर चल दिए। देवी पार्वती के वहाँ होने की सूचना ने उन्हें कुछ अधिक ही आशान्वित कर दिया था। जो बात वह रुद्रदेव को नहीं समझा सके थे वे बातें देवी पार्वती को सहज ही समझायी जा सकती थीं। यदि वे देवों के दुख से अभिभूत हो गयीं तो सहज ही वे अपने पति को देवों की सहायता करने के लिए मना लेंगे। इस अवसर को नारद ने स्वर्णावसर समझा और तीव्र गति से गंधमादन के लिए चल पड़े।

गंधमादन पर्वत वस्तुतः चंदन बहुल वन था। वहाँ चंदन, केवड़ा, बेला, चमेली, जूही, हरसिंगार सदृश सुगंधित वृक्षों तथा वनस्पतियों की

बहुलता थी। अगर, तगर तथा भोजपत्र के वृक्षों की संख्या भी न्यून न थी। विभिन्न गन्ध संपन्न औषधियों तथा वनस्पतियों का संकुल होने के कारण वह पर्वतीय क्षेत्र विचित्र मादक सुगंध से सदैव सुवासित रहता था। संभवतः इसी कारण उसका नाम गंधमादन पड़ा था।

चारों ओर हरियाली ही हरियाली छायी हुई थी। रंग बिरंगे फूल खिले हुए थे। त्रिविध बयार बह रही थी। चारों ओर स्नाधता तथा शांति विराजमान थी। वृक्षों की डालियों तथा झाड़ियों पर बैठे पक्षी कलरव करते हुए विभिन्न स्वरों में बोल रहे थे।

पर्वत की अद्भुत छटा का अवलोकन कर के नारद का हृदय प्रसन्न हो गया। ऐसे स्वर्गीय वातावरण में जब हृदय सहज आनंद का अनुभव करता है तब सफलता स्वयं ही वरण करने लगती है। ऐसे दिव्य वातावरण में रुद्रदेव को मनाना सरल होगा और फिर वहां देवी पार्वती भी तो होंगी।

विचरण करते हुए नारद वन के मध्य भाग में पहुँचे। यह स्थान अत्यंत मनोरम था। एक ओर एक उथली गुफा थी जिसकी पिछली दीवार में शिलाएँ कुछ इस प्रकार से स्थिति थी मानो आसन की सृष्टि कर रही हों। एक ओर एक चौरस शिला थी जिस पर आराम से सोया जा सकता था। उसी शिला पर रुद्रदेव विराजमान थे। दिन भर वे विभिन्न वनस्पतियों की खोज में इधर-उधर भटकते रहे थे इसलिए थकान उनके रोम-रोम में व्याप्त हो गयी थी। उन्हें विश्राम करता छोड़ कर देवी पार्वती तुम्बी में जल लेने के लिए निकट ही बहने वाले झरने पर गयी हुई थीं।

नारद गुफा से कुछ पूर्व ही एक ओर ठिठक कर खड़े हो गये थे और सोच रहे थे कि विश्राम करते हुए रुद्रदेव के निकट जायें अथवा नहीं। उसी समय देवी पार्वती झरने की ओर से वापस लौटती हुई दिखायी दीं। उन्होंने अधोवस्थ को कुछ ऊंचा बांध रखा था जिससे घुटने के नीचे का भाग अनावृत हो गया था। वक्ष को एक छोटे से वस्त्र से आवृत कर के पीछे पीठ पर गाँठ लगा दी गयी थी। केशों का जूँड़ा बनाया गया था जो कुछ खुल गया था और चंचल अलकावलियाँ मुख पर झुक आयी थीं। उन्नत मस्तक पर लाल रंग की बिंदी लगी थी। उनकी आँखें काली और भवें

रुद्रायन – 2

घनी थीं। गहन, लंबी बरौनियों ने पलकों को अत्यधिक लंबा कर दिया था। तीखी नासिका के अग्रभाग में नहा सा स्वर्ण आभूषण था जो संध्या की लाली में चमक रहा था। कानों में बड़े-बड़े कुंडल थे और वक्ष पर अम्लान पुष्पों की माला।

एक हाथ में पानी की तुम्बी उठाये और दूसरे हाथ में पत्र - द्रोण में कुछ बेरी और कंद लिये वे बहुत संभल संभल कर चल रही थीं। नारद उस अप्रतिम सौंदर्य राशि को एकटक देखते रह गये। उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों विश्व की संपूर्ण सुंदरता नारी का रूप धारण करके उनके सम्मुख आ गयी हो। वह तो पलकें झापकाना भी भूल गये थे।

नारद को इस प्रकार अपनी ओर देखते पाकर पार्वती सकुचा गयीं।

"प्रणाम माता!"

नारद ने प्रणाम किया।

"प्रणाम ऋषिवर! आप ऐसे क्यों देख रहे हैं मुझे?"

पार्वती ने पूछा।

"आपका रूप अद्भुत है माता! मैं उसे ही देख रहा था और सोच रहा था"

"क्या सोच रहे थे?"

"यही कि मैं आपका पुत्र होता तो मैं भी आप के समान ही सुंदर होता!"

नारद के स्वर में एक अस्पष्ट सी वेदना थी।

"ऐसा मत कहो मुनिवर! मेरे पुत्र होने से ही तुम सुंदर होते ऐसा निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। मेरे ही दोनों पुत्र"

कहते कहते पार्वती चुप हो गयीं। उनकी आंखों के सामने विनायक का मुख घूम गया।

"आपके दोनों पुत्र संसार के अद्भुत रत्न हैं माता! यदि आप विनायक के रूप के कारण दुखी हो रही हैं तो ऐसा मत सोचिये। विनायक अपने सद्गुणों के कारण ही संसार में पूज्य होगा।"

नारद ने समझाया। पार्वती मुस्कुरा दीं।

"तनिक ठहरो नारद! मैं बस अभी आती हूँ।"

पार्वती हाथ में लिये हुए जल और फल आदि को लेकर गुफा में रुद्रदेव के पास पहुँची परंतु तब तक वे ध्यानावस्थित हो चुके थे। जल पात्र और फलों का दोना वहीं एक शिला पर रख कर वे बाहर आ गयीं और नारद को संकेत से बुला कर गुफा से कुछ दूर हट कर एक वृक्ष की टूटी हुई डाल पर बैठ गयीं।

विनोद करते हुए पार्वती ने पूछा -

"तुम मेरे पुत्र क्यों होना चाहते हो नारद? क्या तुम्हारी माता सुंदर नहीं थी? तुम भी निष्कलुष हो। बस, थोड़ा रंग सांवला है। वह भी संभवतः तुम्हारे घुमक्कड़ी स्वभाव के कारण श्याम वर्ण हो गया है।"

"संभवतः आपका कथन सत्य हो माता! परंतु मेरी माता दासी थी। ब्रह्मदेव के रनिवास की सेविका। निसंदेह वे सुरूपा थीं तभी तो ब्रह्मदेव ने उनकी कोख से मुझे जन्म लेने दिया परंतु"

"परंतु क्या?"

"परंतु उन्होंने मेरी माँ को पत्नी का स्थान, सम्मान और अधिकार नहीं दिया। वे अंत तक दासी ही रहीं। मेरे पालन पोषण के लिए भी उन्होंने ब्रह्मदेव की कृपा नहीं ली। मेरे उदर में आने का ज्ञान होने पर ही संभवतः उन्होंने ब्रह्मदेव की चाकरी छोड़ दी थी। मैंने उन्हें सदैव दूसरों के घरों में सेवा कार्य करते हुए देखा। वे मुझे कभी इस घर में तो कभी उस घर में लेकर डोलती रहती थीं। इसीलिए शायद मेरा स्वभाव भी भ्रमण प्रिय हो गया। एक स्थान पर अधिक दिनों तक रह ही नहीं पाता। मन ऊबने लगता है और कहीं और जाने के लिए छटपटाने लगता हूँ।"

नारद का कण्ठ स्वर आर्द्र हो गया।

"दुखी मत हो नारद! प्रत्येक प्राणी का अपना व्यक्तित्व और कर्म होता है। प्रत्येक व्यक्ति के जन्म लेने का उद्देश्य भी भिन्न होता है। मेरे उदर से जन्म लेकर तुम नारद न बन पातो।"

हँस कर पार्वती ने वातावरण की गंभीरता को कम कर दिया। नारद भी सहज हो गये।

रुद्रायन – 2

"प्रभु के दर्शन करना चाहता था माँ"

"वह तो ध्यानस्थ हैं। पता नहीं कितनी देर में उठेंगे। चाहो तो प्रतीक्षा कर लो। विश्राम भी मिल जायेगा तुम्हें। मुझे माँ कहा है तो कर्म से तो माता हूँ ही तुम्हारी। चलो, उधर झरने पर जा कर मुंह हाथ धो कर स्वस्थ हो लो तब तक मैं तुम्हारे लिए भोजन की व्यवस्था करती हूँ।"

"नहीं माता! आप कष्ट न करें। मुझे तनिक भी भूख नहीं है। झरने पर जाकर मुंह हाथ धो लेता हूँ और जल पान भी कर लूँगा।

नारद झरने से लौटे तब तक पार्वती ने पास की झाड़ी से दो बड़े कंद खोद लिए थे। उसे ही आग में भून कर नारद ने खाया। देर रात तक रुद्रदेव की समाधि न टूटी तो वे झरने के निकट जाकर सो रहे। दूसरे दिन प्रात ही ध्यानस्थ रुद्रदेव को नमन और पार्वती को प्रणाम करके नारद ने प्रस्थान किया। रात्रि शयन के पूर्व अनायास ही उन्हें अपनी समस्या का समाधान जो मिल गया था।

०००

दैत्यराज जलंधर का दरबार लगा हुआ था। दैत्यराज अपने मंत्रियों के साथ राज्य की समस्याओं के संबंध में मंत्रणा कर रहे थे। उसी समय नारद मुनि ने दरबार में प्रवेश किया।

"नारायण नारायण!"

"प्रणाम मुनिराज!"

दैत्यराज जलंधर ने अपने आसन से उठ कर नारद का स्वागत किया तथा उन्हें उच्च आसन पर बैठाया।

"शुभमस्तु दैत्यराज! कुशल से तो हैं?"

"सब आपकी कृपा है मुनिवर!"

दैत्यराज ने नारद का विधिवत सत्कार किया। वे घड़ी भर को सभा में बैठ कर दैत्य राज की न्यायिक निष्ठा तथा राज्य संचालन की प्रतिभा को देखकर प्रसन्न होते रहे।

कठिन से कठिन समस्या का समाधान क्षण भर में ही कर देने की उसमें अद्भुत क्षमता थी। प्रजावत्सल था वहा राज्य की सभा उसे अपना भाग्य - विधाता मानती थी। जिस प्रकार एक पिता अपने विभिन्न पुत्रों, पौत्रों से भेरे परिवार का न्याय पूर्वक पालन करता है उसी प्रकार दैत्यराज जलंधर अपनी प्रजा का पालन करता था। उसके प्रत्येक निर्णय पर जन समूह हर्षनाद करता हुआ उस की जय-जयकार करने लगता।

ऐसे न्याय प्रिय, प्रजा-पालक राजा के विरुद्ध कुछ भी करने से पूर्व एक क्षण के लिए नारद का मन विचलित हो गया किंतु अगले ही क्षण दुरवस्था भोग रहे देव-गणों की स्थिति उनके नेत्रों के समुख साकार होने लगी और उन्होंने अपने विचलित हृदय को पुनः दृढ़ कर लिया।

राज्य कार्यों से अवकाश पा कर दैत्यराज ने पुनः पूछा -

"अब आदेश करें मुनिवर! मैं आपका क्या प्रिय करूँ?"

"मैं किसी विशेष इच्छा या अभिलाषा को लेकर आपके पास नहीं आया राजन! मैंने अपने भ्रमण काल में ब्रह्मदेव तथा विष्णु देव के अद्भुत कोष तथा संपत्तियों का अवलोकन किया है। प्रसंगवश मुझे ध्यान आया कि आप की संपदा तथा कोष से मैं सर्वथा अनभिज्ञ हूँ। यदि आपको

रुद्रायन – 2

आपत्ति न हो तो मैं आपका कोष देखना चाहता हूँ। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि विश्व मे विष्णुदेव से अधिक किसी का भी राजकोष नहीं है।"

नारद ने अपनी इच्छित योजनानुसार पासा फेक दिया।

"बस इतनी सी बात। मुनिवर, आप तनिक भी संकोच न करें। आइए, मैं स्वयं आपको अपनी अर्जित संपदा तथा राजकोष का अवलोकन कराता हूँ।"

दैत्यराज जलंधर ने गर्व भरे शब्दों में कहा।

सभा विसर्जित करके दैत्यराज ने अपने मुख्यमंत्री के साथ नारद को ले जा कर अपनी समस्त संपत्ति दिखायी। देव गणों की धन संपत्ति पर भी अब दैत्यराज का ही अधिकार था। देवराज इंद्र का ऐरावत हाथी जिसके आठों गजदंतों पर सोने के छल्ले जड़े हुए थे और गले में स्वर्ण घंटिका लटक रही थी तथा गंधर्वराज कुबेर का पुष्पक विमान भी उसके ही अधिकार में था। इसके अतिरिक्त जवाहरात और स्वर्ण रजत भंडार का अनमोल कोष उसी के पास था। स्वर्गलोक की अप्सराओं के अतिरिक्त स्वयं उसके रनिवास में एक से एक सुंदरी युवा स्त्रियाँ उपस्थित थीं जो अपने एक एक भ्रू-भंग से बड़े से बड़े ऋषि मुनियों का संयम भंग कर देने में सक्षम थे। रत्न जटित मयूरासन तथा तपे हुए स्वर्ण से निर्मित सिंह युगल भी उसके राजकोष में शोभा पा रहे थीं। कितने ही जाने अनजाने रत्नों से उसका राजकोष भरा था। मुक्त भाव से नारद उसकी प्रशंसा करते रहे और वह उन्हें एक-एक वस्तुएं दिखाता रहा। अंत में दैत्यराज ने पूछा -

"आपने तो असंख्य राजकोष देखे हैं। मेरा यह राजकोष आपको कैसा लगा?"

"अद्भुत तथा अद्वितीय। वास्तव में आपका राजकोष अनुपम है। संपूर्ण राज-कोषों से अधिक संपन्न है आपका कोष परंतु ..."

"परंतु क्या मुनिराज?"

जलंधर ने पूछा।

"वह कुछ नहीं दैत्यराज! बस ऐसे ही!"

नारद ने बात टाल दी।

"नहीं मुनिराज! आप निःसंकोच कहिये। यदि मेरे कोष में कहीं कोई दोष या न्यूनता है तो आप उसे अवश्य बताएँ जिससे मैं उसे दूर कर सकूँ।"

"आपका राजकोष अद्भुत है राजन! आपकी संपदा अतुलित है परंतु आपका रनिवास कुछ अधूरा सा प्रतीत होता है।"

"मुनिराज! मेरे रनिवास में एक से बढ़ कर एक सुंदरियां हैं परंतु वे सब पत्नी वृद्धा की सेवा के लिए ही हैं। मैं एकपत्नीब्रत धारी हूँ अपनी पत्नी वृद्धा से मैं अत्यधिक प्रेम करता हूँ इसीलिए संभवतः आपको न्यूनता का आभास हुआ।"

"नहीं दैत्यराज! आप एक पत्नी ब्रत का पालन करने वाले हैं यह तो अच्छी बात है। राजा अपने राजकोष का स्वयं उपभोग नहीं करता परंतु उस पर उसका अधिकार होता है। इसी प्रकार संसार के समस्त श्रेष्ठ स्त्री रत्नों पर आपका स्वामित्व तो होना ही चाहिए भले ही आप के उपभोग के लिए न हो।"

नारद बोले।

"मेरे विचार से मेरे अंतरनिवास में संसार की श्रेष्ठतम स्त्रियां उपस्थित हैं तथापि यदि ऐसा कोई स्त्री रत्न आपकी दृष्टि में कहीं है जिसे आपके विचार से मेरे स्वामित्व में होना चाहिए तो आप बताइये। मैं उसे अवश्य प्राप्त करूँगा।"

जलंधर ने उत्सुक होकर पूछा।

"एक स्त्री रत्न मेरी दृष्टि में आयी तो अवश्य किंतु उसे प्राप्त करना अत्यंत कठिन है। जाने दीजिये राजन! उस प्रसंग को भूल ही जाइये।"

"नहीं मुनिराज! आप बताइए। उसे प्राप्त करना चाहे कितना भी कठिन क्यों न हो मैं उसे अवश्य प्राप्त करूँगा।"

"मैंने यहां आने से पूर्व गंधमादन पर्वत की यात्रा की थी। वहाँ मैंने एक अनिंद्य सुंदरी स्त्री को देखा था। वह एक अघोरी साधु के साथ थी। मैंने अपने पूरे जीवन में ऐसा अद्भुत सौंदर्य नहीं देखा। वह स्त्रियों में

रुद्रायन – 2

सर्वश्रेष्ठ है। यदि वह आपके स्वामित्व में आ जाये तो आपका वैभव अतुलनीय हो जाये।"

नारद ने बताया।

"धन्यवाद मुनिराज! मैं उसे अवश्य प्राप्त करूँगा। भविष्य में जब आप मेरी राज्यसभा में पथरेंगे तो उस स्त्री रत्न को भी मेरे अधिकार में देखेंगे।"

जलंधर ने गर्व से भर कर कहा।

दैत्यराज के हृदय में आसक्ति की आकांक्षा प्रज्वलित करके नारद मुनि वहाँ से प्रस्थान कर गये।

नारद के कैलाश पुरी से जाने के बाद नंदीश्वर आशंकाओं से घिर गये। उन्हे पश्चाताप होने लगा। क्यों बता दिया उन्होंने रुद्रदेव के आवास का पता? यों तो नारद मुनि सहज स्वभाव के निश्छल व्यक्ति हैं। सभी के मित्र और सभी के हित की साधना में लगे रहने वाले। उनसे रुद्रदेव या देवी पार्वती को किसी प्रकार का भय नहीं है किंतु उनका यही सहज स्वभाव सभी के लिए उन्हें सहज गम्य भी बना देता है। साधु तो सभी को अपने समान ही सहज स्वभाव का समझते हैं। उनसे कोई भी गुप्त समाचार सहज ही जाना जा सकता है। और फिर नारद को तो वैसे भी उथले पेट वाला कहा जाता है। उनके पेट में कोई भी बात नहीं पचती। यदि कहीं किसी अन्य के सामने उन्होंने रुद्रदेव का देवी पार्वती के एकांतवास के स्थल का पता बता दिया और वह कुटिल हृदय से शत्रुता कर बैठा तब तो अकारण ही विपत्ति का सृजन हो जाएगा।

रुद्रदेव तो अकेले निःशस्त्र ही गये हैं। केवल अपना त्रिशूल और डमरू ही वे साथ ले गए हैं। यद्यपि उन्हें सहज ही पराजित नहीं किया जा सकता किन्तु देवी का साथ ही उनकी दुर्बलता का कारण हो सकता है। कैलाश पुरी के राजा को इस प्रकार बिना सुरक्षा सहयोग के अकेले जाकर एकांतवास करना उचित नहीं है। नारद किसी को भी उनके गुप्त एकांतवास की बात बता सकते हैं। चिंतित तथा रुद्रदेव की सुरक्षा के प्रति आशंकित नंदीश्वर ने पच्चीस चुने हुए योद्धाओं को सशस्त्र करके

गंधमादन पर्वत की ओर भेज दिया। उन्हें स्पष्ट निर्देश था कि वे गुप्त रूप से रुद्रदेव तथा देवी पार्वती की सुरक्षा करें तथा उनके एकांतवास में विघ्न न डालें।

नन्दीश्वर की आशंका शीघ्र ही सत्य में परिवर्तित हो गई जब दैत्यराज जलंधर के आदेश पर उसके सेनापति धूम्रलोचन ने अपने कुछ योद्धा सैनिकों के साथ गंधमादन पर्वत पर जाकर देवी पार्वती का अपहरण करने का प्रयत्न किया।

सदा की भाँति उस दिन भी देवी पार्वती झरने के जल में स्नान करके तुम्बी में जल लेकर पुष्पचयन करती हुई रुद्रदेव की आवास-गुफा की ओर लौट रही थी उसी समय झाड़ियों के पीछे से अचानक निकल कर दो असुरों ने पार्वती के ऊपर गज-चर्म डाल दिया और उन्हें उठा ले जाने का प्रयास किया। उनके ऐसा करते ही निकट ही वृक्षों पर पत्तों के आवरण में छिपकर उनकी निगरानी करने वाले कैलाश के योद्धा 'हर हर महादेव' का नारा लगाते हुए कूद पड़े और असुरों से भिड़ गये। उनकी संख्या अधिक होने के कारण धूम्रलोचन को युद्ध करते हुए पीछे लौटना पड़ा।

पार्वती मुक्त हो गयीं किंतु इस घटना ने उन्हें सावधान कर दिया। गुफा में लौट कर पार्वती ने रुद्रदेव को समस्त समाचार सुनाया। उनके साथ कैलाशपुरी के योद्धा भी थे।

समस्त समाचार सुन कर रुद्रदेव कुद्ध हो गये।

"कौन थे वे?"

"पता नहीं प्रभु! परंतु उनकी वेशभूषा दैत्यों के समान थी। संभवतः वे दैत्य या असुर थे। देवी पार्वती पर आवरण डाल कर उन्होंने तो उनका अपहरण कर ही लिया था।"

एक सैनिक ने बताया।

"तुम लोग यहाँ कैसे पहुंच गये?"

रुद्रदेव ने पूछा।

रुद्रायन – 2

"नंदीश्वर ने हमें आपकी सुरक्षा के लिए यहाँ भेजा है। उन्हें भय था कि आप दोनों को एकांत में पाकर कोई हानि पहुंचाने का प्रयत्न कर सकता है। उनकी आशंका सत्य सिद्ध हुई।"

"नंदीश्वर अत्यंत दूरदर्शी हैं। हमारा तो किसी से भी भेदभाव नहीं है। हमें कोई क्षति क्यों पहुंचाना चाहेगा?"

रुद्रदेव चिंतित हुए।

"आप चिंता न करें प्रभु! हम अब और अधिक सतर्क रहेंगे। हमारी संख्या कुल पच्चीस है। यदि आप कहें तो कुछ और सैनिकों को बुला लिया जायेगा।"

"नहीं नहीं। उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। यहाँ निरापद स्थान समझ कर मैं असावधान हो गया था। अब मैं विशेष रूप से सावधान रहूँगा।"

रुद्रदेव ने उन्हें आश्वस्त किया।

रुद्रदेव तथा सैनिकों की उपस्थिति के कारण पार्वती भी स्वयं को सुरक्षित अनुभव करने लगी। कुछ दिन वे भयभीत रहीं और अतिरिक्त रूप से सावधान भी किंतु समय व्यतीत होने के साथ-साथ वे निश्चिंत और असावधान होती गयी।

धूम्रलोचन ने लौट कर जलांधर से रुद्रदेव तथा पार्वती के संबंध में बताया -

"वह पुरुष अत्यंत बलिष्ठ और सुदर्शन है परंतु उसे नागों से विशेष प्रेम प्रतीत होता है। एक दो नाग उसके हाथों तथा कंठ में लिपटे ही रहते हैं। पर्वत की कंदराओं में न जाने क्या किया करता है वह। बहुधा पेड़ पौधों में भी कुछ ढूँढता रहता है। संभवतः कोई विशेष वनस्पति।"

"और वह स्त्री?"

जलांधर ने पूछा।

"वह उसके साथ रह कर उसके भोजन आदि की व्यवस्था करती है।"

"कौन है वह और कैसा रूप है उसका?"

"यह तो ज्ञात नहीं हो सका कि वह कौन है तथा उसका उस तपस्वी वनवासी से क्या संबंध है परंतु अनिद्य सुंदरी है वह। मैंने अभी तक वैसा सौंदर्य किसी स्त्री में नहीं देखा।"

धूम्रलोचन ने बताया।

"अर्थात् नारद मुनि ने सत्य ही कहा था। फिर तो अवश्य ही उसे मेरे अधिकार में होना चाहिए। वह स्त्रियों में श्रेष्ठ स्त्री रत्न है और संसार की समस्त श्रेष्ठ वस्तुओं पर सर्वशक्तिमान का अधिकार होना चाहिए।"

जलांधर ने अझृहास किया।

"अवश्य दैत्यराज! अब हमें उसके लिए कोई नवीन योजना बनानी होगी। उस स्त्री की रक्षा के लिए वहां योद्धा नियुक्त हैं। उन्हें पराजित किये बिना उस स्त्री का अपहरण नहीं किया जा सकता। स्वेच्छा से तो वह आएगी नहीं।"

धूम्रलोचन ने विचारमग्न होते हुए कहा।

"इस बार मैं स्वयं तुम्हारे साथ चलूंगा। धूम्रलोचन! तुम पचास सैनिकों के साथ गंधमादन पर्वत पर पहुंचो। तुम उस स्त्री-शिरोमणि के रक्षकों से युद्ध करते हुए उन्हें उस स्थान से दूर ही रखना। तब तक मैं उसका अपहरण करके अपने साथ उठा लाऊंगा।"

दैत्यराज ने कहा।

"और यदि उस स्त्री ने विरोध किया तो?"

"यदि उसे अवसर मिलेगा तो वह अवश्य विरोध करेगी। मैं उसे इसका अवसर ही नहीं दूँगा। मूर्छना बटी से उसे मूर्छित कर दूँगा और सहज ही उसे उठा लाऊंगा।"

योजना के अनुसार धूम्रलोचन ने अपने सैनिकों के साथ गंधमादन पर्वत पर जा कर सर्वप्रथम रुद्रदेव की दिनचर्या को समझा। उसने पाया कि प्रातः नित्य क्रिया आदि से निवृत्त होने के बाद रुद्रदेव ध्यानस्थ हो जाते थे। एक प्रहर बाद वे पुनः जाग्रत होकर वनस्पतियों की खोज में चल पड़ते थे। इस मध्य पार्वती प्रत्येक समय उनके निकट ही रहती थी। सायंकाल में सूर्यास्त से घड़ी भर पूर्व रुद्रदेव ध्यान करते और तब पार्वती

रुद्रायन – 2

उनसे कुछ दूर वन प्रांत में जाकर रात्रि भोजन के लिए आहार एकत्र करती थी। जलंधर ने वही समय अपनी योजना को क्रियान्वित करने के लिए चुना।

उस दिन जब पार्वती रुद्रदेव को ध्यान करने के लिए कंदरा में छोड़ कर वन प्रांत में कुछ दूर पर खाद्य फल तथा कंद एकत्र कर रही थी उस समय दैत्यराज्य जलन्धर निकट झाड़ियों के पीछे छिप कर उचित अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था।

उस स्थान से थोड़ी दूर पर झारने की ओर से धूप्रलोचन अपने सैनिकों के साथ रुद्रदेव के रक्षकों पर बाणों की वर्षा करने लगा। उस ओर से आक्रमण हुआ जान कर रुद्रदेव के सैनिक शत्रु के आघातों का उत्तर देने लगे। घमासान युद्ध छिड़ गया। दोनों पक्ष निकट आकर भिड़ गये। दैत्य योजना के अनुसार युद्ध करते हुए पीछे हटते जा रहे थे और रुद्रदेव के सैनिक उनसे युद्ध करते हुए रुद्रदेव तथा देवी पार्वती से दूर होते जा रहे थे। अवसर पाते ही जलंधर ने अपने कंधे पर रखी याक की खाल पार्वती पर डाल दी। वह छटपटायी किंतु जलंधर ने मुर्छनी बूटी सुंघा कर उसे मूर्छित कर दिया। उसने खाल से उसे भली भाँति ढक कर एक नन्ही सी गुड़िया के समान कंधे पर डाल लिया और झाड़ियों के पीछे छिपता हुआ क्रमशः उस स्थान से दूर होता चला गया।

पर्वत के दूसरे क्षेत्र में रुद्रदेव के सैनिकों ने दैत्यों से भयंकर युद्ध करके उन्हें पराजित कर दिया। धूप्रलोचन तथा अधिकांश दैत्य मार डाले गये। अवशेष प्राण बचा कर वहाँ से भाग गये। शत्रु पर विजय प्राप्त करके वे रुद्रदेव के पास लौटे तथा देवी पार्वती की प्रतीक्षा करने लगे।

देर तक उनके न लौटने पर वे देवी को सभी संभावित स्थानों पर ढूँढ़ने लगे परंतु उनका कहीं पता न चला। जिस ओर वे आहार लेने गयी थीं वहाँ उनकी कंद खोदने के काम आने वाली नुकीली लकड़ी और खोदकर निकाले गये दो कंद भूमि पर पड़े हुए थे। वहीं वह पते का दोना भी गिरा पड़ा था जिसमें देवी ने कुछ जंगली बेरियाँ और कलिकाएं एकत्र की थीं। इससे उन्होंने अनुमान लगाया कि संभवतः शत्रु उनका अपहरण

करने में सफल हो गये हैं।

रुद्रदेव के निकट जाकर उन्होंने गुहार की-

"रुद्रदेव की जय हो.... जय हो कैलाशनाथ!"

उस समवेत स्वर ने रुद्रदेव की समाधि की अवस्था तोड़ दी। उग्र भाव से उठ पड़े वह -

"क्या बात है?"

वे गरजे।

"अपराध क्षमा करें प्रभु! विपत्ति आ गयी है।"

"विपत्ति? कैसी विपत्ति?

"संभवतः शत्रु देवी का अपहरण करने में सफल हो गया। देवी कहीं भी पर्वत क्षेत्र में नहीं हैं। हमने उन्हें भली-भांति ढूँढ़ लिया है।"

"क्या? क्या कह रहे हो तुम लोग?"

"यह सत्य है प्रभु! दैत्यों ने उधर झारने की ओर से आक्रमण किया था। हम उन्हें घेर कर मारने का प्रयास करते हुए युद्ध करते-करते यहाँ से कुछ दूर हो गये। उन्हें पराजित करके धराशायी करने के बाद लौटने पर देवी नहीं दिखाई दीं। वे यहाँ कहीं नहीं हैं। प्रभु! जहाँ वे कंद आदि एकत्र कर रही थीं वहाँ उनके प्रयोग की वस्तुएं पड़ी हुई हैं। संभवतः कंद खोदते समय ही शत्रु ने उनका हरण कर लिया।"

एक योद्धा बोला।

"किसने किया ऐसा दुस्साहस?

रुद्रदेव ने अपने क्रोध से रक्ताभ नेत्रों को घुमाते हुए पूछा -

"अकारण मेरी पत्नी का अपहरण? रुद्रदेव की पत्नी का अपहरण? ऐसा करने वाला क्या रुद्र के कोप से अनभिज्ञ है?"

"प्रभु! इस अपराध के पीछे दैत्यराज जलंधर का हाथ है।"

"क्या जलंधर? वह ऐसा क्यों करेगा?"

"कारण तो नहीं ज्ञात है प्रभु! किन्तु युद्ध के समय वे सैनिक दैत्यराज जलंधर की जय जयकार कर रहे थे। उनके सेनापति ने अपना

रुद्रायन – 2

परिचय दैत्यराज जलधर के सेनापति के रूप में दिया था। निश्चय ही यह उसी का कार्य है।"

"दैत्यराज जलधर को इस धृष्टता का परिणाम भुगतना होगा।"

क्रोध में भर कर रुद्रदेव पांव पटक कर बोले।

उसी समय रुद्रदेव ने अपने सैनिकों के साथ कैलाशपुरी को प्रस्थान किया। वहाँ पहुंच कर उन्हें संपूर्ण सैन्य शक्ति के साथ भीषण आक्रमण करके दैत्यराज के बंधन से पार्वती को मुक्त कराना था।

०००००००००

नारद से दैत्यराज जलधर द्वारा पार्वती के अपहरण का प्रयास किए जाने का समाचार सुन कर देवगुरु बृहस्पति ने देवराज इंद्र तथा प्रमुख देवगणों को एकत्र करके मंत्रणा की। देवी पार्वती के अपहरण का प्रयास करके जलधर ने धधकती हुई अग्नि को छेड़ दिया था। रुद्रदेव का कोप तो जगत विख्यात था। उनकी क्रोधांधता को वे पूर्व में ही देख चुके थे जब प्रजापति दक्ष की यज्ञभूमि में उनकी प्रथम पत्नी सती ने हवन कुण्ड में कूद कर अपने प्राण त्याग दिये थे। उस समय क्रोधित होकर रुद्रदेव ने अपने सैन्य प्रमुख वीरभद्र को अपनी सेना के साथ भेज कर दक्ष की यज्ञ भूमि का विध्वंस करा दिया था तथा प्रमुखों सहित प्रजापति दक्ष के प्राणों को संकट में डाल दिया था। उस समय उनकी सेना का सामना करने का साहस किसी में नहीं था।

देवी पार्वती का अपहरण करने का प्रयास करके जलधर ने उनकी उसी क्रोध की अग्नि को प्रदीप कर दिया था। ऐसे समय रुद्र देव की कृपा प्राप्त करके उनके द्वारा दैत्यराज जलधर का विनाश करवा कर देवराज पुनः स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित हो सकते थे। देवगुरु बृहस्पति ने इस स्वर्णावसर का लाभ उठाने के लिये देवराज को प्रेरित किया।

"देवराज ! इस अवसर को गंवाने की मूर्खता मत कीजिए। रुद्रदेव का सहयोग कीजिए। अपनी देवसेना के साथ उनकी सेना से मिल कर दैत्यराज जलधर को पराजित कर दीजिए तभी आप देव-लोक पर पुनः अधिकार कर सकेंगे।"

"परंतु देव-गण तो बिखरे हुए हैं।"

इंद्र ने कहा।

"उन्हें एकत्र करने के लिए मैंने वरुण देव तथा पवन देव को भेज दिया है। शीघ्र ही वे सभी देवों को यहां एकत्र होने का आदेश दे देंगे। आप तो अब रुद्रदेव से मिलने के लिए उनकी कैलाशपुरी चलिए। उनसे सहायता मांगिये। उनके अप्रतिम योद्धा ज्येष्ठ पुत्र कुमार कार्तिकेय को देवों की सेना का सेनापति नियुक्त कर दीजिए। और रुद्रदेव के सहयोग से देवी पार्वती को मुक्त कराइए। दैत्यराज जलधर की पराजय अथवा मृत्यु

रुद्रायन – 2

दोनों ही स्थिति में आपको देवलोक पुनः वापस मिल जाएगा और कुमार कार्तिकेय के रूप में एक कुशल सेनापति भी मिल जाएगा। इस प्रकार आपको सदैव के लिए रुद्र देव का अनुग्रह प्राप्त हो जाएगा।"

देवगुरु बृहस्पति का कथन समीचीन था अतः देवराज ने तत्काल उसे स्वीकार कर लिया।

जब वे कैलाशपुरी पहुंचे तब तक रुद्रदेव गन्धमादन पर्वत से वापस आ चुके थे। उनकी उद्विग्नता, उनके साथ माँ पार्वती के न आने से तथा सैनिकों के उदास मुख ने उनके पुत्रों तथा मंत्रियों को आशंका से भर दिया। दैत्यराज जलंधर द्वारा छल पूर्वक माता पार्वती का अपहरण करने का समाचार पाकर उनके क्रोध की सीमा न रही। जोर शोर से युद्ध की तैयारियाँ होने लगी थीं। ऐसे समय में देवराज ने देवगुरु के साथ रुद्रदेव की सभा में पहुंच कर उन्हें प्रणाम किया।

"प्रणाम प्रभु!"

"आयुष्मान भव। प्रणाम देवगुरु! पधारियो।"

रुद्रदेव ने उनका स्वागत करते हुए कहा।

उस समय रुद्रदेव की सभा में उनके दोनों पुत्र कार्तिकेय, विनायक तथा उनके प्रमुख मंत्री और गण-प्रधान उपस्थित थे। सभी मिल कर जलंधर द्वारा उत्पन्न की गयी समस्या पर विचार कर रहे थे। देवगुरु बृहस्पति और देवराज के आ जाने से उसमें व्यवधान पड़ा।

"आप कुशल से तो हैं? कैसे आना हुआ आपका? इस समय हम एक गम्भीर समस्या पर विचार कर रहे हैं। आप चाहें तो आज विश्राम करें।"

"नहीं-नहीं रुद्रदेव! आप निश्चिंत रहें। हमें आपकी समस्या का कुछ कुछ अनुमान है। उसी संदर्भ में हम यहां आये हैं।"

देवगुरु बोलो।

"आपको हमारी समस्या के संबंध में ज्ञात है?"

"हाँ प्रभु! हमें ज्ञात हुआ है कि दैत्यराज जलंधर ने देवी पार्वती के अपहरण की कुचेष्टा की है।"

इंद्र ने कहा।

"चेष्टा? चेष्टा नहीं देवराज! जलंधर ने माता का अपहरण कर लिया है!"

विनायक बोल पड़ा।

"क्या?"

वे चकित हुए।

"हाँ देवराज! एक बार उन्होंने देवी के अपहरण की चेष्टा की थी जिसे हमारे सैन्य रक्षकों ने असफल कर दिया किंतु दोबारा वह अधिक सैन्य बल के साथ आया और हमें युद्ध में उलझा कर छलपूर्वक देवी का अपहरण कर लिया!"

दुखी होकर रक्षक टुकड़ी के नायक ने कहा।

"प्रभु! हम तो यहाँ यह निवेदन करने आए थे कि हमारी देव सेना का सेनापतित्व कुमार कार्तिकेय संभालें। हम स्वयं दैत्यराज जलंधर से युद्ध करने की इच्छा से ही यहाँ आये थे। यदि आप स्वीकार करें तो मैं कुमार कार्तिकेय को देवों की सेना के सेना-नायक पद पर अभिषिक्त करना चाहता हूँ।"

इंद्र ने कहा।

"कुमार!"

रुद्रदेव ने साभिप्राय कुमार कार्तिकेय की ओर देखा।

"पिताश्री! यदि यह युद्ध दैत्यों के शासक जलंधर के विरुद्ध होना है तो मैं इसके लिए तैयार हूँ। मैं उस चोर को अवश्य दंड देना चाहता हूँ जिसने माता का अपहरण किया है। उसने इस प्रकार उनका ही नहीं इस संपूर्ण नारी जाति का अपमान करने की धृष्टता की है। मैं यद्यपि अभी बालक हूँ, अनुभवहीन हूँ तथापि माता को मुक्त कराने के लिए प्राणों की बाजी लगाने के लिए भी तत्पर हूँ।"

कार्तिकेय आवेश में भरकर बोल उठे।

"मैं तुम्हारी इच्छा का सम्मान करता हूँ पुत्र! संपूर्ण रुद्र सेना भी देवसेना के साथ मिल कर तुम्हारे नेतृत्व में युद्ध करेगी परंतु पुत्र! एक बात का

रुद्रायन – 2

ध्यान रखना।"

रुद्रदेव का स्वर गम्भीर हो उठा।

"आदेश कीजिए पिताश्री!"

कार्तिकेय ने सिर झुकाया।

"यही कि तुम्हारा लक्ष्य दैत्य सेना होगी जलंधर नहीं।"

"क्यों पिताश्री?"

"क्योंकि वह मेरा शत्रु है। मेरी पत्नी का अपहरण करके उसने मुझे ललकारा है। मेरे सम्मान को आहत किया है। मैं उसे स्वयं अपने हाथों से दण्ड दूँगा।"

"जो आज्ञा पिता श्री!"

कार्तिकेय ने सिर झुका कर स्वीकार किया।

देवगुरु बृहस्पति ने साथ लाये रोली चंदन से कुमार कार्तिकेय को देवगण की सेना का सेनापति बनाते हुए तिलक किया।

"देव सेनापति कुमार कार्तिकेय की जय।"

इंद्र ने हाथ उठा कर घोषणा की। समस्त सभा सेनापति कार्तिकेय की जय-जयकार से गूंज उठी।

"मेरे लिये क्या आदेश है पिताश्री?"

विनायक ने अपनी लम्बी नाक को सहलाते हुए पूछा।

"तुम्हारा कार्य अधिक महत्वपूर्ण है पुत्र! मैं चाहता हूँ कि तुम पूर्ण निष्ठा से इसका निर्वाह करो।"

रुद्रदेव बोले।

"मैं आपको निराश नहीं करूँगा पिताश्री!"

विनायक ने उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा। देवगुरु तथा कार्तिकेय को वहाँ से भेज कर रुद्रदेव बोले -

"तो सुनो पुत्र! दैत्यों से युद्ध करने के लिए अधिकांश रुद्र सेना तथा देव सेना कुमार कार्तिकेय के नेतृत्व में युद्धभूमि में युद्ध करेगी और मैं भी यहाँ की व्यवस्था करने के पश्चात युद्ध भूमि में प्रस्थान करूँगा तथा तुम्हारी माता को लेकर ही वापस लौटूँगा। इस अवधि में हमारी

अनुपस्थिति में रुद्रगणों की सहायता से तुम्हें कैलाशपुरी तथा संपूर्ण पर्वतीय क्षेत्र की सुरक्षा करनी होगी। मैं तुम्हें यहाँ गणों का नायक नियुक्त करता हूँ।"

रुद्रदेव ने विनायक के मस्तक पर तिलक लगाया।

'गणनायक विनायक की जय!

गणेश की जय!'

उद्घोष से एक बार फिर रुद्र सभा गूँज उठी।

विनायक कैलाशपुरी गणराज्य की व्यवस्था में जुट गये और देवराज इंद्र तथा देव गुरु बृहस्पति कार्तिकेय को साथ लेकर उस स्थान की ओर चल पड़े जहाँ देवों की सेना एकत्र हो रही थी। रुद्रदेव ने समस्त स्त्री सेना तथा कुछ चुने हुए गणों को विनायक की अध्यक्षता में छोड़ दिया।

शेष रुद्र सेना को तैयार होकर देव सेना के साथ मिल कर दैत्यों से युद्ध करने के लिए गंगा के समतल मैदान में एकत्र होने का आदेश दे दिया गया। अलकनंदा के प्रवाह के निकट एक चौरस स्थान था। उसी के निकट घाटी में दैत्यों की राजधानी थी। पहले पहुंच कर रुद्रगणों तथा देवों ने पर्वत की चोटियों पर मोर्चा लगा लिया। इस प्रकार ऊंचाई से वे नीचे घाटी में स्थित दैत्य सेना को अधिकाधिक हानि पहुंचा सकते थे।

कार्तिकेय ने अपनी सेना को गरुड़ व्यूह के आकार में स्थापित किया। गरुड़ के मुख के क्षेत्र में स्वयं कार्तिकेय थे। दोनों पंखों के सिरों पर अग्नि देव तथा वरुण देव अपने चुने हुए योद्धाओं के साथ विराजमान हुए। व्यूह के मध्य भाग में देवराज इंद्र अपने रथ पर आसीन थे।

दैत्यों की सेना दैत्यराज जलांधर के श्वसुर कालनेमि के सेनापतित्व में युद्ध करने वाली थी। उसने नाग व्यूह की रचना की थी। नागों की बाँबी के आकार में दैत्यसेना व्यवस्थित थी। उसकी पूँछ की ओर गज सेना तथा नाग के फन भाग में स्वयं कालनेमि अपने विकट योद्धाओं के साथ युद्ध करने के लिये तत्पर था। उसकी दाहिनी ओर राक्षसों तथा बार्यों ओर

रुद्रायन – 2

असुरों का दल था। पीछे दैत्यों की टुकड़ी अपने भीषण अस्त्रों के साथ सन्नद्ध थी।

नीचे घाटी में स्थित होने के कारण वे यद्यपि असुरक्षित थे किंतु उनकी संख्या देवगणों तथा रुद्र गणों की अपेक्षा चार गुनी अधिक थी। उन्हें विश्वास था कि मुझी भर देवगण जिन्हें पूर्व में ही उनके स्वामी जलांधर ने पराजित कर दिया है किसी भी प्रकार विजयी नहीं हो सकते। रुद्र सेना से वे कुछ आशंकित अवश्य थे परंतु जलांधर की अजेयता पर उन्हें पूर्ण विश्वास था। दैत्य सेना अत्यधिक उत्साहित थी।

दैत्य सेना की संख्या देख कर कार्तिकेय ने अपनी सेना को सुव्यवस्थित किया और पर्वत शिखरों पर दूर तक फैला दिया। पर्याप्त अस्त्र-शस्त्र के साथ ही उन्हें सुरक्षित पर्वत चोटियाँ भी उपलब्ध थीं। घने वृक्षों के झुंड तथा पर्वत पर बिखरी शिलाएँ उसके सैनिकों के लिए आड़ का कार्य कर रही थीं। देव गणों को अपना देवलोक प्राप्त करना था तथा रुद्र गणों को अपनी प्रिय रानी पार्वती को मुक्त कराना था। दोनों ही सेनाएँ संपूर्ण क्षमता तथा शक्ति से युद्ध के लिए तैयार थीं।

कार्तिकेय के शंखनाद के साथ ही युद्ध प्रारंभ हो गया। दोनों सेनाएँ एक दूसरी पर भयंकर बाण वर्षा करने लगीं। देवों की सेना से दैत्य सेना आहत होने लगी। अधिक संख्या होने के कारण उन पर लक्ष्य संधान की आवश्यकता ही नहीं थी। बिना लक्ष्य संधान के फेंके जाने वाले तीर भी किसी न किसी को घायल करते या मार देते थे जबकि दैत्यों के फेंके हुए तीर अधिकांश वृक्षों तथा चट्ठानों से टकरा कर व्यर्थ हो रहे थे। कार्तिकेय ने अपने सैनिकों को पूर्व में ही समझा दिया था कि उनकी संख्या कम होने के कारण उन्हें दैत्यों को मारने के साथ ही अपनी सुरक्षा का भी ध्यान रखना आवश्यक है। दिन भर भयंकर युद्ध होता रहा।

सूर्य के अस्त होने के साथ ही युद्ध विराम हुआ घायलों की सुध ली गयी। उनका उपचार किया गया तथा मृतकों का दाह संस्कार कर दिया गया। प्रथम दिवस दैत्य सेना की अधिक हानि हुई।

दूसरे दिवस

युद्ध-भूमि में स्वयं जलंधर ने भाग लिया। उस समय उसकी सेना में उन वीरों को भी उपस्थित देख कर देवसेना चकित रह गई जिन्हें पिछले दिन अत्यधिक आहत कर दिया गया था। दैत्य सेना को पुनः पूर्ववत् सशक्त तथा उत्साहित देख कर कार्तिकेय की सेना में निराशा फैल गई। "इस प्रकार इनके घायल सैनिक इन्हें अल्प काल में ही पूर्ण सशक्त और ब्रण-हीन होकर युद्ध भूमि में आते रहेंगे तो हम उन पर कैसे विजय प्राप्त कर सकेंगे?"

पवन देव ने दुखी होकर कार्तिकेय से कहा।

"आप अपने किसी गुप्तचर को भेजकर इसका रहस्य ज्ञात कीजिए। अभी इससे निराश होकर बैठने का समय नहीं है। युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाइए।"

कार्तिकेय के कहने पर उसी समय पवन देव ने अपने विश्वस्त गुप्तचर को इसका भेद जानने के लिए भेज दिया। कुछ ही क्षणों के पश्चात् युद्ध आरंभ हो गया तथा देवसेना संपूर्ण शक्ति से युद्ध करने लगी।

संध्या होने तक गुप्तचर सूचना ले आया। उसने बताया -

"दैत्यगुरु शुक्राचार्य ने सैन्य शिविर से कुछ दूर एक औषधि कुंड बनवा रखा है जिसमें चमत्कारिक औषधीय रसायन भरा हुआ है। उस रसायन का लेप करने से ब्रण भर जाते हैं तथा शरीर की समस्त पीड़ा नष्ट हो जाती है। उस रसायन की कुछ मात्रा पी लेने से शरीर पूर्ण स्वस्थ तथा सबल हो जाता है। उसी के कारण दैत्यों की सेना पुनः जीवन प्राप्त कर रही है। केवल मृत शरीर पर ही रसायन प्रभाव नहीं डाल पाता।"

कार्तिकेय ने इसका उपाय ढूँढने का प्रयत्न किया।

उसी समय वह गुप्तचर उन्हें युद्ध-रत्त छोड़ कर कुमार कार्तिकेय के आदेश से कैलाशपुरी प्रस्थान कर गया। वहाँ जाकर उसने समस्त समाचार रुद्रदेव को बताया। उस समय उनके निकट नंदीश्वर तथा विनायक उपस्थित थे। क्षण भर सोच कर रुद्रदेव ने विनायक की ओर देखा -

"क्या कहते हो विनायक?"

रुद्रायन – 2

"पिताश्री! एक बात सोच रहा हूँ"

"क्या?"

"चर श्रेष्ठ! पहले आप यह बताइए कि वह औषधीय कुंड कितना बड़ा है और उसमें लगभग कितनी औषधि होगी?"

विनायक ने पूछा।

"वह कुंड इतना बड़ा है कि उसमें दस गायें एक साथ जल पी सकती हैं!"

चर ने बताया।

"उचित कहा चरश्रेष्ठ! अब आप प्रस्थान करें तथा प्रतिदिन हमें वहाँ के समाचार भेजते रहें। भाई से कहें कि वे निश्चिंत रहें। उनकी समस्या अब समाप्त समझें।"

"जैसी आज्ञा प्रभु!"

गुप्तचर प्रणाम करके चला गया।

अब बताओ पुत्र! क्या सोचा है तुमने?"

रुद्रदेव ने विनायक के प्रसन्न तथा निश्चिंत मुख को देखकर पूछा।

"कुछ विशेष सोचना ही नहीं है पिताश्री! चर ने स्वयं ही समाधान बता दिया है। पितृव्य नंदीश्वर! आप गोशाला के श्रेष्ठ पशु धन को आज रात्रि में ही लेकर उस कुंड की ओर प्रस्थान करें। रात्रि आधी से अधिक व्यतीत हो जाए तो उन को कुंड का रसायन पिला दें। इससे उनका कुंड खाली भी हो जाएगा और हमारा पशुधन भी विशिष्ट तेजोमय और सबल हो जाएगा। उनकी नस्त ही सुधर जाएगी।"

विनायक मुस्कुरा कर बोला। उसकी बात सुन कर रुद्रदेव तथा नंदीश्वर की मुस्कुरा पड़े।

प्रहर रात गये नंदीश्वर विशिष्ट पालकों के साथ अपने गोधन को लेकर अभीष्ट दिशा में प्रस्थान कर गये। तीन दिनों के भयंकर युद्ध में देवसेना का मनोबल टूटने लगा। दैत्यराज जलंधर का पराक्रम असीम था और उससे भी अधिक प्रभावोत्पादक थी शुक्राचार्य की अनुपम औषधीय उपलब्धि।

तीसरे दिन युद्ध के पश्चात जब घायलों की चिकित्सा के लिए वे औषधीय कुंड तक पहुंचे तो वह रिक्तप्राय हो चुका था। शुक्राचार्य बहुत अधीर हुए। उसके अभाव में घायल दैत्यों की चमत्कारिक चिकित्सा संभव नहीं थी और उस रसायन का इतनी शीघ्र निर्माण भी असंभव था।

खोजबीन करने पर ज्ञात हुआ कि गायों और बैलों का एक विशाल दल न जाने कैसे उस कुंड तक पहुंच गया था और जब तक उन्हें वहाँ से हटाया जाता वे संपूर्ण रसायन पीकर स्वयं ही कैलाशपुरी की दिशा में निकल गये थे। शुक्राचार्य ने माथा पीट लिया किंतु जलंधर इससे भी निराश नहीं हुआ। उसे अपनी भुजाओं के बल पर विश्वास था और भरोसा था अपने दैत्य सैनिकों की अपराजेय शक्ति पर। चौथे दिन उसने युद्धभूमि में तबाही मचा दी।

प्रतिदिन के युद्ध के समाचार नियमित रूप से विनायक को प्राप्त हो रहे थे।

तीसरे दिन के युद्ध के पश्चात स्वयं रुद्रदेव भी युद्ध में सम्मिलित हो गये। दैत्यराज जलंधर की तथा उसकी विशाल सेना और नवीनतम आयुधों की शक्ति उसे अजेय बना रही थी। विनायक अपनी माता के लिए व्याकुल थे। युद्ध में विजय पाने का एकमात्र लक्ष्य उनकी दृष्टि में था जिसका पुरस्कार देवी पार्वती की मुक्ति। विजय श्री की असंदिग्ध प्राप्ति के लिए वे अपने स्तर से भी प्रयत्न करना चाहते थे। दैत्यगुरु शुक्राचार्य का चमत्कारिक रसायन कुंड समाप्त करके उन्होंने अपनी मेधा का प्रयोग करते हुए दैत्यों की शक्ति संयमित कर दी थी। वे नंदीश्वर को कैलाशपुरी का दायित्व सौंप कर तीव्र गति से कुमार कार्तिकेय के द्रुतगामी अश्व पर चढ़ कर विष्णुलोक जा पहुंचे।

उसे देख कर विष्णु देव चकित हुए।

"क्या बात है विनायक? कुशल तो है न?"

विष्णु देव ने पूछा।

"कुशल ही तो नहीं है मामाश्री!"

विनायक ने उदास स्वर में कहा।

रुद्रायन – 2

"क्यों? क्या हो गया?"

"आप तो यहां बैकूंठ लोक में सुख पूर्वक निवास कर रहे हैं। प्रतीत होता है कि आप कैलाशपुरी के निकट होने वाले देवासुर-संग्राम से अनभिज्ञ हैं।"

"देवासुर-संग्राम?"

"हाँ मामाश्री! आपके संबंधी सागर देव के पालित पुत्र जलंधर के विरुद्ध देवगणों तथा रुद्रगणों का भयंकर संग्राम हो रहा है।"

विनायक ने बताया।

"ऐसा क्या कर दिया जालंधर ने? वह तो नीति पूर्वक शासन करता है। उसकी प्रजा सब प्रकार से सुखी है। स्वर्ग लोक पर अधिकार करने के पश्चात भी उसने कभी देव-लोक की प्रजा को, दैत्यों तथा असुरों को किसी प्रकार का कष्ट नहीं दिया।"

विष्णु देव ने कहा।

"सत्य कह रहे हैं मामाश्री! इसीसे तो पिताश्री की भी उस पर अनुकंपा थी परंतु उसने जो नीति विरुद्ध अन्यायपूर्ण आचरण किया है उससे तो संपूर्ण मानव जाति और असुर जाति के राजाओं का सिर लज्जा से झुक गया है। जलंधर को फिर भी अपने कृत्य का न दुख है, न कोई पश्चाताप।"

"किंतु उसने किया क्या है?"

विष्णु देव ने पूछा।

"माता पार्वती का अपहरण।"

"क्या?"

चौंक पड़े विष्णुदेव।

"मामाश्री! कुछ दिन पूर्व पिताश्री माताश्री के साथ गंधमादन पर्वत पर रह कर मेरे इस विचित्र रोग के लिए औषधि का संधान कर रहे थे। तब छल पूर्वक जलंधर ने माता का अपहरण कर लिया।"

"ओह, इतना निकृष्ट कर्म किया उसने? मैं तुम्हारी क्या सहायता करूँ पुत्र?"

"पिताश्री और भाई कार्तिकेय रुद्र सेना तथा देव सेना के साथ दैत्यराज जलधर से युद्ध कर रहे हैं और विजयी भी अवश्य होंगे क्योंकि सत्य और न्याय कभी पराजित नहीं होते। किंतु"

"किंतु क्या विनायक?"

"किंतु मैं चाहता हूँ कि जिस प्रकार उसने हमारे साथ छल किया है उसका उसे दंड अवश्य मिले। उसने माता का अपहरण करके उन्हें पिताश्री से दूर कर दिया है जिससे वे विरह-विदाध हो रहे हैं। मैं चाहता हूँ कि जलधर को भी पिताश्री की पीड़ा का अनुभव हो। वह भी उसी विरहाग्नि में जले जिसमें उसने पिताश्री को डाल दिया है।"

कहते कहते क्रोध से विनायक के नेत्र आरक्ष हो आये।

"जलधर ने अकारण हमसे वैर लिया है। देवों तथा दैत्यों से तटस्थ रहने वाले रुद्रदेव को क्रुद्ध किया है। एक निर्दोष स्त्री का अपमान किया है। क्या आप इसके लिए उसे दण्ड नहीं देंगे? मामाश्री! माता तो आपको अपना धर्म-भाई मानती हैं। अपनी बहन के सम्मान को अप्रतिष्ठित करने वाले दुराचारी को क्या आप दंड नहीं देंगे?"

विनायक के प्रश्न ने विष्णु देव को उद्विग्न कर दिया।

"अवश्य पुत्र! तुम निश्चिंत होकर कैलाशपुरी जाओ। मैं जलधर को उसके इस कृत्य के लिए कभी क्षमा नहीं करूँगा। उसे इसका दंड अवश्य दिया जाएगा।"

विनायक को अनेक प्रकार के आश्वासन देकर विष्णुदेव ने उन्हें विदा कर दिया।

जलधर के कृत्य ने उन्हें क्षुब्ध कर दिया था। इसका प्रतिकार किया जाना अनिवार्य था। उन्हें ज्ञात था कि जलधर अपनी पत्नी वृद्दा से अत्यधिक प्रेम करता है। सत्य तो यह है कि वृद्दा के बिना उसे अपना जीवन व्यर्थ प्रतीत होता है। कुछ देर के लिए भी वह उससे दूर नहीं रहना चाहता इसीलिए विवाह के उपरांत उसने वृद्दा को एक दिन के लिए भी

रुद्रायन – 2

अपनी माता के घर नहीं जाने दिया था। वृंदा जलंधर की पत्नी ही नहीं उसकी जीवनी शक्ति भी थी। ऐसा व्यक्ति किसी अन्य से उसकी पत्नी को दूर कैसे कर सका? उसका यह अपराध अक्षम्य है।

पर-स्त्री अपहरण जैसा निंदनीय कृत्य करने के बाद वह देव-लोक तो क्या दैत्यों का अधिपति होने योग्य भी नहीं रहा। सत्य तो यह है कि उसे जीने का अधिकार देकर इस प्रकार के गर्हित अपराध को प्रोत्साहित करना होगा। रुद्रदेव की क्रोधामि उसे भस्म कर दे यही उचित है किंतु इसके लिए आवश्यक है कि उसे भी उसी प्रकार की मनःस्थिति में पहुंचा दिया जाये जिसमें रुद्रदेव को उसने डाल दिया है।

रुद्र देव योगी हैं। उनकी योग साधना उनके विरह दग्ध हृदय को भी संयमित रख सकती है परंतु अन्य जन....। नहीं, जलंधर ने स्वयं ही अपने विनाश को आमंत्रित किया है।"

विष्णु देव को वह पुरानी घटना स्मरण हो आयी। पार्वती तब अविवाहिता थी।

एक दिन जब विष्णुदेव उनके पिता से मिलने गये थे तब असावधानीवश उनकी कलाई घायल हो गयी थी। उस समय पार्वती ने अपना आँचल फाड़ कर उनके हाथ पर पट्टी बांध दी थी।

"तुम्हारे इस उपकार का ऋण मैं कैसे चुकाऊंगा?"

उन्होंने पूछा था।

"मेरे विपदा में आप मेरा सहारा बन जाइएगा। आज से आप मेरे धर्म-भाई हुए।"

पार्वती ने सहजता से कहा था।

"यह संबंध अमर होगा उमा! मैं यह कभी नहीं भूलूँगा कि तुम मेरी धर्म-बहन हो। जब भी आवश्यकता पड़ी तुम्हारा यह भाई तुम्हारे साथ होगा।"

अपने उसी वचन का स्मरण हो आया विष्णु देव को।

उन की धर्म बहन के सम्मान को आहत करने वाला किसी भी प्रकार क्षमा का पात्र नहीं हो सकता। शाठ्यम समाचरेता। जैसे को

डॉ. रंजना वर्मा

तैसा। जो जैसा व्यवहार करे उसके प्रति वैसा ही व्यवहार करना उचित है।
मन ही मन अपने कर्तव्य का निर्धारण करके विष्णु देव छद्मवेष धारण कर
के रात्रि के अंधकार में विष्णु लोक से निकल गये।

००००

युद्ध-काल का सबसे अधिक दुखद प्रभाव युद्ध में रत योद्धा सैनिकों की पत्तियों पर पड़ता है। पति को युद्ध क्षेत्र में भेजने के उपरांत वे युद्ध की समाप्ति तक अधीर ही रहती हैं। अपने पति की जीवन रक्षा तथा उनके कल्याण के अतिरिक्त उनके पास कोई दूसरा कार्य नहीं होता। जागृत अवस्था हो या या स्वप्न की, प्रत्येक अवस्था में वे अपने पति के ही विषय में चिंतन करती रहती हैं।

उस समय दैत्यराज जलांधर की पत्नी वृद्धा की मनोदशा भी ऐसी ही थी। पति के बल तथा युद्ध कला के प्रति आश्वस्त होने पर भी उसका हृदय उनके दीर्घ जीवी होने की कामना किया करता था। युद्ध के विषय में उसे मात्र यही ज्ञात था कि देवगण पुनः संगठित हो गए हैं तथा रुद्रदेव की सहायता प्राप्त करके पुनः देवलोक पर अधिकार करने के लिए उन्होंने देत्यों को ललकारा है। जलांधर द्वारा देवी पार्वती का अपहरण किये जाने की घटना का उसे ज्ञान नहीं था। उसका पति कभी ऐसा गर्हित कर्म भी कर सकता है ऐसा तो वह स्वप्न में भी नहीं सोच सकती थी।

पति की मंगल कामना करती हुई उस दिन भी वह प्रातः अपने राजकीय उद्यान में जाकर सरोवर में स्नान कर के किनारे पर बैठी नेत्र बंद करके 'श्री नारायणाय नमः' मंत्र का जाप कर रही थी। उस ध्यानावस्था में उसने एक विचित्र दृश्य देखा। उसने देखा कि उसका पति दैत्यराज जलांधर निर्वस्तु होकर भैंसे पर बैठा हुआ है। उसके सिर से तेल बह रहा है और उसके गले में काले रंग के फूलों की मालाएं पड़ी हुई हैं। विभिन्न जीव-जंतुओं से घिरा हुआ वह दक्षिण दिशा की ओर जा रहा है। चारों ओर घोर अंधकार फैला हुआ है। हाथ को हाथ नहीं सूझता। उस अंधकार से घबरा कर वृद्धा ने आंखें खोल दीं। क्या था वह सब? स्वप्न या जागृत अवस्था में देखी हुई भवितव्यता?

पूर्व दिशा में लाल रंग का सूर्य उदित हो रहा था। उसके मध्य वृद्धा को एक बड़ा छिद्र दिखाई दिया। चारों ओर जैसे सूर्य के बिंब से बह बह कर रक्त फैलता जा रहा था। सूर्य की कांति फीकी पड़ गयी थी। क्या हो रहा है उसे? वह व्याकुल होकर उठ पड़ी। इधर-उधर टहल कर अपने मन

की व्याकुलता को कम करने का प्रयास करने लगी। कभी वह घबरा कर नेत्र बंद कर लेती परंतु खोलने पर फिर वही रक्त-चर्चित आकाश उसकी व्याकुलता को हजार गुनी कर देता। कभी भवन के भीतर, कभी छत पर तो कभी उद्यान में वृंदा भटकती रही किंतु उसे कहीं चैन नहीं मिला।

अपने व्याकुल हृदय को शांत करने के लिए वह पुनः उद्यान में आ गयी और एक ओर बढ़ चली। अचानक न जाने किस ओर से आकर दो भयंकर अयातों वाले सिंह उसका पीछा करने लगे। वह प्राण बचा कर भागने लगी। भागते भागते वह उद्यान के बाहर घने जंगलों में पहुंच गयी किंतु सिंहों ने उसका पीछा नहीं छोड़ा। थक कर वह पल भर के लिए रुकी और मुड़ कर पीछे देखा तो एक सिंह उस पर झापटने के लिए तैयार था।

वृंदा पुनः भागी और सामने से आते हुए तपस्वी से टकरा गयी। तपस्वी ने उसे सहारा देते हुए पूछा -

"इतनी घबराई हुई क्यों हो देवी? कहां भाग रही हो?"

"वह वह वह ... दो सिंह मेरे पीछे पड़े हैं। मेरी रक्षा कीजिए रक्षा कीजिए!"

बड़ी कठिनाई से वृंदा ने कहा। तपस्वी ने उसी क्षण अपने कमंडल से जल हाथ में लिया और मंत्र पढ़ कर पीछे आते सिंहों पर उछाल दिया। पलभर में ही दोनों सिंह अदृश्य हो गये।

वृंदा महर्षि से बहुत प्रभावित हुई। उसने हाथ जोड़ कर उन्हें प्रणाम किया तथा अपना उस दिन का अनुभव उन्हें सुना कर अपने पति का समाचार जानना चाहा। तपस्वी ने क्षण भर नेत्र बंद करके ध्यान लगाया फिर बोले -

"तुम्हारे प्रातःकाल से अब तक के अनुभव विपत्ति सूचक हैं। यह सब घटनाएं किसी महान विपत्ति की ओर संकेत कर रही हैं। यह आसन्न मृत्यु की सूचना दे रही हैं। तुम्हारे पति की मृत्यु रुद्रदेव के हाथों से होनी है और वह समय निकट आ गया है।"

"उनके प्राणों की रक्षा का क्या कोई उपाय नहीं है?"

रुद्रायन – 2

व्याकुल होकर वृंदा ने पूछा।

"नहीं आसन्न मृत्यु का मुख फेर देना असंभव है जो अवश्यंभावी है उसे कौन परिवर्तित कर सकता है?"

"परंतु महर्षि! स्त्री के लिए वैधव्य से बढ़ कर कोई दूसरी दुरवस्था नहीं होती। मैं सदा सौभाग्यवती रहना चाहती हूँ। आप मेरे पति के जीवन की रक्षा का कोई उपाय यदि जानते हैं तो उसे अवश्य बताएं अन्यथा मैं उनकी मृत्यु के पूर्व ही अपने प्राण त्याग दूँगी।"

वृंदा दृढ़ता पूर्वक बोली।

"मैं पर-स्त्री का अपहरण करने जैसा गर्हित कार्य करने वाले दैत्यराज जलांधर के जीवन की रक्षा का कोई उपाय कैसे बता सकता हूँ?"

"पर-स्त्री अपहरण?"

वृंदा चकित हुई।

"हां महारानी! तुम नहीं जानती कि तुम्हारे पति ने रुद्रदेव की पत्नी पार्वती का छल पूर्वक अपहरण करके संपूर्ण मानवता को कलंकित कर दिया है। उसके जीवन की रक्षा कौन कर सकता है? उसे रुद्रदेव के कोप से कोई नहीं बचा सकता।"

तपस्वी के स्वर में जुगुप्सा का भाव पाकर वृंदा दुख तथा ग्लानि से अचेत हो गयी। कुछ देर बाद जब वह संभली तब तक तपस्वी वहां से जा चुका था।

ओह इतना बड़ा छल? दैत्यराज अपनी पत्नी वृंदा को बहुत अधिक प्यार करते हैं यह तो लोकोक्ति ही बन गयी है किंतु उन्होंने अपनी उसी पत्नी से इतनी बड़ी बात छुपायी। कहते भी कैसे? ऐसे निंदित कर्म को कौन पुरुष अपनी पत्नी से बता सकता है? ऐसा अपवाद..... ऐसी धृणा ... ऐसी निंदा सुन कर वह कैसे जी पाएगी?

दुख के अतिरेक में वृंदा स्वयं को रोक न सकी और निकट स्थित बावड़ी में कूद कर उसने अपने प्राण त्याग दिये। उधर युद्ध भूमि में दैत्यराज जलांधर विकट पराक्रम दिखा रहा था। स्वयं रुद्रदेव उसके सम्मुख थे। उन्होंने दैत्यों को भयंकर हानि पहुँचाई थी। कालनेमि

कार्तिकेय के हाथों मारा गया था। इंद्र ने दैत्येन्द्र के प्रमुख सहयोगी घस्मर का वध कर दिया। दैत्यों की सेना में भगदड़ मच गई तब दैत्यराज जलंधर ने अपना रथ आगे बढ़ाया और भयंकर रूप से गर्जना करने लगा। उसके उत्साहित करने पर भागती हुई दैत्य सेना पुनः लौट आयी और युद्ध करने लगी। देव-गण तथा रुद्रगण भी दैत्यों पर टूट पड़े।

दैत्यराज जलंधर की भयंकर बाण वर्षा से चारों ओर अंधकार छा गया। उसने वरुणदेव, वीरक, वीरभद्र, इंद्र आदि को अनेक बाण मार कर घायल कर दिया। यह देख कर कुमार कार्तिकेय अत्यंत क्रोधित हुआ उसने दैत्यराज पर शक्ति से प्रहार किया। शक्ति लगने से जलंधर मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा।

कुछ ही क्षणों में चैतन्य होकर वह पूरी शक्ति से पुनः युद्ध करने लगा। उसने अपनी भयंकर गदा उठा ली तथा घुमा कर कार्तिकेय को मारी जिससे कार्तिकेय चेतना खो कर मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। यह देख कर वीरभद्र आगे आकर जलंधर से भिड़ गया। जलंधर ने उसको भी गदा के प्रहार से घायल कर दिया। उसका सिर फट गया। रक्त बहने लगा। सभी रुद्रगण भयभीत होकर भागने लगे। वे बारंबार रुद्रदेव को पुकारने लगे।

रुद्रगणों को भयभीत देख कर रुद्रदेव स्वयं आगे बढ़े। अपने स्वामी को आगे बढ़ता देख कर समस्त रुद्रगण उत्साहित होकर पुनः युद्ध भूमि में डट गये। उनके प्रबल पराक्रम के सामने दैत्यों की सेना तितर-बितर हो गयी। यह देख कर जलंधर क्रोध में भर कर रुद्रदेव की ओर झापटा। उसके भयंकर प्रहार को निष्फल कर के रुद्रदेव उसके ऊपर बाण वर्षा करने लगे। उन्होंने दैत्यसेना के कई व्यक्तियों को पशु तथा शूल से आहत कर भूलूँठित कर दिया।

जलंधर ने नागपाश नामक दिव्य अस्त्र से रुद्रदेव को बांधने का प्रयत्न किया किंतु रुद्रदेव के तीक्ष्ण बाणों ने पल भर में ही उसके नागपाश को काट दिया। उनके बाणों से जलंधर के रथ के घोड़े, सारथी आहत हो गये तथा रथ के शीर्ष पर लगी पताका कट कर गिर गयी। तब रुद्रदेव ने

रुद्रायन – 2

जलंधर को अपने बाणों से घायल कर दिया तथा उसका धनुष काट दिया। जलंधर ने हाथ का धनुष फेंक कर गदा उठा ली किंतु रुद्रदेव ने उसे भी काट दिया।

रुद्रदेव के प्रहार से आहत जलंधर को उसका सारथी दूसरे रथ में डाल कर युद्ध-भूमि से हटा ले गया। संध्या हो रही थी। जलंधर के चले जाने पर रुद्रदेव ने युद्धविराम की घोषणा सूचक शंख बजा दिया। उस दिन का युद्ध विराम हो गया।

सारथी जलंधर को सुरक्षित स्थान पर ले गया तथा उसके उपचार की व्यवस्था करने लगा। अचेत अवस्था में दैत्यराज बार-बार अपनी पत्नी वृंदा का नाम लेने लगा तब सारथी ने उसे दैत्य-गुरु के शिविर में पहुंचा दिया।

मुहूर्त भर बाद उसकी मूर्छा टूटी। उस समय शुक्राचार्य उसकी शैया के निकट खड़े हो कर उसे चिंता भरी दृष्टि से देख रहे थे।

दैत्यगुरु को सम्मुख देख कर जलंधर उठ खड़ा हुआ। प्रणाम करके उसने दैत्यगुरु से उनकी चिंता तथा गंभीरता का कारण पूछा।

शुक्राचार्य ने उसे उसी समय राजभवन जाने का आदेश दिया।

"परंतु क्यों गुरुदेव? मैं स्वस्थ हूँ। कल के युद्ध में मैं अवश्य देवों को पराजित कर दूँगा। कल का युद्ध निर्णायक होगा।"

जलंधर ने कहा।

"कल की बात कल करना राजन! आज अभी आप को राजभवन जाना चाहिए। महारानी वृंदा के निकट आप की अधिक आवश्यकता है।"

शुक्राचार्य बोले।

"क्या बात है गुरुदेव? वहां सब कुशल तो है न?"

जलंधर ने अधीर होकर पूछा।

"अब विलंब न करो पुत्र! शीघ्र प्रस्थान करो। मैं भी वहीं जा रहा हूँ।"

कह कर शुक्राचार्य शिविर से बाहर निकल गये। किसी भावी आशंका ने दैत्यराज जलांधर को व्यग्र कर दिया।

शिविर के बाहर दैत्यगुरु तीव्रगामी अश्व पर सवार उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे दूसरे अश्व पर सवार होकर उसने ऐड़ लगायी। दोनों घोड़े राजभवन की ओर सरपट दौड़ चले।

राज-भवन के निकट पहुंच कर शुक्राचार्य ने अपना घोड़ा बार्यी और के मार्ग पर डाल दिया।

"इधर इधर चलें दैत्यराज!

"उधर तो वन का मार्ग है। क्या हमें वन में जाना है?"

जलांधर ने पूछा।

"हाँ पुत्र! वन में कुछ अंदर जाने पर जो बावड़ी है वहीं जाना है।

शुक्राचार्य ने बताया। उसी समय एक दैत्य सेवक आता हुआ दिखायी दिया। निकट आने पर शुक्राचार्य ने अपने घोड़े की लगाम खींच ली।

"मिल गयी?"

"हाँ गुरुदेव!"

सेवक ने सिर झुका कर कहा और एक ओर हट कर खड़ा हो गया।

"यह यह सब क्या है गुरुदेव? क्या मिल गयी?"

जलांधर ने उलझ कर पूछा।

"धैर्य पूर्वक सुनो पुत्र! अपना हृदय कठोर कर लो। हम निकट आ गये हैं।"

"क्या कहना चाहते हैं आप?"

जलांधर ने उत्कंठित हो कर पूछा।

"समाचार तुम्हारी पत्नी वृंदा के विषय में है।"

"वृंदा के विषय में? क्या वह कहीं खो गयी थी?"

"हाँ पुत्र! खो ही गयी थी। प्रातः भ्रमण के लिये निकलने के बाद वह राज-भवन वापस नहीं लौटी। तभी से उसकी खोज में सेवक दौड़ा दिये गये थे।"

रुद्रायन – 2

शुक्राचार्य ने बताया। आगे कुछ सुनने की प्रतीक्षा किए बिना दैत्यराज ने घोड़ा दौड़ा दिया। कुछ ही क्षणों बाद वह बावड़ी के निकट था जहाँ भूमि पर पड़ी नारी देह तारों के धुंधले प्रकाश में आभासित हो रही थी।

"वृंदा sss!"

घोड़े से कूद कर वह निकट जा पहुंचा। वृन्दा की देह गोद में भर कर चीख पड़ा वह।

"वृंदा sss!"

शुक्राचार्य ने निकट खड़े सेवकों की ओर देखा।

"बहुत ढूँढने पर भी जब महारानी का कुछ पता नहीं चला तो हमने यहाँ ढूँढने का प्रयास किया। यहाँ बावड़ी के किनारे महारानी की पाजेब का धुंधरू तथा टूटी हुई मोतियों की माला मिली तो हमने बावड़ी में ढूँढना प्रारंभ किया। बहुत प्रयास के बाद अभी कुछ ही देर पूर्व इनकी देह मिली।"

एक सेवक ने बताया।

वृंदा की देह से लिपट कर बिलख उठा जलंधर।

"यह क्या हो गया गुरुदेव? मेरी वृंदा को क्या हो गया? आप इन्हें अपनी औषधि दीजिए। यह ठीक हो जाएगी।"

"मेरी औषधि का कुंड तो रुद्रदेव का गोकुल पी गया दैत्यराज!"

शुक्राचार्य ने वृंदा की मृत देह की परीक्षा करते हुए कहा।

"अब कुछ नहीं हो सकता। इन्हें देह छोड़ तो कई प्रहर बीत चुके हैं। संभवतः पूर्वाह्न में ही"

"ऐसा मत कहिए गुरुदेव! मेरी वृंदा मुझे छोड़ कर नहीं जा सकती। जब मैं जीवित हूँ तो वह कैसे मर सकती है?"

जलंधर ने वृंदा के शरीर को आलिंगन में लेते हुए कहा।

"नियति पर किसी का वश नहीं चलता। मृत्यु तो एक दिन आनी ही होती है। जब जिसका समय आ जाये उसे फिर कोई नहीं रोक सकता। देह तो नश्वर होती है। इसे छोड़ कर प्रत्येक जीव को जाना ही पड़ता है।"

शुक्राचार्य ने उसे सांत्वना देते हुए कहा।

"मैं तो सदैव नीति और धर्म पूर्वक अपना कर्तव्य पालन करता रहा हूँ। मैंने ऐसा कौन सा पाप कर्म कर दिया जिसके फलस्वरूप मुझे यह दारुण दंड मिला। हाय वृदा ... अभी तो हमारे सुख के दिन थे। ... अभी तो हमने यौवन का उपभोग भी नहीं किया था। ... अभी तो हम आगे के लिए संतानोत्पत्ति भी नहीं कर सके थे ..."

जलन्धर वृदा के मुख को बारंबार चूमते हुए पागलों की तरह विलाप कर रहा था।

"राजन! शांत हो जाइये और प्रकृति के दिये दंड को स्वीकार कीजिए।"

"दण्ड किसलिए?"

जलन्धर तमक उठा।

"संभवतः यह आपके द्वारा रुद्रदेव की पत्नी का अपहरण करने के महापाप का ही दंड है। आपने रुद्रदेव से उनकी पत्नी को अकारण ही अलग कर दिया इसी अपराध के फलस्वरूप आपकी पत्नी आप से अलग हो गयी। प्रकृति किसी को क्षमा नहीं करती। प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्म का फल भोगना ही पड़ता है।"

शुक्राचार्य ने दुखी स्वर में कहा।

"संभवतः आप सत्य ही कह रहे हैं गुरुदेव! आपने मुझे समझाया भी था। कहा था कि मैं उस सुंदरी को मुक्त कर दूँ किंतु मैंने अपने बल के अहंकार में आप की बात नहीं मानी। परन्तु मेरे कर्म का दंड वृदा को क्यों मिला? इस प्रकार उसे असमय ही मृत्यु ने अपना ग्रास बना लिया मैं अब जीवित रह कर क्या करूँगा गुरुदेव? जब वृदा ही नहीं रही तो मेरे जीवन का क्या प्रयोजन?"

"धैर्य धारण करिये दैत्यराज। आपको ऐसा अधैर्य शोभा नहीं देता। महारानी का अंतिम संस्कार कीजिये। उसके प्राणों को अपने मोह पाश से मुक्त करके उसके स्वर्गारोहण में सहायक बनिये। वह सती थी।"

रुद्रायन – 2

शुक्राचार्य तथा अन्य उपस्थित मंत्रियों के समझाने पर किसी प्रकार दैत्य राज जलंधर ने वृद्धा को चिता पर लिटा कर विधि पूर्वक उसका दाह संस्कार किया।

पत्नी के वियोग ने उसे झकझोर दिया था। मन पर छाई अहंकार की परत चटकने लगी थी। उसे अपने कृत्य पर पश्चाताप होने लगा। पत्नी के चितारोहण के पश्चात वह उस गिरि गह्वर में गया जहाँ देवी पार्वती को बंदी बना कर रखा गया था। उसी क्षण सेवकों को उसने सम्मान पूर्वक पार्वती को पुनः गंधमादन पर्वत के उसी स्थल पर पहुंचाने का आदेश दिया जहाँ से उसने उनका अपहरण किया था। पार्वती की मुक्ति की व्यवस्था करके वह स्वयं को शांत अनुभव करने लगा। उसका मन हल्का हो गया।

यह सब करते रात्रि व्यतीत हो गयी। प्रातः की किरणें अभी ठीक से फूटी भी नहीं थी कि वह अश्वारूढ़ होकर द्रुत गति से युद्ध भूमि की ओर चल पड़ा। अपनी सेना को एकत्र करके उसने उन्हें समझाया।

"सैनिकों!

आज हमें निर्णायक युद्ध लड़ना है। हम देव गणों तथा रुद्र गणों पर विजय प्राप्त करेंगे अथवा आज युद्ध भूमि में अपने प्राण दे देंगे। आप सभी आज यह शापथ लीजिए कि शरीर में एक भी श्वास शेष रहते युद्ध में पीठ दिखा कर युद्ध भूमि से पलायन नहीं करेंगे।"

जलंधर की ओजपूर्ण वाणी ने दैत्यों में नवीन उत्साह का संचार कर दिया। वे अपने शस्त्र उठा कर शापथ खाने लगे तथा 'दैत्य राज की जय' के नारे से आकाश को गुंजाने लगे।

उस दिन जलंधर ने अपनी सेना को ललकारा और युद्ध प्रारंभ हो गया। युद्ध के सारे नियम भूल कर वह शत्रु सेना पर टूट पड़ा। भयंकर मारकाट होने लगी।

रुद्रदेव ने दैत्य राज के उस भयंकर आक्रमण का सामना करने के लिए अपनी सेना को दो भागों में बांट दिया। एक भाग का नायक देवराज इंद्र को बना कर उसे रक्षा पंक्ति का संचालन सौंप दिया और दूसरे भाग के

दल का नायकत्व स्वयं स्वीकार करते हुए विभिन्न युद्धास्थों के साथ प्रति प्रहार करने लगे। रुद्र गणों के शौर्य के सामने दैत्य सेना दुर्बल पड़ने लगी किंतु दैत्य युद्ध भूमि में डटे रहे। वे भयभीत हो कर भागे नहीं और शत्रुओं का संहार करते स्वयं अपने प्राण गंवाने लगे। दोपहर तक भीषण युद्ध होता रहा। अनेक योद्धा मारे गये और अनगिनत घायल हुए।

जब रुद्रदेव के साथ आई सेना कुछ थकने लगी तभी इंद्रदेव ने अपनी टुकड़ी के साथ दैत्यों पर आक्रमण कर दिया। नवीन साथियों को पाकर रुद्रदेव की सेना दुग्ने उत्साह से युद्ध करने लगी।

उन्हें परस्पर युद्ध करता छोड़ कर रुद्रदेव दैत्यराज जलंधर की ओर बढ़ चले। उन्हें देखते ही जलंधर उन पर तीखे बाणों की वर्षा करने लगा जिन्हें रुद्रदेव ने अपने तीक्ष्ण बाणों से काट दिया। जलंधर के रथ के सारथी और घोड़ों को मार कर रुद्रदेव ने उसकी ध्वजा काट गिरायी। क्रुद्ध होकर जलंधर रुद्रदेव के सम्मुख आ गया। उसने रुद्रदेव पर अपनी तलवार से बार किया जिसे उन्होंने तिरछे झुक कर बचा लिया। पलट कर रुद्रदेव ने अपनी तलवार धुमा कर एक ही वार में दैत्यराज जलंधर का मस्तक धड़ से अलग कर दिया। उसके गिरते ही दैत्यों की सेना भाग खड़ी हुई। रुद्रगण उन्हें दौड़ा-दौड़ा कर मारने लगे। युद्धभूमि 'रुद्र देव की जय' के जयघोष से गूंज उठी।

प्रसन्नता के उस अवसर पर गुप्तचर ने आकर रुद्रदेव को देवी पार्वती के गंधमादन पर्वत पर मुक्त होकर पहुंचने की सूचना दी। देवों तथा रुद्रगणों के हर्ष का पारावार न रहा। दैत्यराज जलंधर के बध से सभी हर्षित हो गये। देवगणों ने रुद्रदेव को प्रणाम किया। देवराज इंद्र ने कहा -

"आज आपकी कृपा से हम पुनः सनाथ हो गये। अब हमें देवलोक जाने की आज्ञा प्रदान करें तथा भविष्य में भी हम पर कृपा बनाए रखें।"

"अवश्य देवराज! अब आप सब निश्चिंत होकर अपने लोक पर अधिकार कर लें तथा न्याय पूर्वक राज्य करें। आवश्यकता पड़ने पर हम आपके साथ होंगे। अब हम भी कैलाशपुरी की ओर प्रस्थान करना चाहते हैं। आप सभी पधारों।"

रुद्रायन – 2

रुद्रदेव ने देवगणों को विदा किया।

रुद्रगणों ने भी उन के निर्देशानुसार कैलाशपुरी की ओर प्रस्थान किया। स्वयं रुद्रदेव अपने विश्वस्त अनुचरों के साथ गंधमादन पर्वत की ओर बढ़ गये जहाँ पार्वती उनकी प्रतीक्षा कर रही थी।

००००

विजयी रुद्रदेव के कैलाश पुरी पहुंचने पर उनका भव्य स्वागत किया गया। वह अपने साथ गंधमादन पर्वत से देवी पार्वती को भी ले आये थे। माता पिता को इतने दिनों बाद एक साथ देख कर विनायक के आनंद का पारावार नहीं था। उल्लास उसके नेत्रों से छलका पड़ रहा था।

जब विनायक ने पिता के चरण छुए तो रुद्रदेव ने उसे सीने से लगा लिया। अपने नेत्रों को छलकने से वे रोक नहीं सके।

"पिताश्री!"

"मैं सब कुछ पाकर भी अपने पुत्र के कष्ट को दूर नहीं कर पाया पुत्र!"

"ऐसा क्यों कह रहे हैं पिताश्री! आपने तो मेरे कष्ट निवारण का पूर्ण प्रयास किया। यह क्या पर्याप्त नहीं है? और कैलाश में मैं अकेला ही तो नहीं हूँ जो इस विचित्र रोग से पीड़ित हो। उस लंबोदर को देखिए न। पूरे शरीर में उसका पेट ही इतना बड़ा हो गया है कि उसके अतिरिक्त अन्य अंग जैसे गौण होकर रह गये हैं। और वह अतिकाय जिसकी देह ताड़ सी लंबी हो गयी है। वह कृशोदर जिसका पेट पीठ से चिपक गया है और वह कृशकाय। इसके संपूर्ण शरीर में जैसे बस हड्डियां ही शेष रह गयी हैं। उसके कंकाल जैसे शरीर और मुख को देख कर तो सामान्य जन डर ही जाते हैं। पिताश्री! मेरी नाक लंबी हो गयी है किंतु मुझे इसका अब कोई दुख नहीं होता। इन रुद्र गणों को देख कर मैं अपनी विकृति भूल जाता हूँ परंतु मुझे विश्वास है कि शीघ्र ही आप तथा आपके औषधि ज्ञानी इस विचित्र रोग की औषधि अवश्य ढूँढ़ लेंगे। तब इस क्षेत्र में कोई भी विचित्र रूप धारी नहीं होगा। सभी देवगणों के समान स्वरूपवान और सुंदर होंगे।"

विनायक ने सहज भाव से उत्तर दिया।

"हाँ पुत्र! तुम्हारी वाणी सत्य होगी। मैं अवश्य ही इस विचित्र रोग की औषधि ढूँढ़ लूँगा और कैलाश क्षेत्र को कष्टमुक्त करूँगा।"

रुद्रदेव के स्वर में संकल्प की दृढ़ता थी।

एक ओर विजय का उल्लास और उसके साथ संपूर्ण परिवार का एक साथ होना। चारों ओर आनंद का उजास बिखर पड़ा। उस दिन प्रथम

रुद्रायन – 2

बार रुद्रदेव के हृदय में परिवार के प्रति प्रेम का प्रवाह फूट पड़ा था। अपने दोनों पुत्रों को बार-बार वह वक्ष से लगा कर जैसे विश्व की संपूर्ण निधि एकत्र कर रहे थे। पिता पुत्रों के उस अपूर्व मिलन को देख कर उमा विभोर हो गई। यही तो है वह सुख जिसकी कामना प्रत्येक स्त्री के हृदय में हर पल अंगड़ाइयां लेती रहती है।

जीवन में स्थिरता सी आयी तो विनायक और कार्तिकेय की केलि-क्रीड़ा से कैलाश का कोना कोना चहक उठा। कभी वे अपने-अपने अश्व लेकर ऊंची चोटियों की ओर निकल जाते तो कभी घने वन की कंदराओं और वीथियों में आखेट ढूँढ़ा करते। दोनों पुत्रों के साथ उनके मित्रों की टोलियाँ भी होती थीं जो अनायास ही पराक्रम प्रदर्शन किया करती थीं।

हिमालय की ऊंची चोटियों पर कई छोटे-छोटे कबीले निवास किया करते थे। इनमें से एक शिखर के पीछे वाली घाटी में स्थित था नाग कबीला जो अधिकतर कंदराओं तथा भूमिगत विवरों में निवास किया करता था। पर्वत की थोड़ी ऊंची छोटी के किनारे होते थे उनके गुहा द्वार। अंदर जाकर उनकी यह स्वनिर्मित गुफाएं बहुत चौड़ी तथा सुखदायक हो जाती थीं। वे उनके शिखरों पर भी धुमावदार छिद्र बनाते थे जिससे स्वच्छ वायु तथा हल्का प्रकाश अंदर आ सकता था किंतु बाहर से उनके घर सहज ही दृष्टि में नहीं आते थे। ऐसा प्रबंध उन्होंने शत्रुओं से सुरक्षित रहने के लिए कर रखा था। भूमिगत होने के कारण उनके गुहा-गृह गर्म होते थे। बाहर की ठंडी हवाओं तथा बर्फाली आँधियों से ये घर उनकी पूर्ण सुरक्षा करते थे।

उसी शिखर के थोड़ा और परे था मयूर कबीले का गढ़। कुल पैतालीस घरों की छोटी सी बस्ती। मयूर कबीले के लोग अत्यंत पराक्रमी तथा स्वतंत्र थे। उनकी खूंखार प्रकृति ही उनकी सुरक्षा करती थी। नाग कबीले से उनका पुराना वैर था। वस्तुतः मयूर कबीले तथा उनके सहयोगी गरुण कबीले के आक्रमणों से बचने के लिए ही नाग कबीले के लोग भूमिगत आवास में निवास करते थे। वर्षों पूर्व गरुण तथा मयूरों के आतंक से त्रस्त होकर नागों का राजा अपने सहयोगियों तथा परिवारों के सहित

रुद्रदेव की शरण में आ गया था। रुद्रदेव का संरक्षण प्राप्त करने के बाद नाग जाति उनसे घुलमिल कर निरापद स्थिति में आ गयी थी। गरुणों के राजा वैनतेय से विष्णुदेव की मित्रता थी तथा पार्वती के आग्रह पर विष्णु देव ने गरुणों को नाग जाति के संहार से विरत रहने के लिए मना लिया था। रुद्रदेव द्वारा नागों को अभय दिये जाने के पश्चात मयूरों ने भी उनसे तटस्थ रहना प्रारंभ कर दिया था। अब वे अपनी बस्ती के आसपास के वनों में ही आखेट करते थे और उन्हीं के द्वारा अपना निर्वाह करते थे।

उस दिन आखेट के लिए कुमार कार्तिकेय अपने तीन चार मित्रों के साथ अकेले ही निकल पड़े थे। विनायक उस दिन माता की सेवा में था। एक शूकर का पीछा करते हुए कार्तिकेय अपने मित्रों के साथ मयूरों के प्रदेश में पहुंच गया। शूकर तो कहीं उन घने जंगलों में खो ही गया। वे निराश होकर लौटने वाले थे कि तभी कार्तिकेय की दृष्टि दूर वृक्ष की ऊँची शाखा पर बैठे नन्हे से सुंदर पक्षी पर पड़ी।

"कितना सुंदर पक्षी है। उसे गिरा देता हूँ।"

कार्तिकेय ने कहा।

"इतना सुंदर पक्षी मार देंगे?"

एक मित्र ने पूछा।

"नहीं, मारूंगा नहीं। इस पतली सी सीक से उसके पंख का निशाना लगाऊंगा। वह नीचे आ गिरेगा।"

कार्तिकेय भूमि पर से एक पतली सूखी हुई लकड़ी उठा कर उससे निशाना लगाया। वह तीर छोड़ने ही वाला था कि अचानक एक युवक ने उनका हाथ पकड़ लिया।

"नहीं कुमार! मत मारिये उसे!"

वह बोला।

"तुम कौन हो और इस प्रकार हमारे आखेट में व्यवधान क्यों उत्पन्न कर रहे हो?"

रुद्रायन – 2

"मैं मयूरों का राजा मयूरेश हूँ। आखेट तो हम भी करते हैं कुमार! किंतु इस प्रकार निरीह पक्षियों को नहीं मारते। यह तो किसी का पेट भी नहीं भरते!"

मयूरेश ने कहा।

"मैं भी उसके प्राण नहीं लेना चाहता था। मैं तो उस सुंदर पक्षी को निकट से देखना चाहता था इसलिए उसके पंखों पर हल्का प्रहार करके उसे गिराना चाह रहा था।"

कार्तिकेय ने कहा।

"मैं नहीं चाहता कि इन निरीह पक्षियों को किसी प्रकार की चोट पहुंचाई जाये। यह सुंदर पक्षी तो वैसे भी समाप्त प्राय हो रहा है कुमार! हम पक्षियों को अत्यंत पवित्र तथा ईश्वर का दूत मानते हैं। हमारे कबीलों में इनका सत्कार करने की प्रथा है। हमारे कबीलों के नाम भी पक्षियों के नाम पर ही हैं। जैसे हमारा मयूर कबीला। कपोत, बायस, गरुण, शुक आदि कबीले भी हमारे संबंधियों के हैं।"

मयूरेश ने बताया। कार्तिकेय ने धनुष की प्रत्यंचा उतार दी।

"रोचक है तुम्हारी कथा!"

कार्तिकेय हँस का बोला।

"रोचक और सत्य भी है कुमार! इन पक्षियों को सबसे अधिक हानि नागों ने पहुंचाई है। वे इनके अंडों और बच्चों तथा इन पक्षियों को पकड़ कर खा जाते हैं। हमारी शत्रुता उनसे इसी कारण है। आपके पिता रुद्रदेव ने नागों को अभ्यदान देकर हमारी शत्रुता को विराम दिया है, परंतु अब भी अवसर पाते ही वे पक्षियों के अंडे खा जाते हैं। इससे ऐसे कितने ही पक्षी लुप्तप्राय हो रहे हैं। आप उनकी सुरक्षा के लिए कुछ कीजिए कुमार!"

मयूरेश ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की। कार्तिकेय ने उसे सीने से लगा लिया। "तुमने संपूर्ण पक्षी जाति की सुरक्षा की बात कह कर मुझे प्रसन्न कर दिया है। भाई, तुम आज से हमारे मित्र हुए। अब संपूर्ण हिमालय प्रदेश में पक्षियों का वध रोक दिया जाएगा।"

"आप धन्य हैं कुमार! आपकी माता ने भी इसी प्रकार कपोतों की रक्षा की थी।"

मयूरेश ने कहा।

"माता ने? वह प्रसंग हमें भी बताओ मित्र!"

कार्तिकेय ने उत्सुक होकर पूछा।

"लंबी कथा है। आप थक गये होंगे कुमार! हमारे कबीले में पथारिये। रुखा सूखा भोजन पाइये फिर शांति से बैठ कर वह प्रसंग सुनियेगा जिसने हमें आपका कृतज्ञ बना दिया है।"

मयूरेश का अनुरोध कार्तिकेय ने स्वीकार कर लिया।

उन्हें साथ लेकर मयूरेश टेढ़े तिरछे मार्गों से चल पड़ा। कितनी दूर वन में भटकने के बाद पथरीले मैदान से होकर जब वे उनकी बस्ती में पहुंचे, उस छोटे से राज्य का देख कर अभिभूत रह गये। पंक्तियों में बने उनके छोटे-छोटे आवास सतरंगी आभा बिखेर रहे थे। उन्हें इंद्रधनुष के रंगों में रँगा गया था। प्रत्येक आवास के मुख्य द्वार की आकृति मयूर पृच्छ के चंदोवे के समान थी। दूर से देख कर ऐसा प्रतीत होता था मानो एक विशाल मयूर नृत्य मुद्रा में अपने परों को फैलाये खड़ा हो।

दाहिनी ओर एक विशाल भवन दिखायी दे रहा था जिसमें आवश्यकता पड़ने पर पांच परिवार आराम से रह सकते थे।

मयूरेश के कहने पर उन्होंने वहीं एक ओर अपने अश्वों को बांध दिया। मयूरेश ने अपने सेवकों को अश्वों के सामने चारा डालने का आदेश दिया और स्वयं उन्हें साथ लेकर अपने भवन की ओर चल पड़ा।

भवन के निकट पहुंचने पर कबीले की स्त्रियों ने जल लाकर उनके उनके हाथ पाँव धुलवाए और अंदर ले जाकर एक ऊंचे चबूतरे पर आसन बिछा कर उन्हें बैठाया। कुछ ही देर में विभिन्न खाद्य पदार्थों से भरे दोने उनके सामने प्रस्तुत कर दिए गए। मधु मिश्रित शीतल जल ने उनकी सारी थकान दूर कर दी।

विश्राम करते हुए कुमार ने पुनः पूछा - "अब तो तुम्हारा आतिथ्य स्वीकार करके हम भोजन और विश्राम भी कर चुके हमें बड़ी उत्सुकता

हो रही है। माता ने कपोतों की रक्षा कैसे की थी?" "यह तो बहुत पुरानी बात है। मैंने भी अपने पिता से ही सुनी थी। हमारे आपके जन्म के पूर्व का प्रसंग है। पर्वतों पर विहार करना रुद्रदेव को अत्यंत प्रिय है यह तो आप जानते ही हैं। एक बार की बात है। रुद्रदेव अपनी नवविवाहिता पत्नी पार्वती को साथ लेकर वन विहार के लिये निकलते। कई दिनों तक वे गुफाओं, कंदराओं, वृक्षों के निकट शयन करते स्वच्छन्द धूमते फिरते रहे। एक दिन थक कर विश्राम की इच्छा से दोनों उस अगम्य पर्वत गुहा के निकट पहुंच गए जहां पहुंचना अत्यंत कठिन था। चारों ओर बर्फ के फाहे उड़ रहे थे। लगता था जैसे भयंकर तूफान आने वाला है। बरसात की पहली बूंद गिरते ही रुद्रदेव ने देवी पार्वती के साथ उस गुफा में छलांग लगा दी।

बाहर से अँधेरी दिखाई देने वाली वह गुफा अंदर से चौरस थी तथा थोड़ा आगे जाकर दो भागों में बट गई थी। गुफा के ऊपर एक छिद्र था जिससे प्रकाश की किरणें भीतर आ रही थीं। रुद्रदेव ने वहीं आसन लगाया। संयोग की बात, उन्हीं दिनों हमारे कपोत कबीले के राजा अपनी पत्नी सहित गरुड़-राज वैनतेय से मिलने के लिए आए हुए थे। मौसम बिगड़ता देख कर पूर्व में ही उन्होंने उस बीहड़ गुफा में आश्रय ले रखा था। वे दोनों गुफा के आंतरिक भाग में थे जो आगे दो भागों में विभक्त हो गया था। इसीलिए न तो रुद्रदेव उन्हें देख सके और न उन्हें ही रुद्रदेव के आगमन का ज्ञान हुआ।

बाहर बर्फीला तूफान चल रहा था। ऐसी स्थिति में कपोत दंपति के लिए वहां छिपे रहने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग न था। रुद्रदेव ने अपनी सशक्त भुजाओं से एक पत्थर की शिला को गुफा के मुख पर टिका दिया जिससे बाहर की ठंडी हवाओं से सुरक्षा मिल सके। वहां बिखरे पत्तों को समेट कर देवी पार्वती ने आसन बनाया और उसी पर दोनों शीत से बचने के लिए बैठ गये। कुछ देर पश्चात देवी पार्वती रुद्रदेव की गोद में सिर रख कर लेट गई। एकांत जान कर वे निश्चिंत थे। अब उस भयंकर शीत में भूखे

पेट नींद किसे आती? समय काटना कठिन हो रहा था। कुछ बात करने के उद्देश्य से देवी पार्वती ने निवेदन किया -

"स्वामी! इस शीत में निद्रा नहीं आ रही है। कुछ कहिए जिससे समय बीत जाये और हम सुख पूर्वक बाहर जा सकें।"

"हाँ उमा! इस अनायास की असमय वृष्टि और हिमपात ने तो संकट उत्पन्न कर दिया है। तुम्हें रुचिकर लगे तो मैं कौशल नरेश राजा दशरथ के पुत्र राम की कथा सुनाऊँ जिन्होंने संपूर्ण जीवन अनेक कष्ट झेलकर व्यतीत किया। राजपुत्र होकर भी वन में निवास किया।"

"हाँ स्वामी! वही कथा सुनाइए। मैं अवश्य सुनूँगी।"

पार्वती बोली।

रुद्रदेव स्मृतियों में डूबकर कथा सुनाने लगे। उन्हें सती के साथ व्यतीत किए हुए समय की स्मृति हो आयी। उनका कथा सुनाने का ढंग बहुत सुंदर और रोचक था। कपोत दंपति भी ध्यान लगा कर कथा सुनने लगे। देवी पार्वती कथा सुन कर हुंकार भरती जा रही थी। कथा सुनते उन्हें नींद आ गई तब इस भय से कि कहीं रुद्रदेव कथा सुनाना बंद न कर दें कपोत दंपति हुंकार भरने लगे। कथा समाप्त करके उन्होंने कहा -

"उठो पार्वती! अब आराम से सो जाओ। मैं देखता हूँ - संभवतः सूर्य देव का आगमन होने वाला है।"

रुद्रदेव ने पार्वती को गहन निद्रा में पाया तो सोचने लगे - देवी सो गयी हैं तो हुंकार कौन भर रहा था? किसने उनके एकांत को भंग करने का दुस्साहस किया? क्रोधित होकर रुद्रदेव दहाड़े -

"कौन है इस गुफा में? सामने आओ। हमारे एकांत को भंग करने का दुस्साहस करने वाले, छिप कर बातें सुनने वाले चोर! बाहर आओ।"

रुद्रदेव की दहाड़ से पार्वती की नींद टूट गई। कपोत दंपति भयभीत होकर कांपते हुए सामने आकर रुद्रदेव के चरणों में गिर पड़े।

"क्षमा, प्रभु! क्षमा। हम निरपराध हैं। हमें क्षमादान दें।"

तब देवी पार्वती ने रुद्र देव को शांत किया।

रुद्रायन – 2

"इनकी बात तो सुन लीजिए। कहीं ऐसा न हो कि इन्हें मार कर बाद में पछताना पड़े।"

उनके पूछने पर कपोत दंपति ने अपने वहां आकर रुकने और कथा के मध्य हुंकारी भरने की बात बतायी तो देवी पार्वती खिलखिला कर हँसने लगी।

"चलो मैंने न सही तुम लोगों ने तो राम की कथा सुन ही ली थी। रात्रि अच्छी तरह व्यतीत हो गयी। चलिए स्वामी! अब हम भी बाहर चलें और इन्हें भी बाहर जाने की अनुमति दें।"

"हमें अभयदान दें। प्रभु! हमें क्षमा कीजिए।"

कपोत ने पुनः निवेदन किया। पार्वती के अनुरोध पर रुद्रदेव ने समस्त कपोत कबीले को अभयदान दे दिया। तब से हम सभी कबीलेवासी उन्हें ही अपना संरक्षक मानते हैं।"

मयूरेश ने कथा समाप्त की।

दिन ढलने लगा था। कार्तिकेय को लौटने के लिए उत्सुक देख कर मयूरेश ने उन्हें अपना मयूर की आकृति का विशेष विमान देकर उसके संचालन की विधि भी समझायी।

"कुमार! अब यह विमान आपका हुआ। इसे स्वीकार करो। यह हमारी मैत्री का प्रतीक बन कर सदैव आपके पास रहेगा। हम अब ऐसा कोई अन्य विमान नहीं बनाएंगे और न ही उसका प्रयोग करेंगे।"

मयूरेश की स्नेह भरी बातों ने कार्तिकेय को मुआध कर दिया। उसने हृदय से मयूरेश की मैत्री स्वीकार की, पक्षियों तथा पक्षी नाम वाले कबीलों के लोगों की सुरक्षा का आश्वासन दिया और सब प्रसन्न मन से कैलाश परी की ओर प्रस्थान कर गये।

बाद में कार्तिकेय ने नंदीश्वर तथा विनायक के सहयोग से उस वाहन में कुछ अन्य सुधार भी किये और वही उसका प्रिय तथा प्रमुख वाहन बना।

कार्तिकेय के आखेट के लिए मित्रों के साथ चले जाने पर विनायक माता पार्वती के लिए पूजन की व्यवस्था में लग गया। उसने भाँति भाँति के पुष्प, अगरु, चंदन, तगर, भोजपत्र, फल आदि वस्तुएं एकत्र करके माता के समीप सजा दीं।

ध्यान-कक्ष की वह विशाल शिला जिस पर रुद्रदेव बैठ कर ध्यानस्थ होते थे उस समय खाली पड़ी थी। राज्य के कार्य से नंदीश्वर के साथ वे कहीं गये हुए थे। इसीलिए पार्वती रुद्रदेव के ध्यान करने की शिला को पुष्पों से सजा कर उस पर रुद्रदेव की धारणा करके पूजन करने लगी। उसके लिए उसने काले पत्थर की वह शिला जिसे वह सदाशिव कहती थी, निकाल कर उस विशाल शिला के मध्य में रख दिया। उस पर गंगा-जल की धारा डाल कर नहलाया और चंदन चर्चित करके उसे फूलों से अलंकृत कर दिया। तदुपरांत हाथ जोड़ कर वह उसके सम्मुख बैठ गयी। विनायक ने भी माता का अनुकरण करते हुए उस सदाशिव नामक शिला को प्रणाम किया। पार्वती कुछ देर नेत्र बंद करके ध्यान करती रही। उसके उठने पर विनायक ने पूछा -

"माँ ! यह आप किस का पूजन कर रही थीं?"

"सदाशिव का!"

पार्वती बोली।

"यह काले रंग की शिला सदाशिव क्यों है माँ?"

विनायक ने फिर पूछा।

"यह तुम्हारे पिता के चरण की पीठिका है पुत्र! उनके न रहने पर मैं इसकी आराधना करती हूँ। तब मुझे ऐसा प्रतीत होता है जैसे स्वयं तुम्हारे पिता ही मेरे सम्मुख विराजमान हैं।"

"तो मैं भी इनका पूजन किया करूं माँ?"

"अवश्य, यदि तुम्हारी श्रद्धा हो।"

"परंतु यह तो पत्थर है। इसमें किसी व्यक्ति या शक्ति का वास कैसे हो सकता है?"

विनायक ने जिज्ञासा की।

रुद्रायन – 2

"हो सकता है पुत्र! श्रद्धा और विश्वास हृदय में हो तो पत्थर भी ईश्वर का पर्याय बन जाता है। आवश्यकता है अटूट विश्वास तथा निष्कलुष श्रद्धा की। हम, तुम, यह, वह - क्या है यह जीवन? यह शरीर? शरीर तो शिला के समान होता है। उसमें आत्मा के रूप में जो अनंत ऊर्जा वर्तमान रहती है वही हमें जीवित प्राणी बनाती है। उसी प्रकार पत्थर में उर्जा की प्रतीति भी हो सकती है। हम उस पर अपनी भावनाओं को आरोपित करके निर्जीव को सजीव और आत्मा को परमात्मा बना देते हैं।"

पार्वती ने समझाया।

"तो माँ! मैं इस विशाल शिला पर रखी छोटी पाद पीठिका के संलग्न रूप की पूजा किया करूँगा।"

"क्यों?"

"क्योंकि यही रूप मुझे अधिक प्रिय लगता है। यह बड़ी शिला तुम्हारा प्रतीक है और छोटी शिला पिताश्री का। इस प्रकार मैं माता-पिता दोनों की आराधना एक साथ कर लूँगा।"

विनायक बोला। उसकी बात सुन कर पार्वती मुस्कुरा दी।

सत्य ही तो कहा था उसने। उस बड़ी स्फटिक शिला के मध्य रखी हुई वह काले रंग की पीठिका अद्भुत दृश्य उत्पन्न कर रही थी। जैसे उस स्फटिक शिला पर स्थापित होकर वह एक नयी ही कृति बन गई थी।

विनायक ने बड़े मनोयोग से एक एक पुष्प उठा कर उसे सजाया।

"इदम मातृदेव्यै, इदं न मम। इदम पितृदेवाय, इदं न मम।"

पुत्र की श्रद्धा देख कर पार्वती के नेत्रों में जल भर आया। स्नेह से भर कर उसने पुत्र को सीने से लगा लिया।

"माँ मैं आपको सदा पिताश्री के साथ ही देखना चाहता हूँ। मुझे माता-पिता दोनों का प्रेम और आशीर्वाद अभीष्ट है। अब इन सदाशिव को यहाँ पर स्थापित रहने देना माँ!"

विनायक ने आग्रह किया।

"तब तुम्हारे पिताश्री ध्यान के लिए कहां बैठेंगे?"

पार्वती ने हँस कर पूछा।

"उनके लिए मैं दूसरी शिला लाकर इसके सामने ही स्थापित कर दूंगा। तुम्हारे ध्यान की इस शिला के समीप।"

"ठीक है पुत्र! यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो यही सही। मुझे भी यह मूर्ति अत्यंत सुंदर लग रही है। इन दोनों शिलाओं को एक साथ रख देने पर जैसे दोनों ही संपूर्ण हो गई हैं।"

पार्वती ने सहमति प्रकट की।

कुछ देर मुग्ध भाव से उसे देखते रहने के बाद विनायक ने कहा -

"माता! मेरी इच्छा हो रही है कि इसे स्वर्ण कमल से सजाऊँ।"

"स्वर्ण कमल से?"

"हाँ माँ! मेरे अजापालक मित्रों ने बताया है कि स्वर्ण कमल अत्यंत सुंदर सुनहरे रंग के होते हैं। उनको यहाँ सजा दिया जाएगा तो इस प्रतिमा की शोभा सहस्र गुनी हो जाएगी।"

विनायक आत्मविभोर होकर बोला।

"परंतु पुत्र! वह तो हेमकुंड में खिलता है। हेमकुंड क्या यहाँ है? उतनी दूर जाकर स्वर्णकमल लाना ... "

"आप चिंता न करें। मैं अपने मित्रों के साथ अपने तीव्रगामी अश्व पर चढ़ कर जाऊंगा और शीघ्र ही हेमकुंड से बहुत से स्वर्ण कमल ले आऊंगा। वह कई दिनों तक मुझाते नहीं हैं और यह भी सुना है कि उन्हें लाकर हम अपने सरोवर में भी लगा सकते हैं। आप आज्ञा दो माँ! मैं शीघ्र ही लौट आऊंगा।"

विनायक ने अनुनय की।

"किंतु पुत्र! तुम्हारे पिताश्री और भाई कार्तिकेय दोनों यहाँ नहीं हैं। उनके आ जाने पर तुम कार्तिकेय के साथ"

"नहीं माँ! मैं अब बच्चा नहीं हूँ। बड़ा हो गया हूँ और समर्थ भी, तभी तो पिताश्री ने मुझे गणनायक बनाया है। मुझे जाने दो माँ! भाई और पिताश्री तो संध्या तक लौट ही आएंगे। मैं अभी जाऊं तो संध्या होने से पूर्व ही हेमकुंड तक पहुंच जाऊंगा। रात्रि में वहीं ठहर कर प्रातः सूर्योदय

रुद्रायन – 2

होते ही स्वर्ण कमलों को एकत्र करके लौट आऊंगा। अब आज्ञा दे भी दो माँ!"

विनायक ने बालकों के समान हठ करते हुए मचल कर कहा।

"अब तू मानेगा थोड़े ही। ठहर, मैं तेरे साथ रात्रि भोजन की व्यवस्था कर दूँ। तुझे भूख भी तो बहुत लगती है।"

पार्वती बोली।

"चिंता न करो माँ! मैं मित्रों के साथ जाने से पूर्व पर्याप्त मात्रा में फल साथ ले लूंगा। कल भोजन में मेरे लिए मोदक बना कर रखना। मुझे आते ही भूख लगेगी।

विनायक ने माँ के चरण स्पर्श कर उनकी वंदना की और शीघ्रता से बाहर निकल गया। उसे भय था कि कहीं माता उसे रोक न लें।

अपने मित्रों माधव और वीरेश्वर के साथ विनायक अश्व सवार होकर चल पड़ा। जाने से पूर्व उसने अपने लिए पर्याप्त मात्रा में फल रख लिया था। रास्ते भर आनंद ही रहा। चारों ओर हरे-भरे वृक्षों, झाड़ियों और लताओं से सजा वन - प्रांत अत्यंत सुंदर तथा सुखद प्रतीत हो रहा था।

अपने घोड़ों को सरपट दौड़ाते हुए शीघ्रता से हेमकुंड की दिशा में चल रहे थे क्योंकि प्रत्येक दशा में उन्हें संध्या होने से पूर्व ही वहां पहुंच जाना था। वह स्थान अत्यंत बीहड़ तथा मार्ग अत्यधिक पथरीला और कष्टप्रद था ऐसा उसने मित्रों से सुन रखा था। रात्रि के अंधकार में मार्ग भूलने का भी भय था। शीघ्र पहुंचने पर ही वे अपने लिए रात्रि व्यतीत करने के लिए निरापद आश्रय ढूँढ़ सकते थे।

सूर्य पर्वतमालाओं की ओट में छिपने के लिये उतावला हो रहा था जब विनायक और उसके मित्र हेमकुंड क्षेत्र की सीमा में पहुंच गये। जहां वे रुके थे वहां से आधे फलांग की दूरी पर हेमकुंड स्थित था जिसके जल में अस्ताचलगामी सूर्य की किरणें लाल रंग घोल रही थीं। वृक्षों के पत्ते सूर्य की किरणों से स्वर्णिम हो रहे थे। आकाश में बिखरे बादलों के टुकड़े लाल और सुनहरे रंग में ढूबे हुए थे। चारों ओर प्रकृति अपनी छटा बिखरे

रही थी किंतु उस सौंदर्य का पान करने का समय उनके पास नहीं था। वे जानते थे कि कुछ ही क्षणों में सूर्य पर्वतों के पीछे छिप जाएगा। तब चारों ओर फैले अंधकार में वही प्रकृति अत्यंत भयानक रूप धारण कर लेगी।

वे अभी सोच ही रहे थे कि कहाँ ठहरने की व्यवस्था करें कि तभी न जाने किस ओर से निकल कर कई छोटे आकार के बौने मनुष्यों ने उन्हें घेर लिया। वे छोटे आकार के मनुष्य थे और सुरक्षा के लिए उनके हाथों में लकड़ी के बने हुए नुकीले भाले थे। कुछ बौने छोटी-छोटी मशालें लिए हुए थे।

"पधरें अतिथिगण! हमारी इस धरती पर आपका स्वागत है।"

उनमें से एक ने आगे बढ़ कर प्रणाम करते हुए कहा जो संभवतः उनके दल का प्रमुख था।

"धन्यवाद, आप कौन हैं?"

विनायक ने उनकी विनम्रता से प्रभावित होकर कोमल स्वर में पूछा।

"हम लोग यहाँ के निवासी हैं। इस ओर कोई नहीं आता। आप लोग प्रथम बार इधर आए हैं अतः हमारे अतिथि हैं। आप अपना परिचय दे कर हमें अनुग्रहीत करें।"

दल प्रमुख ने हाथ बांध कर कहा।

"मैं कैलाशपति रुद्रदेव का पुत्र विनायक हूँ और ये दोनों मेरे मित्र माधव और वीरेश्वर।"

विनायक ने बताया।

"आप रुद्रदेव के पुत्र हैं? हमारा पुनः अभिवादन स्वीकार करें। हमने तो कभी आप की सीमा का अतिक्रमण नहीं किया। हम सब रुद्रदेव को अपना स्वामी स्वीकार करते हैं। आप महानुभावों के आगमन का क्या प्रयोजन है?"

दल प्रमुख ने विचारमन होते हुए पूछा।

"हम पूजन के लिए स्वर्ण कमल लेने आए हैं। आपको हमसे कोई भय नहीं है। हम आपके मित्र हैं।"

रुद्रायन – 2

विनायक ने कहा।

"अवश्य। फिर तो आप हमें अपना आतिथ्य करने का अवसर प्रदान करें। यहीं निकट ही हमारा आवास है। आप आज रात्रि वही व्यतीत करें। प्रातः हम स्वयं आपको स्वर्ण-कमल ले जाने में सहायता प्रदान करेंगे।"

दल प्रमुख ने निवेदन किया।

"मैं दल प्रमुख मूषकेंद्र हूँ। आपकी मित्रता पाकर हम कृतार्थ हुए।"

"तो मित्र! अब यहां औपचारिकता छोड़ कर हमें मार्ग बताओ। अंधकार होने लगा है।"

"अवश्य मित्र! इस ओर से आइए।"

मार्ग दिखाते हुए वे एक ओर चल पड़े। उनकी जलती हुई मशालों के प्रकाश में विनायक भी अपने मित्रों के साथ अश्वों की डोरी थामे हुए उनके पीछे-पीछे थोड़ी दूरी बना कर चल दिया। वह नहीं चाहता था कि उस गहन अंधकार में उन ऊबड़ खाबड़ रास्तों पर चलते हुए उनका कोई अल्पकाय मित्र घायल हो जाये।

पता नहीं उस अंधकार में वे कितनी दूर तक चलते रहे। एक ओर पर्वत की एक गुफा के निकट पहुंच कर उनके दलपति ने कहा -

"अपने अश्वों को यहीं वृक्ष से बांध दीजिए।"

विनायक तथा उसके मित्रों ने अश्वों को वृक्ष के तने से बांध दिया और उनके सामने साथ लाया हुआ चारा डाल दिया। वे दलपति तथा उन बौने मनुष्यों के पीछे चल कर उस विशाल गुफा में पहुंचे जो पर्याप्त ऊंची और बड़ी थी। गुफा का प्रवेश द्वार छोटा था जिससे उन्हें उसमें झुक कर प्रवेश करना पड़ा। अंदर जाकर दलपति के साथियों ने अपनी मशालें गुफा में अलग-अलग स्थानों पर लगा दीं।

उन मशालों के प्रकाश में वह स्वच्छ गुहा-विवर स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगा। गुफा कुछ आगे जाकर कई मार्गों में विभक्त हो गई थी। दलपति के संकेत पर उसके साथी उन भीतरी गुफा मार्गों में चले गए। कुछ देर बाद ही वे अपने हाथों में छोटे-छोटे आसन और बिछौने लेकर

लौटो उन्हें बिछा कर उन्होंने अतिथियों के बैठने तथा सोने की व्यवस्था की।

"आप यहाँ पधारें मित्र! मैं आपके भोजन की व्यवस्था करता हूँ"
दलपति ने कहा।

"उसके लिए कष्ट करने की आवश्यकता नहीं है भाई! हम अपने साथ पर्याप्त मात्रा में फल लेकर आए हैं। उनसे हम तृप्त हो जाएंगे।"

विनायक ने बताया। उसके मित्रों ने फलों की झोली सामने रख दी।
"आओ मित्र! तुम भी हमारे साथ खाओ।"

विनायक ने दलपति से कहा।

"अवश्य, मैं थोड़ा मधु मंगाता हूँ। फल खाकर तथा मधु-पान करके विश्राम करें। मेरी पत्नी मधु में इलायची डाल कर अच्छा पेय बनाती है।"

दलपति ने आत्मीयता से कहा। उसका आदेश पाकर उसके साथी चले गए और कुछ ही देर बाद मधु मिश्रित पेय का पात्र ले आए। फल खा कर सबने वह मधुर पेय पिया। अद्भुत था वह मधु रस। उसे पीकर तो जैसे उनकी सारी थकान ही दूर हो गयी।

"धन्यवाद मित्र! वास्तव में बहुत स्वादिष्ट है यह। आनंद आ गया। आत्मा तृप्त हो गयी।"

विनायक ने अंगड़ाई लेते हुए कहा।

"अब विश्राम कीजिए। मैं गुहा द्वार पर चार रक्षकों को नियुक्त कर देता हूँ जिससे कोई हिंसक पशु इस ओर आए तो वे उससे आपको सतर्क कर सकें। प्रातः: मैं आप लोगों को अपनी बस्ती दिखाऊंगा तथा अपने लोगों से भी आपको मिलवा दूँगा। आपसे मिल कर मेरे साथी बहुत प्रसन्न होंगे।"

दलपति ने विनम्र स्वर में कह कर अभिवादन किया और रक्षकों की व्यवस्था कर दी। विनायक वीरेश्वर तथा माधव यात्रा की थकान के कारण शीघ्र ही गहरी नींद सो गए। दलपति उसी गुफा कक्ष में एक ओर सो रहा। प्रातः: सूर्योदय होने से पूर्व ही दलपति की नींद टूट गयी। कुछ क्षणों में विनायक आदि भी जग गए।

रुद्रायन – 2

दलपति के साथ वे प्रातः क्रिया के लिए वन में चले गए। पहाड़ी झगड़े के शीतल जल से मुंह हाथ धोकर वे पुनः गुफा में लौट आए। जलपान आदि के पश्चात दलपति उन्हें अपनी बस्ती में ले गया। अद्भुत थी उनकी वह बस्ती। उनकी आकृतियों के अनुसार ही उनके आवासों की छतें और द्वार कम ऊँचाई वाले थे। उनकी संपूर्ण बस्ती भूमिगत भूलभूतलैया जैसी थी जिसमें प्रवेश करने पर कोई अनजान व्यक्ति उन्हें पीड़ित नहीं कर सकता था और न ही भाग सकता था।

दलपति ने बताया -

"हम सुरक्षा की दृष्टि से इस प्रकार के भूमिगत गृहों में निवास करते हैं। हमारी ऊँचाई कम होने के कारण हमें हिंसक जंतुओं से सुरक्षा के लिए सचेत रहना पड़ता है। हमारे घरों में कई कई गुप्त मार्ग होते हैं जिनकी जानकारी केवल गृह के सदस्यों को ही होती है। घर के द्वार छोटे होने के कारण बड़े पशु आदि हमें हानि पहुंचाने के लिए अंदर प्रवेश नहीं कर पाते। यदि कभी कोई आपद-जनक जीव अंदर घुस जाए तो घर के सदस्य अन्य द्वारों से सुरक्षित निकल जाते हैं तथा हमारे योद्धा घेर कर शत्रु को समाप्त कर देते हैं।"

"अद्भुत शिल्प है तुम्हारी बस्ती का। सब प्रकार से सुखद और सुरक्षित भी है। अब पहर भर दिन चढ़ आया है मित्र! हमें हेमकुंड जाकर अब स्वर्ण-कमल तोड़ना है और वापस कैलाशपुरी जाना है। माता हमारी प्रतीक्षा कर रही होंगी।"

विनायक ने दलपति से कहा।

"अवश्य, आइए। अब हम हेमकुंड की ओर ही चल रहे हैं।"

दलपति के साथ वे सभी हेमकुंड के निकट पहुंचे। इतना विस्तृत जलकुंड उन्होंने इससे पूर्व नहीं देखा था। कुंड का जल इतना स्वच्छ था कि कुंड की सतह स्पष्ट दिखाई दे रही थी। कुंड में बीच-बीच में कमल पत्रों के बीच अगणित स्वर्ण कमल खिले हुए थे।

"आहा, अत्यंत सुंदर कुंड है यह तो मित्र! हम अभी जाकर स्वर्णकमल ले आते हैं।"

वीरेश्वर तथा माधव बोल उठे ।

"ठहरो, मैं भी चलता हूँ"

विनायक बोला। अपने उत्तरीय तट पर रख कर उन्होंने अधोवस्थ को कस कर कमर में लपेट लिया और कुंड में कूद पड़ा। कुंड का जल अत्यंत शीतल था। तैरते हुए वे आगे बढ़े और शीघ्रता पूर्वक स्वर्ण कमल के पुष्पों को तोड़ने लगे।

पर्याप्त पुष्प चयन करके वे किनारे पर आए तब तक दलपति ने अपने दल के सदस्यों को भेज कर उनके लिए कुछ फलों तथा मधु पात्र की व्यवस्था कर दी थी। स्वर्ण कमल की डंडियों को आपस में बांध कर दलपति ने एक बड़ा पुष्प गुच्छ बना कर उसे केले के पत्तों में लपेट कर विनायक को दे दिया।

"इसे ऐसे ही ले जाना होगा मित्र! यदि मार्ग में इन्हें खोल दिया जाएगा तो ये हवा के ताप से मुरझाने लगेंगे।"

विनायक ने पुष्पों की पोटली अपने सामने अश्व पर रख ली।

"एक निवेदन है मित्र!"

बड़े संकोच से दलपति ने कहा।

"कहो मित्र! निसंकोच कहो।"

"यह मेरा पुत्र धावक है। मैं इसे आपकी सेवा में देना चाहता हूँ।"

"किंतु ..."

"अस्वीकार मत कीजिए मित्र! यदि आप हमें अपना मित्र मानते हैं तो यह अनुरोध आपको अवश्य स्वीकार करना होगा। मेरा पुत्र आपके सदैव निकट रह कर आपकी सेवा करेगा। इसे देख कर आप मुझे सदैव स्मरण करते रहेंगे। मित्र! मेरा पुत्र अत्यंत गुणी है। यह आपकी सदैव सतर्कता पूर्वक निगरानी करेगा। यह ऊंचे नीचे दुर्गम पथ पर चलने में निपुण है। आपके आदेशों तथा संदेशों को भेजने और मंगाने के कार्य को भी यह भली प्रकार संपन्न कर सकेगा। अल्पकाय होने के कारण यह आपके लिए व्यर्थ का बोझ है ऐसा मत समझिएगा।"

रुद्रायन – 2

दलपति ने अपने सुंदर पुत्र को विनायक की गोद में डालते हुए कहा।

"तुम्हारा पुत्र तुमसे दूर हो जाएगा मित्र!"

विनायक बोला।

"आज से यह आपका पुत्र है। मुझसे अधिक इसकी देखरेख करने में आप सक्षम हैं। आपकी सेवा करके यह हमारी संपूर्ण जाति को धन्य कर देगा।"

"यदि यही तुम्हारी इच्छा है तो ठीक है। आओ पुत्र!"

विनायक ने नन्हे धावक को गोद में उठा कर अपने सामने अश्व पर बैठा लिया। उसने झुक कर अश्व के अयाल पकड़ लिए। दलपति से विदा लेकर विनायक तथा उसके मित्र कैलाशपुरी लौट आए। रास्ते भर वे दलपति मूषकेंद्र की प्रशंसा करते रहे। नन्हा धावक उनके मनोरंजन का केंद्र बना रहा। विनायक को तो जैसे एक नन्हा सा खिलौना मिल गया था।

धावक भी कम न था। पिता ने संभवतः उसके गुणों को पूर्ण रूप से नहीं बताया था। नन्हा आकार होने पर भी वह ऊंचे नीचे रास्ते पर सहज ही तीव्र गति से चल पड़ता था। ऊंचे ऊंचे वृक्षों पर वानरों के समान ही चढ़ जाता। विनायक की तो जैसे वह छाया ही बन गया था। जब विनायक अपने मित्रों के साथ बैठ कर बातें करता होता तब वह उसकी गोद में बैठ कर उसकी लंबी नाक को अपने नन्हे नन्हे हाथों से सहलाता रहता। जब विनायक को नींद आने लगती तो वह उसे अपने मधुर स्वर में गाकर लोरी सुनाता। उसकी इन नन्हीं गतिविधियों ने शीघ्र ही विनायक का मन मोह लिया।

उस दिन माता पार्वती ने विनायक के लाए हुए स्वर्ण कमलों से अपने सदाशिव का श्रृंगार किया। कुछ फूलों को जिनके साथ डंडी और जड़ें भी संपूर्ण थीं। उन्हें पार्वती ने अपने क्रीड़ा सरोवर में रोप दिया। ध्यानशिला पर आसीन पीठिका को देख कर रुद्रदेव चकित हुए तो पार्वती ने उन्हें विनायक की मधुर परिकल्पना के संबंध में बताया। रुद्रदेव

डॉ. रंजना वर्मा

हँस पड़े। उन्होंने काले पत्थर की पाद पीठिका को स्फटिक के आसन पर बीचो-बीच लम्बवत टिका दिया।

"अब तुम्हारे सदाशिव का रूप निखरा है। उमा, तुम ऐसे ही उसने अपने सदाशिव की अर्चना किया करो।"

उनकी बात सुन कर पार्वती हँस पड़ी। परन्तु वह परिहास सत्य बन गया था। उस दिन के पश्चात वह मूर्ति साक्षात रुद्रदेव तथा पार्वती का प्रतीक बन गयी। विनायक तथा कार्तिकेय ने अपने माता पिता की मूर्ति मानकर उसकी विधिवत पूजा आरम्भ कर दी तो नन्दीश्वर भी क्यों पीछे रहते? कालांतर में वही मूर्ति कैलासवासियों के इष्ट देव के रूप में स्वीकृत हो गयी।

०००

पार्वती पति और पुत्रों के लिए अपने हाथ से रसोई बनाया करती थी। यह गुण उन्होंने अपनी माता रानी मैनावती से सीखा था। बचपन में नहीं उमा को रसोई में कार्य करना अच्छा नहीं लगता था। उसे यह समझ में ही नहीं आता था कि जब महल में इतने दास दासियाँ हैं कार्य करने के लिए तो स्वयं अभिन का ताप सह कर भोजन बनाने का कष्ट क्यों उठाया जाये।

एक दिन उसने अपनी माता से यही जिज्ञासा की तो उन्होंने समझाया -

"पुत्री ! यह रहस्य तो तू बड़ी होने पर ही समझ सकेगी। स्त्री के हाथ में अन्नपूर्णा का वास होता है। जब वह अपने हाथों से अपने परिवार के लिए भोजन तैयार करती है तब उस प्रक्रिया में उसके हृदय का प्रेम और आत्मीयता भी उस कार्य में सम्मिलित हो जाते हैं। और मेरी यह बात भी तू गांठ बांध ले। अच्छी तरह समझ ले कि पुरुष के हृदय तक जाने का रास्ता उसके पेट से होकर ही जाता है।"

उमा तब माँ की बात का मर्म नहीं समझ सकी थी किंतु जब अपने हाथों से भोजन बनाकर रुद्रदेव को खिलाया तब उनके मुख पर बिखरा असीम आत्मानंद और संतोष देख कर वह तृप्त हो गयी। उसे माँ की कही बात स्मरण हो आयी और उसका निहितार्थ भी तभी वह समझ सकी। उसके हाथों से बनी खीर और मोदक परिवार को अत्यंत प्रिय थे। विनायक का तो माँ के हाथ का भोजन किए बिना पेट ही नहीं भरता था। भोजन करते समय रुद्रदेव जब उसे प्रशंसा भरी दृष्टि से देखते तो जैसे समस्त विश्व ही उसके सम्मुख न त हो जाता। कार्तिकेय को अपने हाथों से भोजन खिलाते समय वह पुत्र के इतने दिनों के वियोग के दुख को भूल जाती। माता की रसोई के अन्न की इच्छा नंदीश्वर तथा अन्य सेवकों को भी सदैव रहती थी इसलिए पार्वती सेविकाओं के साथ जाकर पाकशाला में स्वयं अपने निर्देशन में भोजन तैयार करवाती तथा एक दो व्यंजन स्वयं ही बनाया करती थी। ऐसे समय में नन्हा धावक बहुधा पाकशाला के आस पास ही रहता। उस दिन पार्वती बड़े मनोयोग से मोतीचूर के लड्डू

बना रही थी और धावक उसके आसपास मंडरा रहा था। वह उसकी सहायता करना चाहता था किंतु कैसे करे यही नहीं समझ पा रहा था। इसी उहापोह में वह भोजन सामग्री बिखेर दे रहा था। यह देख कर पार्वती ने टोक दिया -

"अरे मूषकराज! धैर्य से बैठ जाओ एक ओरा। तुम तो मूषक के समान सब कुछ फैला दे रहे हो।"

उसी समय विनायक और कार्तिकेय वहाँ आ पहुंचे।

"हाँ माँ, यह ठीक कहा आपने। मूषक ही है यह। अब हम इसे मूषक ही कह कर पुकारेंगे।"

विनायक ने उसे चिढ़ाया।

"तो कहिए न! क्या अंतर पड़ जाएगा? यह तो और भी अच्छा नाम है। मेरे पिताश्री का नाम मूषकेंद्र है। मूषकेंद्र का पुत्र मूषक ही तो हुआ। मैं मूषक हूँ।"

धावक ताली बजाकर हँस पड़ा। उसकी बात पर सब हँसने लगे। बस तभी से विनायक उसे प्यार से मूषक कह कर पुकारने लगा।

कितने सुख के दिन थे वे। माँ पार्वती अपने चिर संचित प्यार दुलार की अजस धारा से पुत्रों का अभिषेक कर रही थी और रुद्रदेव प्रेम के साथ अनुशासन तथा युद्ध कला में भी अपने पुत्रों को पारंगत करने में लगे हुए थे। विनायक के रोग का कोई उपचार अब नहीं किया जा सकता था। उसकी नाक का बढ़ना रुक गया था यही बड़े संतोष की बात थी। रुद्रदेव के औषधि वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला में अभी भी इस विचित्र रोग का निदान तथा उपचार ढूँढने में लगे हुए थे।

पर्वत वासियों का जीवन दोहरे संघर्ष में सदैव रत रहने के लिए अभिशप्त होता है। एक ओर उन्हें अपने शत्रुओं से युद्ध करना होता है तो दूसरी ओर प्राकृतिक आपदाओं का सामना करते हुए नित्य प्रति अस्तित्व का संघर्ष करते रहना पड़ता है। संभवतः इसीलिए उनका जीवन इतना कठोर होता है। किंतु कठोर होते हुए भी उनके हृदय में दया, ममता और प्रेम की मंदाकिनी सतत प्रवाहित होती रहती है। जीवन की

रुद्रायन – 2

विषमताओं में प्रतिपल वे सुख के कण ढूँढते रहते हैं। एक-एक पल करके जीवन बीत जाता है। पल पल के सुख उनके बीहड़ जीवन को सुखमय बना कर निरन्तर आत्म सुख तथा आत्मानंद से परिभाषित करता रहता है।

पार्वती याकी के दूध से पायस बना कर उसका पात्र ले सबको पायस बांट रही थी। उसके सरोवर में स्वर्ण-कमल की प्रथम कली ने अंगड़ाई लेकर आँखें खोलीं तो उसके साथ पार्वती ने पायस का भोग भी लगाया था अपने सदाशिव को। निराकार ब्रह्म का ध्यान करने की नीरसता से मुक्त होकर वह साकार सदाशिव की अर्चना करने लगी। पायस का प्रसाद पाने के लिए संपूर्ण परिवार तथा भवन के सेवक ध्यान कक्ष के बाहर एकत्र होकर पंक्ति बना कर खड़े हो गए थे। पलाश के पत्ते का दोना बना कर वह सबको प्रसाद बांट रही थी।

उसी समय वहां देवगुरु बृहस्पति ने उपस्थित होकर हाथ फैला दिया -

"मुझे भी प्रसाद दो माँ!"

देवगुरु के मुख से माँ का संबोधन सुन कर पार्वती संकुचित हो गयी।

बृहस्पति हँस कर बोले -

"स्त्री जन्मदात्री होने के कारण जननी होती है माँ! वह समस्त संसार की माता है, पालिका है। अब विलंब न करो। पायस की सुगन्ध से इस ब्राह्मण का मन ललचा रहा है।"

उनकी बात सुन कर सभी हँस पड़े। पार्वती ने पायस से भरा दोना उनके हाथ पर रख दिया।

"आरोगिये ब्रह्म देव!"

गुरुदेव ने प्रसाद मस्तक से लगा कर खा लिया।

"आज जीवन का फल मिल गया माँ! बड़े सौभाग्य से माता के हाथों का भोजन मिलता है। आत्मा तृप्त हो गयी मेरी।"

पायस वितरण के पश्चात रुद्रदेव कार्तिकेय, विनायक और नंदीश्वर तथा देवगुरु बृहस्पति को साथ लेकर अपने प्रिय उद्यान में आ गये। सब के बैठ जाने पर रुद्रदेव ने देवगुरु से पूछा -

"देवगुरु! आप अकारण यहां आयें यह तो संभव ही नहीं प्रतीत होता। क्या पुनः कोई समस्या उत्पन्न हो गई है? देवराज इंद्र अपने देवगण सहित प्रसन्न तो है न?"

"नहीं प्रभु! आपने असुरराज जलांधर को मार कर देवराज को पुनः देवलोक में प्रतिष्ठित किया था किंतु वे अपनी स्वतंत्रता को अधिक दिनों तक बनाये नहीं रख सके। उनकी विलासी प्रकृति तथा आलस्यमय स्वभाव ने उनके पराक्रम को कुंठित कर दिया है। असुरराज जलांधर के वध के बाद दैत्य और असुर नेतृत्व विहीन हो रहे थे। उन्हें संगठित करके दैत्यगुरु शुक्राचार्य ने वज्रांग के पुत्र तारक को उनका नेतृत्व सौंप दिया है। अब वह असुरों का राजा बन गया है और अपने राज्य का विस्तार करने की महत्वाकांक्षा को पूर्ण करने के लिए अत्यंत क्रूरता से अन्य निकटवर्ती राज्यों पर आक्रमण करके उन्हें अपने अधीन करता जा रहा है। उसने देवलोक पर आक्रमण करके इंद्र की गोशाला तथा हरित शाला पर अधिकार कर लिया है। भयभीत हो कर देवराज अपनी सेनाओं सहित वन प्रदेश में जा छिपे हैं। उन्हीं के आग्रह पर मैं देव सेनापति कुमार कार्तिकेय को बुलाने आया हूँ। उनकी देवराज को अत्यधिक आवश्यकता है क्योंकि वही देवों की सेना बिखरी और भयभीत सेना को पुनः संगठित करके तारकासुर से युद्ध करने में सक्षम है। इस समय तारकासुर का आतंक दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है। ऐसे में उसे पराजित करना अत्यंत आवश्यक हो गया है। आपसे देवराज इंद्र की ओर से मैं निवेदन कर रहा हूँ। कृपा करके देव-सेनापति कार्तिकेय को मेरे साथ भेज दें।"

"अवश्य देवगुरु! कार्तिकेय अपने दायित्व का अवश्य निर्वाह करेगा।"

"पुत्र कार्तिकेय!"

रुद्रायन – 2

रुद्रदेव ने कार्तिकेय को संबोधित किया।

"आज्ञा पिताश्री!"

"तुम्हारे दायित्व निर्वाह का समय आ गया है पुत्र!"

"मैं तत्पर हूँ पिताश्री!"

कार्तिकेय ने सिर झुकाया।

"तो जाओ पुत्र! माता से अनुमति लेकर शीघ्र लौटो।"

रुद्रदेव ने आदेश दिया।

कार्तिकेय शीघ्रता से उठ कर पार्वती से मिलने के लिए चल पड़ा
जो स्वयं उसी ओर चली आ रही थी।

कार्तिकेय को अत्यंत शीघ्रता से आते देख कर वह ठिठक गई -

"क्या हुआ पुत्र? बड़ी शीघ्रता से"

"मैं आपके ही पास आ रहा था माँ!"

"मैं भी तुम लोगों के समीप ही आ रही थी। क्या बात है? मुझे क्यों
ढूँढ़ रहे थे?"

पार्वती ने स्नेह से पूछा।

"माँ! देवगुरु मुझे पुनः युद्ध के लिए ले जाने के लिए आये हैं।
देवताओं का सेनापति होने के कारण मुझे तारकासुर से संग्राम करके देव
गणों की रक्षा और देवलोक का उद्धार करना है। आप आज्ञा दें।"

"कब जाना है?"

"अभी इस संबंध में देवगुरु ने कुछ नहीं कहा परंतु संभवतः अभी
या प्रातः ही प्रस्थान करना होगा।"

कार्तिकेय ने बताया।

"इतनी शीघ्र? पुत्र! अभी तो मैं तुम्हारे साथ कुछ दिन रह भी नहीं
पायी। तुम पर अपनी ममता भी ढंग से नहीं लुटा पायी और तुम पुनः युद्ध
में जाने की बात करने लगे ..। मैं स्वयं देवगुरु से....."

"नहीं माँ! देवताओं का सेनापति होने के कारण मेरा दायित्व उनकी
रक्षा करना है। आप इस संबंध में देवगुरु से कुछ न कहें। वह स्वयं संकोच

में हैं। मुझे आप आशीर्वाद दें माँ, आपका पुत्र आततायी को अवश्य पराजित कर देगा।"

कार्तिकेय बोला।

"कार्तिकेय का कथन उचित है। उसे प्रसन्न मन से विदा करो। सेनापति का कर्तव्य पूर्ण करने के लिए उसे प्रोत्साहित करना ही हमारा धर्म है।"

रुद्रदेव ने निकट आकर कहा।

"कब जाना है?"

उदास स्वर में पार्वती ने पूछा।

"यथाशीघ्र।"

देवगुरु बृहस्पति बोले।

"कल प्रातः हम यहां से चल पड़ेंगे आचार्य! रात्रि में ही मैं अपने आयुधों का भंडार ले चलने की व्यवस्था कर लूँगा। तब तक आप भी विश्राम करें।"

कार्तिकेय ने कहा।

"जैसी आपकी इच्छा।"

कुछ अन्यमनस्क हो कर देवगुरु ने कहा। वह तत्काल ही कार्तिकेय के साथ प्रस्थान कर जाना चाहते थे किंतु कार्तिकेय की बात मान कर चुप रह गये। पार्वती के मन की स्थिति से भी वे भली-भांति अवगत थे। उसके सुख के क्षणों में अचानक ही आकर उन्होंने व्याघात उत्पन्न कर दिया था। इसलिए देवी पार्वती के मनस्तोष के लिए उन्हें रात भर का समय देना उचित ही प्रतीत हुआ। रुद्रदेव की अनुमति से वे विश्राम शाला में चले गये।

कार्तिकेय ने पिता तथा भाई विनायक के सहयोग से अपने श्रेष्ठतम आयुधों को अपने उसी मयूर-वाहन में रख लिया।

वह रात कार्तिकेय ने परिवार के साथ व्यतीत की। संपूर्ण रात्रि माता, पिता और भाई उससे बातें करते रहे। रुद्रदेव ने उसे विभिन्न

रुद्रायन – 2

तकनीकों तथा युद्ध कलाओं का स्मरण कराया और माँ प्रेम से उसके बालों को सहलाती रही। उसे प्रेम सुधा रस से अभिषिक्त करती रही। विनायक ने निवेदन किया -

"भाई, मेरी एक छोटी सी विनय स्वीकार कर लो।"

"बोलो।"

"अपने साथ मूषकराज को ले जाओ।"

"उसे? वह नन्हा मानव क्या करेगा वहाँ जाकर?"

कार्तिकेय ने हँस कर पूछा।

"वह नन्हा मानव बड़ा चमत्कारी है भाई! वह तुम्हारे साथ रह कर तुम्हारे भोजन आदि का ध्यान रखेगा और आवश्यकता पड़ने पर द्रुत गति से हमारे पास आकर तुम्हारा समाचार भी दे जाया करेगा।"

विनायक ने कहा।

"इसकी कोई आवश्यकता तो नहीं है किंतु तुम इतना कह रहे हो तो ठीक है। उसे भी मैं अपने साथ ही ले जाता हूँ। अब तो प्रसन्न हो न?"

"हाँ भाई! अनुगृहीत हूँ।"

वह रात्रि इसी प्रकार की बातों में व्यतीत हो रही थी। जब दो पहर रात्रि शेष रही तब पार्वती ने उन्हें सोने के लिए विवश कर दिया।

दूसरे दिन प्रातः ही कार्तिकेय अपने मयूर वाहन पर चढ़ कर देवगुरु तथा धावक के साथ इंद्रदेव से मिलने के लिए उनके आश्रय स्थल की ओर चले गये।

विशाल वन प्रांतर में इंद्रदेव अन्य देव गणों के साथ उपस्थित थे। उनके आदेश पर उनकी सेना के अधिकांश सैनिक वहाँ एकत्र हो गये थे। जब कुमार कार्तिकेय का वाहन वहाँ पहुंचा तो देवगण भयभीत हो गये। उन्हें लगा कि तारक ने किसी नई कला का आविष्कार कर लिया है तथा उन पर आक्रमण करना चाहता है।

मयूर वाहन को एक समतल स्थान पर उतार कर जब उसमें से देव गुरु बृहस्पति तथा कार्तिकेय बाहर निकले तो इंद्र आश्वर्यचकित हो गये। उन्हें इससे प्रसन्नता ही हुई कि कुमार कार्तिकेय का अपना वाहन है जो विष्णु देव के वाहन के समकक्ष है। देव गुरु बृहस्पति ने जब उन्हें बताया कि संकट पड़ने पर आवश्यकतानुसार रुद्रदेव स्वयं सेना सहित युद्ध में भाग लेने के लिए सहमत हो गये हैं और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए नन्हा मानव धावक भी उनके साथ आया है तो देव गणों का आत्मबल बढ़ गया। उन्हें विश्वास हो गया कि अप्रतिम योद्धा कार्तिकेय युद्धभूमि में शोणितपुर के स्वामी असुराज तारक का अवश्य वध कर देगा।

दो दिनों में ही कार्तिकेय ने समस्त देवसेना का संगठन कर लिया था। उसने तीन दिन उन्हें शाश्वाभ्यास कराया। इसी बीच अपनी रणनीति पर भी उसने देवराज इंद्र तथा देव गुरु बृहस्पति से विचार-विमर्श कर लिया जिससे संख्या में अधिक असुर सेना को भी अपने श्रेष्ठ योद्धाओं तथा युद्ध नीति से पराजित किया जा सके।

समस्त तैयारियां पूर्ण करके छठे दिन कार्तिकेय के नेतृत्व में देव सेना ने शोणितपुर की ओर कूच कर दिया। वे शोणितपुर के निकट स्थित उस पर्वत की ओर बढ़ रहे थे जिसके पीछे शोणितपुर बसा हुआ था। यह पर्वत एक प्रकार से शोणितपुर की रक्षा का दायित्व निभाता था किंतु अब उसी को अपने अधिकार में लेकर कार्तिकेय देवसेना की स्थिति सुदृढ़ कर लेना चाहता था। उस पर्वत पर अपनी सेना को नियुक्त कर लेने पर असुरों के सामने शोणितपुर की विस्तृत घाटी से युद्ध करने का ही विकल्प बचता। ऊंचाई पर स्थित होने के कारण कम संख्या होने पर भी देवगण असुरों को पराजित कर सकते थे क्योंकि असुरों के अख इतनी ऊंचाई पर

उन्हें हानि पहुंचाने में सक्षम नहीं थे। या तो वे उस ऊर्चाई तक पहुंच ही न पाते और यदि पहुंच भी जाते तो देवसेना स्वयं को चट्टानों की आड़ में रखकर सुरक्षित रख सकती थी जबकि असुर नीचे होने के कारण पूरी तरह देवताओं के लक्ष्य पर रहते।

सिंहनाद करती हुई उसकी सेना कार्तिकेय के नेतृत्व में आगे बढ़ने लगी। वे इंद्र को बीच में रख कर आगे बढ़ रहे थे। अब देवों के मन में विश्वास हो गया था कि वे अवश्य तारकासुर को परास्त कर देंगे। उनका आत्मविश्वास और उत्साह सौगुना बढ़ गया था।

जब तारकासुर को उसके चरों द्वारा देवताओं की सेना के युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर आने की सूचना मिली तो उसने भी तत्काल ही युद्ध की घोषणा कर दी और अपनी चतुरंगिणी सेना को लेकर सिंहनाद करते हुए उसी ओर बढ़ने लगा जिस ओर से उसे देव सेना के आने की सूचना प्राप्त हुई थी। वह शीघ्र ही शोणितपुर के बाहर स्थित विशाल विस्तृत क्षेत्र में आ डटा। उसने सोचा था कि देवगण भी उसी मैदान में सम्मुख आकर युद्ध करेंगे इसलिये उसने अपनी सेना को नगर के निकट ही रखा था। आधा क्षेत्र ही उसके सैनिकों के अधिकार में था। शेष क्षेत्र देवताओं के लिये रिक्त था परंतु देवताओं ने पर्वत से नीचे आये बिना ही युद्ध की भेरी बजा दी।

शंख दुंधभी आदि विभिन्न रण वाद्यों से आकाश गूंजने लगा। असुर सेना भी नगाड़ों और पटहों को शब्दायमान करती हुई जोर-जोर से हुंकारने लगी। भयानक युद्ध होने लगा। देवसेना ऊपर से बाणों की वर्षा करके दैत्यों और असुरों का संहार करने लगी। प्रत्युत्तर में असुरों ने भी बाण वर्षा आरंभ कर दी किंतु उनके अधिकांश बाण पर्वत की चोटी तक पहुंचने से पूर्व ही नीचे गिर कर नष्ट हो जाते थे। युद्ध क्षेत्र में निरीक्षण के लिए कार्तिकेय ने इंद्र को सम्मान सहित आगे कर दिया था। वह स्वयं अपने हाथी पर विराजमान था। कार्तिकेय अपने मयूर वाहन पर बैठ कर अपनी सेना पर मंडराते हुए उन्हें निर्देश देने लगा। कुछ ही पलों में असुरों के सैनिक धराशाई होने लगे। देवताओं के बाण सीधे अपने लक्ष्य को भेद

रहे थे जबकि असुरों की सेना अनुमान के आधार पर अस्त्र वर्षा कर रही थी। वह लक्ष्य को ऊंचाई के कारण देख नहीं पा रही थी। तारक के सैनिक कट कर, घायल होकर भूमि पर लोटने लगे। चारों ओर रक्त की नदियां बहने लगीं।

शीघ्र ही तारक को अपनी स्थिति का आभास हो गया। देवों की यह चाल जब उसकी समझ में आई तब उसने अपने सेनापति को युद्ध की स्थिति संभाले रहने तथा आक्रमण करते रहने का आदेश दिया और स्वयं चुने हुए योद्धाओं के टुकड़ी लेकर नगर में लौट गया। अपने विशाल आगार के पृष्ठ भाग में स्थित घने बन के मध्य के गुप्त मार्ग से वह अपनी सेना को लेकर घूम कर पर्वत शिखर की ओर चढ़ गया। देवताओं का ध्यान मुख्य युद्ध भूमि पर ही था। वे भी तारक की इस चाल को नहीं समझ सके। अनजान स्थिति में ही असुरों की सेना घूम कर देवसेना के पार्श्व भाग में पहुंच गयी। तारक ने भयानक गर्जना की। उसके सैनिक देवताओं पर टूट पड़े।

तुमुल युद्ध होने लगा। तारक किसी के रोके न रुका। दोनों हाथों से खड़ग संचालन करता वह अपने सैनिकों सहित देवसेना में घुसकर उन्हें मारने लगा। चारों ओर भयंकर शब्द हो रहा था। 'मारो मारो, काटो काटो' के शब्द कानों को बधिर बना रहे थे। सैनिक आक्रमण करते समय मुख से भयंकर शब्द निकाल रहे थे। देवताओं और राक्षसों का युद्ध बहुत वीभत्स रूप ले रहा था। भयंकर कोलाहल हो रहा था। देवता और असुर अपने-अपने राजा का नाम लेकर एक-दूसरे पर टूट पड़ रहे थे। एक दूसरे को मार कर वे विजयनाद करते उछल पड़ते थे। दोनों ही एक दूसरे के अंग भंग करके स्वयं को पराक्रमी समझ रहे थे।

उनका वह युद्ध भयंकर और विनाश कारक हो रहा था। तारकासुर ने अपनी शक्ति फेंक कर इंद्र को घायल कर दिया। उसकी सेना में चुने हुए असुर योद्धा थे जिन्हें रक्तपात अत्यंत प्रिय था। युद्ध किये बिना जिनकी भुजाएं फड़कती रहती थीं। देवता विलासप्रिय जाति के थे। असुर सेना ने अपने भयंकर आक्रमण से देवसेना को अत्यधिक हानि पहुंचा कर उसे

त्रस्त कर दिया। वे असुर देवों और उनके लोकपालों को प्रताड़ित करने लगे। उन्हें त्रस्त और भयभीत देखकर असुर भयंकर अट्टहास करने लगे। यह देख कर वीरभद्र क्रोधित होकर तारकासुर की ओर दौड़ा। तब असुर योद्धाओं ने उसे घेर लिया और खड़ग, पट्टिश, शूल आदि से उस पर प्रहार करने लगे। उन्हें पराजित करता हुआ वीरभद्र तारकासुर के निकट जा पहुंचा और उसे त्रिशूल मार कर घायल कर दिया।

तारक घायल होकर भूमि पर गिर पड़ा किंतु अगले ही क्षण वह स्वयं को संभाल कर पुनः उठ खड़ा हुआ और वीरभद्र से युद्ध करने लगा। उसने भयंकर बाणों की वर्षा करके वीरभद्र को पीछे हटने के लिए विवश कर दिया। फिर वह वहाँ युद्ध कर रहे देवताओं पर टूट पड़ा। वह उनके ऊपर तीक्ष्ण बाणों की बरसात करने लगा। उसके द्वारा की जाने वाली भयंकर बाण-वर्षा से देवसेना भयभीत हो गयी। यह देख कर विष्णुदेव अपना विमान छोड़ कर गदा लेकर तारक पर प्रहार करने लगे। तारक ने क्रोध में भर कर अपने अर्धचंद्राकार बाण से उनकी गदा काट दी। विष्णु देव ने गदा फेंक कर अपना शारंगव नामक विशाल धनुष उठा लिया और तारक पर प्रहार करना प्रारंभ कर दिया किंतु तारक को पराभूत नहीं कर सके। विष्णु को तारकासुर से अकेला युद्ध करते देख कर कार्तिकेय अपना वाहन छोड़ कर जलती हुई शक्ति लेकर तारक की ओर दौड़ा।

कार्तिकेय को युद्ध के लिए उद्यत देख कर तारक ने अट्टहास करते हुए कहा -

"अरे देवताओं! यही है तुम्हारा सेनानायक? वीर और पराक्रमी कुमार जो पल भर में ही शत्रुओं का विनाश कर देता है? यह तो अभी मेरे भीषण प्रहार से मार दिया जाएगा। परंतु मैं बालक की हत्या नहीं करना चाहता।"

फिर वह कार्तिकेय से कहने लगा -

"वीर बालक! तुम अवश्य वीर हो किंतु असुरों की शक्ति का सामना करने के योग्य सामर्थ तुम में नहीं है। ये देवगण तो सदा से स्वार्थी हैं। तुम्हें भी बलि का बकरा बना कर अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं।

परंतु मेरा हृदय इतना कठोर नहीं है। मैं किसी निर्दोष बालक की अकारण हत्या करके अपने यश को कलंकित नहीं करूँगा। तू अपनी माता के पास चला जा। इन स्वार्थी देवताओं को तो मैं अभी इनकी उद्दंडता का दंड देता हूँ।"

उसके विमुख होते ही इंद्र ने तारक पर अपने वज्र का भीषण प्रहार किया जिससे वह भूमि पर गिर पड़ा। कुछ क्षणों में ही उठ कर वह इंद्र पर चढ़ दौड़ा और उसे अपने प्रहारों से घायल कर दिया। इंद्र को परास्त होता देख कर देवताओं की सेना डर कर भागने लगी यह देखकर विष्णु ने पुनः आगे आकर तारक पर अपने सुदर्शन चक्र से प्रहार किया और उसे धराशायी कर दिया।

तारकासुर इतनी शीघ्र हारने वाला नहीं था। पुनः वह अपनी पूरी शक्ति के साथ उठ गया और एक प्रचंड शक्ति लेकर उससे विष्णु पर प्रहार कर दिया। विष्णु मूर्छित होकर गिर पड़े। देवताओं की सेना में कोहराम मच गया। सब अपने प्राणों की रक्षा के लिए इधर-उधर भागने लगे। सारी सेना तितर-बितर होने लगी। यह देख कर वीरभद्र तारकासुर अपने त्रिशूल से प्रहार करने लगा। घायल होकर तारकासुर ने उठ कर वीर भद्र पर शक्ति मार कर उसे मूर्छित कर दिया और भयंकर रूप से अद्वृहास करने लगा।

ऐसे संकट के समय धावक से सूचना पाकर रुद्रदेव अपने गणों की सेना के साथ युद्ध भूमि में आ पहुँचे। यह देख कर देवताओं में खुशी की लहर दौड़ गयी। वे जोर-जोर से सेनापति कार्तिकेय की जय-जयकार करने लगे। रुद्र सेना का साथ पाकर देवता दुग्ने उत्साह से युद्ध करने लगे। कार्तिकेय अपूर्व शौर्य के साथ तारकासुर से भिड़ गया। दोनों परमवीर और पराक्रमी थे। वे विभिन्न दांव पेचों का प्रयोग करते हुए एक दूसरे पर भीषण प्रहार करने लगे। वे अपनी पूर्ण शक्ति तथा सामर्थ्य का प्रयोग करते हुए युद्ध कर रहे थे। दोनों ही एक दूसरे को घायल कर रहे थे। युद्ध धीरे-धीरे भयानक होता जा रहा था। यह देख कर समस्त देवता असुर आदि युद्ध करना छोड़ कर, घेरा बना कर उन दोनों का द्वंद्व युद्ध देखने लगे। वह अद्भुत युद्ध अनायास ही सबके आकर्षण का केंद्र बन गया।

रुद्रायन – 2

ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे हवा गति करना भूल कर गई हो। सूर्य अस्ताचल की ओर जाते जाते रुक कर उस युद्ध को देखने लगे।

उसी समय तारक ने भयंकर शक्ति का प्रहार करके कार्तिकेय को भूमि पर गिरा दिया। अगले ही क्षण वह अपनी संपूर्ण शक्ति समेट कर उठ खड़ा हुआ और युद्ध के लिए तत्पर हो गया। कार्तिकेय ने नेत्रों से ही अपने पिता रुद्रदेव की वंदना की और अपनी संपूर्ण शक्ति एकत्र करके वज्र के समान शूल उठा कर तारकासुर के वक्ष में भोक दिया। वह भूमि पर गिर पड़ा। अपने ही वेग में कार्तिकेय भी लड़खड़ा कर गिर पड़ा। कुछ संभल कर उठ कर उसने तारकासुर की ओर पलट कर देखा। उसके प्राण पखेरु उड़ चुके थे। असुर सेना स्तब्ध होकर अपने स्वामी के निष्प्राण शरीर को देख रही थी।

देवगणों तथा रुद्रगणों ने विजयनाद तथा 'सेनापति कार्तिकेय की जय' के उद्घोष से आकाश गुंजा दिया। शेष असुरों ने अपने अस्त्र-शस्त्र फेक कर आत्मसमर्पण कर दिया।

महाबली तारकासुर के मारे जाते ही सभी देवता प्रसन्न हो गए वह बारंबार हर्षनाद करने लगे। असुरों की विशाल सेना में भयंकर कोलाहल होने लगा। वे अपने प्राणों की रक्षा के लिए इधर-उधर भागने लगे। कुछ असुर युद्धभूमि छोड़ कर भाग गये। शेष हाथ जोड़ कर, हथियार डाल कर कुमार कार्तिकेय की शरण में आकर उनसे क्षमा मांगने लगे। कार्तिकेय ने उन्हें क्षमादान तथा अभ्यदान देते हुए छोड़ दिया।

तारकासुर के मारे जाने से प्रसन्न देवगण तथा रुद्र गण आनंद मनाने लगे। कार्तिकेय ने पिता के निकट जाकर उनके चरणों की वंदना की। प्रसन्न होकर पिता ने उसे सीने से लगा लिया। देवगुरु बृहस्पति तथा देवराज इंद्र ने कार्तिकेय की प्रशंसा तथा अर्थर्थना की और उनसे देवलोक चलने का आग्रह किया किंतु उसने उनका आग्रह अस्वीकार कर दिया। वह बोला -

"देवराज! अब हमें आज्ञा दीजिए। मैंने अपना उत्तरदायित्व भली-भाँति पूर्ण कर दिया है। अब आप सभी देवलोक में पधारें। मैं भी माता से

मिलने के लिए अधीर हो रहा हूँ। आप अनुमति दें तो मैं पिताश्री के साथ कैलाश लौट जाऊं।"

"हाँ देवराज! कार्तिकेय ठीक कह रहा है। अब हमें कैलाश जाने दो। वहाँ पार्वती और विनायक हमारे लिए अधीर हो रहे होंगे।"

रुद्रदेव ने मुस्कुरा कर कहा। देवगुरु की सहमति पाकर तथा इंद्रदेव आदि से विदा लेकर रुद्र देव ने अपनी रुद्र सेना के साथ कैलाश की ओर प्रस्थान किया।

कार्तिकेय भी अपने मयूर वाहन पर बैठ कर माता की मधुर स्मृति हृदय में लिए उनसे मिलने के लिए अधीर होकर कैलाश की ओर उड़ चला।

००००

रुद्रायन – 2

अपने दोनों पुत्रों को निकट पाकर पार्वती की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। प्रतिदिन कैलाश पर उत्सव जैसा वातावरण बन गया था। उमा प्रतिदिन स्वयं नये नये पकवान बना कर दोनों पुत्रों को अपने हाथों से ही खिलाती और असीम संतोष का अनुभव करती। स्वयं रुद्रदेव पुत्रों का सानिध्य पाकर अत्यंत प्रसन्नता का अनुभव करते थे। शीघ्र ही विनायक के मित्रों ने कार्तिकेय को अपनी टोली में सम्मिलित कर लिया। कैलाश निवासी गण दोनों भाइयों से असीम प्रेम करने लगे थे। रुद्र के पुत्र होने के साथ ही उनकी अद्भुत शक्ति और बुद्धि- चातुर्य से वे अभिभूत थे। परंतु उमा दोनों भाइयों के प्रेम के मध्य दूरी का अनुभव करती थी।

कार्तिकेय कैलाश पर पूरी तरह सहज नहीं हो पाता था इसे रुद्रदेव भी अनुभव कर रहे थे। उनका सदैव यही प्रयास होता है कि दोनों पुत्र सहज स्वाभाविक रूप से स्वतंत्र होकर कैलाश पर निवास करें किंतु कोई बात थी जो कार्तिकेय को पूर्ण रूप से अभिन्न न होने देती थी। जितना ही माता उसके निकट आने का प्रयत्न करती कार्तिकेय का हृदय अपनी कृतिका माताओं की स्मृति में व्याकुल हो उठता। उसे लगता जैसे उसके प्रति रुद्रदेव तथा पार्वती उतने स्नेहमय नहीं थे जितने विनायक के प्रति।

वह बहुधा सोचता -

"क्यों इतने दिनों तक उसे माता-पिता से दूर रहना पड़ा? जब इतना कष्ट उठा कर उसे कृतिका माताओं ने पाला था तो उसे फिर उन माताओं से अलग क्यों कर दिया गया?"

रुद्रदेव पत्नी को समझाते -

"जब कोई पौधा एक स्थल से निकाल कर कुछ दिनों बाद अन्यत्र रोप दिया जाता है तो उसे उस नवीन भूमि को अपनाने में समय लगता है। कार्तिकेय को भी पर्याप्त समय देना होगा तभी वह हमें अपना सकेगा। तभी वह कैलाश को अपना पायेगा। उसमें क्रोध की मात्रा भी तो कम नहीं है!"

"वह तो आप की ही देन है। आपका क्रोध क्या कम विध्वंसकारी है?"

पार्वती ने हँस कर कहा।

"मुझे अपने क्रोध का संयमन करना आता है उमा! कार्तिकेय को इसे सीखने में अभी बहुत समय लगेगा। सहज ही वह अपने क्रोध पर नियंत्रण नहीं कर पाता इसलिए भी उससे स्नेहपूर्ण और संतुलित व्यवहार करना अपेक्षित है। हमें ध्यान रखना होगा कि कुछ भी ऐसा न होने पाये जिससे उसका हृदय आहत हो।"

"अवश्य स्वामी! हमें ध्यान रखना होगा इसका!"

उमा ने स्वीकार किया।

"यदि हम कृतिकाओं को कुछ दिनों के लिए कैलाश पर बुला लें तो इससे कार्तिकेय को प्रसन्नता होगी।"

रुद्रदेव ने कुछ सोचते हुए कहा।

"हाँ स्वामी! यह अत्यंत उत्तम विचार है। ऐसा ही करना चाहिए। इससे कार्तिकेय सहज हो पाएगा।"

पार्वती उल्लसित हो कर बोली।

उसी दिवस रुद्रदेव ने वीरभद्र को कृतिकाओं को बुला लाने के लिए भेज दिया। कृतिकाओं के शीघ्र आगमन का समाचार पाकर कार्तिकेय प्रसन्न हो गया। उसने सहज भाव से पार्वती से कहा -

"उनके आ जाने पर तो कैलाश पर आनंद छा जाएगा माँ!"

यद्यपि कार्तिकेय ने यह बात सहज भाव से ही कही थी किंतु वह कहीं पार्वती के हृदय को बेध गई। तो क्या अभी कैलाश पर रह कर कार्तिकेय को आनंद की अनुभूति नहीं हो रही है? वह उन्हें अपने माता पिता के रूप में स्वीकार करने के पश्चात भी उनसे हृदय से इतना दूर क्यों है? उसके हृदय में चुभा शल्य माता के लिए अनजान तो नहीं है न! वह जानती है कि कार्तिकेय उनके द्वारा स्वयं को परित्यक्त मानता है। वह उन परिस्थितियों की विषमता को समझना ही नहीं चाहता। वह नहीं जानता कि उसके लिए उसकी माता का मन कितना तड़पता रहा है। उसके पिता की कितनी नींदें न्यौछावर हुई हैं उसकी चिंता में। काश, वह उनके निर्मल प्रेम को समझ पाता।

बहुत दिनों के पश्चात कैलाश पर रुद्रदेव का संपूर्ण परिवार एक साथ था। समस्त चिंताओं से मुक्त और प्रसन्न। कैलाश पर आनंद की अजस्र धारा बह रही थी। रुद्रदेव तथा पार्वती का सारा समय अपने पुत्रों के साथ हँसते खेलते कैसे बीत जाता था वे स्वयं ही नहीं समझ पाते थे। आनंदी तथा अन्य प्रमुख गण प्रातः होते ही कैलाशपुरी के गण बालकों की टोली के साथ उनके द्वार पर आ जाते -

"उठो विनायक! उठो कार्तिकेय! आज हम गंगा की ओर चलेंगे!"

फिर तो पार्वती विभिन्न खाद्य पदार्थों को लिये उनके पीछे पीछे दौड़ती फिरती -

"कार्तिक! विनायक! रुको तो। कुछ खा तो लो।"

परंतु मित्रों के साथ जाने की शीघ्रता में दोनों उनके आग्रह को ठुकरा कर भाग जाते। जाते जाते नंदीश्वर की पुकार उन्हें आश्वस्त करती -

"चिंता न करो। मैं हूँ न ! इन्हें अपने घर से जलपान करा कर ही गंगा की ओर जाने दूँगा और मैं स्वयं भी इनके साथ रहूँगा जिससे इनकी देखरेख कर सकूँ।"

नंदीश्वर की बात पर उमा मुस्कुरा देती। इन बालकों के साथ तो आर्य नंदीश्वर भी बालक ही बन जाते हैं। और वह मध्यान्ह भोजन की व्यवस्था में लग जाती। उन बीहड़ पर्वत श्रृंखलाओं के मध्य निवास करना और भोजन की व्यवस्था करना क्या कम श्रम साध्य था ? फिर भी अपना घर तो अपना ही होता है। वहाँ की कठिनाइयां भी सहज और प्रिय प्रतीत होती हैं।।

सेविकाओं के सहयोग से पार्वती दोपहर तक अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थ तैयार कर लेती। सूरज ढलने लगता तब कहीं अपने इष्ट मित्रों के साथ दोनों भाई वापस लौटते। तब पार्वती उन्हें भाँति भाँति के प्रलोभन देकर भोजन कराती जैसे अभी नन्हे बालक ही हों जिन्हें वह इतना लाड करती थी। कार्तिकेय के रूठने पर वह उसे अनेक प्रकार से मनाती परंतु विनायक भोजन के विषय में कोई आनाकानी नहीं करता था। जो भी माँ

बनाती उसे रुचि पूर्वक भरपेट खा लेता और अपने लंबे उदर पर हाथ फेर कर तृप्ति पूर्ण डकार लेता -

"आनंद आ गया माँ! आपके हाथों में तो साक्षात् अन्नपूर्णा का वास है। न जाने भैया भोजन करने में इतने नखरे क्यों करते हैं?"

माँ हँस कर रह जाती।

वह जानती थी कि विनायक को भूख सहन नहीं होती। भूख लगने पर उसे कच्चा पकका सुस्वाद बेस्वाद जो भी मिल जाता उसे भर पेट खा लेता और फिर मस्त हो जाता। इसीलिए संभवतः पार्वती का उस पर विशेष प्रेम था। उसकी बनायी रसोई का वह रंचमात्र भी व्यर्थ न जाने देता था जबकि कार्तिकेय अनेक मनुहारों के बाद बड़ी कठिनाई से दो-चार ग्रास खा कर उठ जाया करता था। न जाने कृतिकाएँ उसे कैसे संभालती थीं।

शीघ्र ही कृतिकाएँ भी कैलाश पर आ गयीं। उनसे मिल कर जैसे कार्तिकेय बदल ही गया। वह प्रसन्नता से उनकी गोद में सिर रख लेता। कभी कोई उसका मुख चूमती तो कोई हाथ पैर दबाती। इतनी ममता इतना प्यार देख कर पार्वती की आंखें भर आतीं।

"हमारे अहोभाग्य जो आपने हमें बुलाया। इसी बहाने हम कुछ दिन कार्तिकेय के साथ रह लेंगे। हमारा प्यारा सुकुमार पुत्र कैसे इसने उन दुर्दात दैत्यों को मारा होगा? इतने भारी शस्त्रों को उठाने में इसकी भुजाएं थक जाती होंगी। आ पुत्र! हम तेरी भुजाओं पर तेल मल दें। तेरे थके पाँवों को दबा दें। सारे दिन ऊँची नीची पर्वत श्रृंखलाओं पर दौड़ भाग करके थक जाता है तू!"

वे प्यार से कहतीं।

"अब कार्तिकेय बालक नहीं रहा बहनों! योद्धा है वह। देवताओं का सेनापति। अपरिमित शक्ति से संपन्न, अजेय और पराक्रमी।"

पार्वती ने समझाया।

"हमारे लिए तो वह सदा बालक ही रहेगा देवी! हमारे हृदय में तो उसकी बाल-छवि ही निवास करती है।"

कृत्तिकाओं के आने पर पार्वती के तो जैसे सारे कार्य ही समाप्त हो गए। आते ही उन्होंने दोनों कुमारों की संपूर्ण देखभाल तथा उनके समस्त कार्य अपने हाथों में ले लिये। अब क्या करे पार्वती? दोनों बालक भी उन माताओं के साथ प्रसन्न थे। विशेष रूप से कार्तिकेय तो जैसे उन्हीं का होकर रह गया था। उसे तो पार्वती की याद ही नहीं आती थी। विनायक संध्या होते होते माता के पास आ जाता। उसके हाथ से भोजन करने का हठ करता और उसकी गोद में सिर रख कर सो जाता, परंतु कार्तिकेय... वह तो जैसे भूल ही गया था कि उसकी जननी माता पार्वती भी उसी कैलाश पर्वत पर निवास करती है। उसे भी अपने पुत्र का स्नेह और सामीप्य अभीष्ट है।

पार्वती के हृदय में दुख ने डेरा जमा लिया। यद्यपि वह ऊपर से प्रसन्न रहने का अभिन्य करती परंतु उसके हृदय के अंतरदाह को रुद्रदेव ने सहज ही जान लिया। पार्वती को उन्होंने समझाने का प्रयास किया परंतु उसके मन में उत्पन्न दुख का अंकुर न उखाड़ सके। यदा-कदा जब उसका दुख रोष बन कर प्रगट होने लगा तो रुद्रदेव ने कृत्तिकाओं को वापस उनके निवास भेजने का निश्चय किया।

"आप लोगों को अपना घर छोड़े बहुत दिन हो गए हैं। बरसात आने वाली है। ऐसे में आप लोगों को अपने निवास की देखभाल के लिए तथा उसकी सुरक्षा के लिए वापस लौट जाना चाहिए। यह कैलाश भी आपका ही घर है। जब चाहे पुनः आयें।"

रुद्रदेव ने कहा। कृत्तिका बहनों को रुद्रदेव की आज्ञा का पालन करना ही पड़ा। उन्हें पार्वती के व्यवहार की अन्य मनस्कता ने पहले ही शंकित कर दिया था। रुद्रदेव के कहने पर औपचारिकतावश भी पार्वती ने उन्हें रुकने या पुनः आने के लिये नहीं कहा।

दूसरे दिन प्रात ही ससम्मान उनके जाने की व्यवस्था कर दी गयी। अश्रुपूर्ण नेत्रों से बारंबार कार्तिकेय और विनायक का चुंबन करती, प्रणाम करती कृत्तिकाएं लौट गयीं।

"उनके प्रति हम संभवतः अधिक निष्ठुर हो गये।"

रुद्रदेव दुखी होकर बोले।
 "नहीं स्वामी! उन्हें तो जाना ही था। उनके रहने से हम अपने पुत्रों से दूर हो गये थे अतः"

"ऐसा मत कहो। उन्होंने कार्तिकेय का पालन पोषण किया है। वे उसकी माताएं हैं। यदि उन्होंने समय पर कार्तिकेय की सुरक्षा और पालन न किया होता तो हम ने तो उसे खो ही दिया था। कार्तिकेय के पालन के लिए वे स्वयं समाज से बहिष्कृत होकर वन की निवासिनी हो गयीं। उनका हम पर बहुत उपकार है। हमें उनकी ममता और अद्भुत त्याग का सम्मान करना चाहिए।"

रुद्रदेव के समझाने पर उमा का हृदय शांत हो गया। उसे अपने विचारों तथा व्यवहार पर पश्चाताप भी हुआ।

कृतिकाओं को विदा करके वह पुनः पुत्रों के साथ सुख पूर्वक रहने लगी। कार्तिकेय को भी माता के दुख का अनुभव हो गया था अतः वह भी अधिक से अधिक समय पार्वती के निकट रहने का प्रयत्न करता।

एक दिन की बात है - पार्वती गण प्रमुखों की स्त्रियों के साथ उद्यान में बैठी वार्तालाप कर रही थी। विनायक और कार्तिकेय मित्रों के साथ व्यस्त थे। उसी समय गण प्रमुख वीरक ने आकर प्रणाम किया। उसके साथ एक सेवक बड़ा सा टोकरा सिर पर उठाए हुए था।

"कहिए वीरक जी! कैसे पथारे?"

पार्वती ने हँस कर पूछा।

"आपकी कृपा से मेरे पुत्र बंधूक और आर्यक का विवाह निश्चित हो गया है। आगामी पूर्णिमा को विवाह का शुभ मुहूर्त निकला है। इसी कारण निमंत्रित करने आया हूँ। आप तथा प्रभु रुद्रदेव के आशीष के बिना यह शुभ कार्य संपन्न न हो सकेगा। आप अवश्य आइएगा।"

वीरक ने नम्रता पूर्वक हाथ जोड़ कर कहा और एक हल्दी की गांठ और कुछ दूब के तिनके पार्वती के हाथ में रख दिये। साथ आये सेवक ने मिठान से भरा हुआ टोकरा सामने रख दिया।

"प्रभु के दर्शन करने पुनः आऊंगा माता! संपूर्ण परिवार सहित

रुद्रायन – 2

निमंत्रण स्वीकार करो।"

"अवश्य गण प्रमुख! हम अवश्य आएगे।"

पार्वती ने हल्दी दूब स्वीकार कर ली।

"अब आज्ञा दें माता!"

प्रणाम करके वीरक चले गये।

कुछ देर बाद रुद्रदेव तथा कार्तिकेय और विनायक भी वहीं आ पहुंचे। पिटारा देख कर विनायक ने अपनी लंबी नाक हिला कर गहरी सांस ली।

"अहा, बड़ी अच्छी सुगंध आ रही है। अवश्य इस पिटारे में पकवान होगा। माता, आज आपने हमारे लिए मिष्ठान तैयार किया है?"

माता के निकट आकर विनायक ने पूछा।

"नहीं पुत्र! यह मिष्ठान तो गण प्रमुख वीरक ले आए थे। लो, तुम दोनों खाओ।"

पार्वती ने पिटारा खोल कर पुत्रों के सम्मुख रख दिया।

कार्तिकेय ने एक लड्डू उठा कर रुद्रदेव को देते हुए कहा।

"प्रारंभ कीजिए पिताश्री!"

"अवश्य पुत्र!"

रुद्रदेव ने लड्डू मुंह में डाल लिया। कार्तिकेय और विनायक ने भी एक-एक लड्डू उठा लिया।

"आज कोई विशेष बात थी क्या?"

रुद्रदेव ने पूछा।

"हाँ स्वामी! उन्होंने अपने पुत्रों बंधूक और आर्यक का विवाह निश्चित कर दिया है। आगामी पूर्णिमा का मुहूर्त है। उसी के लिए निमंत्रित कर गये हैं। यह मिष्ठान भी उसी शुभ निमंत्रण का अंग है।"

पार्वती ने हँस कर कहा।

"परंतु माँ! बंधूक और आर्यक ये दोनों तो आयु में मुझसे भी छोटे हैं। उनका विवाह हो रहा है?"

विनायक ने पूछ लिया।

"हां पुत्र! आयु में तुम से कम है तो क्या हुआ? युवा तो हो ही गए हैं। दोनों सुंदर हैं और जीविकोपार्जन में समर्थ भी।"

रुद्रदेव बोले।

"तो पिताश्री! हमारा विवाह भी करवा दीजिए न! हम भी तो सुंदर, योग्य, सुशिक्षित और सदाचारी हैं।"

विनायक ने कहा।

"और जीविकोपार्जन में समर्थ भी। पिताश्री मैं देवसेनापति हूँ और अपने परिवार का भरण पोषण कर सकता हूँ।"

कार्तिकेय बोल पड़ा।

"मुझे भी तो आपने गणनायक बना दिया है पिताश्री! अब आप हमारा विवाह करवा दीजिए।"

विनायक ने कहा।

"पहले मेरा विवाह होगा।"

कार्तिकेय बोला।

"नहीं, पहले मैं विवाह करूँगा।"

विनायक बोल पड़ा।

"मैं ज्येष्ठ हूँ इसलिए पहले मेरा विवाह होगा। है न माँ?"

कार्तिकेय ने माँ का हाथ पकड़ कर कहा।

"नहीं माँ! पहले मैं ही विवाह करूँगा।"

विनायक ने हठ किया।

"शांत ... शांत हो जाओ पुत्रों!"

रुद्रदेव ने दोनों को शांत करते हुए कहा -

"तुम दोनों ही युवा हो। सुंदर, समझदार, बुद्धिमान और विवाह योग्य हो। तुम दोनों का ही हमें विवाह करना है परंतु पहले हम उसी का विवाह करेंगे जो....."

रुद्रदेव विचार में पड़ गये। क्या कहें इनसे?

"जो क्या पिताश्री?"

दोनों ने एक साथ पूछा।

रुद्रायन – 2

"जो..... जो सबसे पहले पृथ्वी की परिक्रमा करके हमारे पास लौट आएगा उसी का विवाह पहले किया जाएगा।"

रुद्रदेव ने विचार कर कहा।

वे जानते थे कि कार्तिकेय ज्येष्ठ है और उसका विवाह प्रथम होना चाहिए किंतु विनायक को रुष भी नहीं करना चाहते थे। अपने विचित्र रोग के कारण वह कुछ हठी भी हो गया था और रुद्रदेव नहीं चाहते थे कि वह किसी बात से आहत हो। कार्तिकेय का मयूर वाहन अत्यंत तीव्र गति वाला था जबकि विनायक का मूषक वाहन आरामदायक होते हुए भी मंद गति वाला था। इस प्रकार निश्चित ही था कि कार्तिकेय पहले पृथ्वी की परिक्रमा करके वापस आ जाएगा। तब तक योग्य कन्याओं का चयन भी कर लिया जाएगा। रुद्र देव की चतुराई से पार्वती भी प्रसन्न हुई।

"तुम दोनों कल प्रातः सूर्योदय होते ही प्रस्थान कर जाना।"

"अवश्य पिताश्री!"

दोनों अपने अपने अभियान की तैयारी में लगे।

प्रातः सूर्य का लाल गोला आकाश में दिखाई देते ही कार्तिकेय ने अपने मयूर वाहन पर पृथ्वी की परिक्रमा के लिए प्रस्थान किया। उसके जाने के पश्चात विनायक ने भी अपने मूषक वाहन पर अपनी यात्रा आरंभ की।

पुत्रों के जाने के बाद पार्वती को चिंतित देख कर रुद्रदेव ने पूछा -

"अब क्या हुआ उमा? इतनी चिंता क्यों? पुत्र समर्थ हैं और वीर भी। इसी बहाने वे पृथ्वी पर पर्यटन करके उसके विभिन्न भागों, वहाँ के निवासियों तथा उनकी संस्कृतियों की झलक भी देख लेंगे।"

"मेरी चिंता का विषय दूसरा है स्वामी!"

"वह क्या?"

"हमने पुत्रों के विवाह का वचन तो दे दिया किंतु उनके लिए वधुएँ कहाँ हैं? उन्हें भी तो ढूँढ़ना होगा।"

"उसकी चिंता तुम मत करो। विवाह संयोग से होते हैं। जिसका जिस से जिस समय जिस विधि से विवाह होना है वह उसी समय वैसे ही होगा। जो पूर्व निर्धारित है उसके लिए चिंता क्यों? जब वह समय आएगा तब वधुएँ भी मिल जाएंगी। अभी तो उनके लौटने में भी पर्याप्त समय लगेगा।"

पार्वती पूर्ण रूप से संतुष्ट तो न हुई परंतु उस समय शांत हो गयी। पुत्रों के लौटने तक वह योग्य वधुएँ अवश्य ढूँढ़ लेगी इसका उसे पूर्ण विश्वास था।

"पुत्रों के लौटने में तो बहुत समय लग जाएगा स्वामी !"

पार्वती ने चिंता व्यक्त करते हुए कहा।

"हाँ, कई दिन लग जाएंगे। संभवतः पूरा वर्ष भी कम पड़ जाएगा उन्हें परिक्रमा करने में पृथ्वी की परिक्रमा करना क्या सरल है?"

रुद्रदेव मुस्कुरा कर बोले।

"तो आपने उनके सामने ऐसी कठिन परीक्षा क्यों रखी?"

"परीक्षा? नहीं उमा! यह तो उनके लिए भावी जीवन की तैयारी है। इस प्रकार वे पृथ्वी का भ्रमण कर सकेंगे तथा उसकी वास्तविकता को जान सकेंगे। विवाह के बाद क्या उनके लिए पर्फटन सहज हो पाएगा? गृहस्थी के जंजाल पता नहीं उन्हें इसका कितना अवसर दे पाएं"

रुद्रदेव के तर्के ने पार्वती को निरुत्तर कर दिया।

कार्तिकेय और विनायक को पृथ्वी की परिक्रमा करने के लिए गए हुए अभी दस दिन ही हुए थे। रुद्र देव पार्वती के साथ अपने प्रिय विहार उद्यान में प्रस्तर शिला पर बैठे पुत्रों की क्रियाओं तथा वीरता पूर्ण कार्यों का स्मरण कर रहे थे। उन्हें अभी भी विनायक के रोग की चिंता थी जिसने उनके पर्वत प्रदेश के कई व्यक्तियों को अपने अधिकार में ले रखा था। कितने ही विरूप नर नारी बालक बालिकाएं उनकी नगरी में निवास करते थे। किसी का पेट निकला हुआ था तो किसी का पेट पीठ से चिपका प्रतीत होता था। किसी का अस्थि कंकाल ऐसे दिखाई देता था जैसे उस पर चमड़ी मढ़ दी गयी हो तो किसी की स्थूलता दूर से ही दिखाई पड़े।

रुद्रायन – 2

जाती थी। किसी का हाथ बढ़ कर पैरों के पंजों का स्पर्श करने लगा था तो किसी के सिर का कपाल शंकु के आकार का हो गया था।

इन विरूपताओं की औषधि न उनके पास थी और न ही उनके वैज्ञानिक औषधि ज्ञाता ऐसी किसी औषधि का अनुसंधान या निर्माण ही कर पाये थे। वह तो यह तक नहीं जान सके थे कि किस वनस्पति, फल आदि के सेवन के कारण ऐसी विरूपता विकसित हो रही थी। कहीं उनके मानसरोवर के जल में ही तो कोई ऐसा तत्व नहीं था जो ऐसे विकृतियों को जन्म दे रहा था।

नंदीश्वर के कान वृषभ के कानों के समान लंबे थे तो शुक की नाक तोते के समान झुक कर उसकी चिबुक का स्पर्श करती थी। और यही विकृति उनके पुत्र विनायक को भी लंबोदर और हाथी की सूँड के समान विशाल नाक का स्वामी बना गयी थी।

"मुझे फिर अपनी औषधि निर्माण शाला में जाना होगा। मैं वहां जाकर विनायक तथा उसके समान अन्य विरूपणों की विरूपता को नष्ट करने वाली औषधि तैयार करूँगा। अपने निरीक्षण में मैं प्रयोग कराऊंगा।"

रुद्रदेव विचार पूर्ण स्वर में बोले।

"आप के वैज्ञानिक सक्षम हैं प्रभु! आप चिंतित न हों। जब भी अवसर मिलता है आप उन्हें मार्गदर्शन देते ही रहते हैं। आप"

उसी समय सेवक ने आकर कहा -

"प्रणाम प्रभु! प्रजापति विश्वरूप आपके दर्शन के अभिलाषी हैं।"

"प्रजापति विश्वरूप? उन्हें सादर लिवा लाओ चर!"

रुद्र देव ने आदेश दिया।

"जो आज्ञा प्रभु!"

चर के जाने पर रुद्रदेव बोले -

"तुम्हारी बात तो अधूरी ही रह गयी प्रिये।"

"कोई बात नहीं मैं फिर कहूँगी।"

तभी विश्वरूप ने उद्यान स्थल में प्रवेश किया।

"आइए प्रजापति! पधारिए!"

"प्रणाम प्रभु! प्रणाम देवी!"

प्रजापति ने दोनों को प्रणाम किया।

"पधारिए प्रजापति! कुछ देर विश्राम कीजिए। पार्वती! प्रजापति के लिए मधुपर्क की व्यवस्था करो।"

"जो आज्ञा स्वामी!"

पार्वती ने उठते हुए कहा।

"नहीं नहीं, मैं स्वस्थ हूँ। औपचारिकता की कोई आवश्यकता नहीं है प्रभु!"

विश्वरूप में संकोच से कहा।

"यह औपचारिकता नहीं आवश्यकता है प्रजापति! पार्वती का बनाया हुआ मधुपर्क आपकी थकान दूर कर देगा।"

रुद्रदेव ने उन्हें अपने सम्मुख आसन देते हुए कहा। उसी समय सेवक ने उन्हें जल ला कर दिया। पार्वती अपनी देखरेख में मधुपर्क तैयार करवा लायी। जलपान से निवृत्त होकर वे कुछ स्वस्थ हुए तो रुद्रदेव ने पूछा -

"कहिए प्रजापति! कैसे कष्ट किया?"

"मैं आपसे कुछ निवेदन करना चाहता था।"

प्रजापति विश्वरूप ने कहना आरंभ किया परंतु तभी उनकी वार्ता में व्यवधान पड़ गया। उसी समय विनायक ने आकर माता-पिता की चरण वंदना की।

"अरे विनायक! तुम इतनी शीघ्रता से लौट आये? पुत्र! सब ठीक तो है न?"

माता ने व्याकुल होकर पूछा।

"सब ठीक है माता! आपके और पिताश्री के आशीर्वाद से मैं पूर्ण स्वस्थ और प्रसन्न हूँ। मैं आपकी आज्ञानुसार परिक्रमा पूर्ण कर आया हूँ।"

विनायक ने सस्मित उत्तर दिया।

रुद्रायन – 2

"परिक्रमा पूर्ण कर आए? वह भी इतनी शीघ्र? यह कैसे संभव हो सकता है पुत्र?"

चकित होकर रुद्रदेव ने पूछा।

"मैं असत्य वादन नहीं कर रहा हूँ पिताश्री! मैं आप द्वारा निर्दिष्ट परिक्रमा पूर्ण कर आया हूँ।"

"परंतु कैसे?"

"माता! आपने ही तो बताया है कि जन्मदात्री माता और जन्मभूमि संपूर्ण भूलोक से अधिक गरिमामयी और महीयसी है। शास्त्रों तथा वेदों में भी माता को पृथ्वी से महान बताया गया है। पिता परम ब्रह्म के समान होता है। वह आकाश और माता पृथ्वी की प्रतिनिधि होती है। यही विचार करके मैंने कैलाशपुरी की परिक्रमा की है। कैलाशपुरी हमारी जन्मभूमि है और उसमें आप दोनों मेरे माता-पिता पृथ्वी तथा ब्रह्म स्वरूप विद्यमान हैं। अतः मेरी परिक्रमा संपूर्ण पृथ्वी के परिक्रमा से भी अधिक है। पिताश्री! आप ही बतायें, क्या मैं असत्य कह रहा हूँ?"

विनायक ने हाथ जोड़ कर पूछा।

"नहीं पुत्र! तुम्हारा कथन सर्वथा सत्य और उचित है। जननी तथा जन्म भूमि की परिक्रमा संपूर्ण परिक्रमाओं से अधिक मानी जाती है। निश्चित रूप से तुम मेरी आज्ञा पालन में समर्थ हुए हो।"

"पिताश्री!"

"हाँ पुत्र! आज मुझे विश्वास हो गया है कि तुम स्वस्थ और शक्तिशाली होने के साथ बुद्धिमान और शास्त्रज्ञ भी हो। यह सत्य है कि जिसके पास बुद्धि बल है वही वास्तव में बलवान और शक्ति-संपन्न होता है। बिना बुद्धि के बल का उचित प्रयोग भी संभव नहीं होता। संकट पड़ने पर मनुष्य अपनी बुद्धि के द्वारा ही मुक्ति प्राप्त कर लेता है और अपनी पराजय को भी विजय में बदल देता है। माता पिता की आज्ञा का पालन करना पुत्र का धर्म है। माता पिता का स्थान सबसे ऊपर होता है। उनकी परिक्रमा करना पृथ्वी की परिक्रमा करने से भी बढ़ कर है। तुमने

कार्तिकेय से पहले अपने बुद्धि-बल से पृथ्वी की परिक्रमा पूर्ण कर ली है। यह तुम्हारा वचन सत्य है।"

रुद्रदेव ने प्रसन्न होकर कहा।

"तो अब आप लोग अपना वचन पूर्ण कीजिए पिताश्री!"

"अवश्य पुत्र! अब तुम तनिक विश्राम करो। हम प्रजापति विश्वरूप से उनके आगमन का कारण जानना चाहते हैं।"

"जो आज्ञा पिताश्री!"

विनायक ने उन्हें प्रणाम किया और प्रसन्न होकर आवास की ओर चला गया।

"क्षमा करें प्रजापति! विनायक के आगमन से आपकी बात अधूरी ही रह गयी थी। बताइए, आपके आगमन का क्या प्रयोजन है?"

रुद्रदेव ने प्रजापति विश्वरूप की ओर उन्मुख होकर पूछा।

"मैं तो आपसे अपनी पुत्रियों सिद्धि और बुद्धि के लिए विवाह के संबंध में परामर्श करने ही आया था। वे दोनों युवावस्था में पदार्पण कर चुकी हैं और मैं उनके लिए वर ढूँढ़ रहा हूँ। यहाँ आपके पुत्र विनायक को देख कर और उसकी विद्वत्ता का परिचय पा कर मैं अत्यंत प्रसन्न हुआ। प्रभु! अब यदि आपकी आज्ञा मिले, आप सहमत हों तो मैं अपनी दोनों पुत्रियों का विवाह आपके पुत्र विनायक से करना चाहता हूँ। आप उन्हें पुत्रवधू के रूप में स्वीकार करके मेरा मनोरथ पूर्ण करो।"

"आपकी दोनों पुत्रियों का विवाह विनायक से?"

"हाँ प्रभु! मेरी दोनों पुत्रियों का परस्पर अत्यधिक प्रेम है। वे एक दूसरी के बिना नहीं रह सकतीं इसलिए उन्होंने एक ही वर से विवाह करने का निश्चय कर रखा है।"

प्रजापति विश्वरूप ने बताया।

"आप की पुत्रियाँ सुंदरी हैं प्रजापति! आप ने विनायक को तो देखा ही है। वह लंबोदर है और उसकी नासिका"

"अपने पुत्र को विरूप न कहें प्रभु! पुरुष का सौंदर्य उसकी बुद्धि चतुरता और बलिष्ठता में होता है। शारीरिक रूप से सुंदर, सुदर्शन पुरुष

रुद्रायन – 2

यदि बुद्धिहीन हो, दुराचारी और दुर्व्यस्ती हो तो क्या वह ग्राह्य होगा? पुरुष का सौंदर्य उसकी बुद्धि, शक्ति और चातुर्य है। आपके पुत्र में यह सभी सद्गुण हैं। मुझे विश्वास है कि मेरी पुत्रियाँ आपके पुत्र विनायक को पति रूप में पाकर अत्यंत प्रसन्न तथा सुखी हो जाएंगी।"

"यदि ऐसी बात है तो हमें यह संबंध स्वीकार है प्रजापति! आप शीघ्र ही विवाह की व्यवस्था करें।"

रुद्रदेव की सहमति पाकर प्रजापति विश्वरूप ने अपने वस्त्रों में से निकाल कर नारियल और पान रुद्रदेव को समर्पित किया गया। उन्होंने दोनों हाथों से उसे ग्रहण करके मस्तक से लगा लिया। दोनों संबंधी गले मिले। विश्वरूप रुद्रदेव को प्रणाम करके विदा हुए।

पार्वती अभिभूत सी समस्त घटनाक्रम को स्तब्ध खड़ी देखती रह गयी। रुद्रदेव ने उसे टोका तो सचेत होकर वह बोल पड़ी -

"हां स्वामी!"

"किस चिंता में पड़ गयी तुम?"

"कोई चिंता नहीं स्वामी! मैं तो इस घटनाक्रम को ही देखती रह गयी। सब कुछ अचानक इतनी शीघ्र ... विनायक का आगमन प्रजापति का आगमन उसे जामाता के रूप में स्वीकार करना"

"समय सबसे अधिक बलवान होता है। उसकी गति को कोई नहीं जान सकता। मैंने कहा था न कि जो कार्य जब, जैसे होना है वह अपने निर्धारित समय पर उसी प्रकार संपन्न होता है। उसमें मनुष्य का हाथ नहीं होता। सब कुछ पूर्व नियोजित है। चलो, विश्राम कर लो। हमें भी तो विनायक के विवाह की व्यवस्था करनी है।"

"अवश्य स्वामी!"

रुद्रदेव का अनुगमन करती पार्वती प्रासाद की ओर चली गयी।

विनायक का विवाह प्रजापति विश्वरूप की पुत्रियों सिद्धि तथा बुद्धि के साथ विधि पूर्वक संपन्न हुआ। विवाह का आयोजन बड़े विशाल स्तर पर किया गया। विवाह में समस्त देवों तथा रुद्रदेव के मित्रों ने भाग लिया और वर-वधू को अनेक प्रकार के उपहार तथा आशीर्वाद दिये। विवाह में

कार्तिकेय की कमी सब को खलती रही परंतु इस विषय में कुछ भी करना संभव नहीं था। कार्तिकेय पता नहीं कब तक लौटता। तब तक अनिश्चितकालीन प्रतीक्षा के लिए विश्वरूप तैयार नहीं थे और इसका कोई औचित्य भी नहीं था।

विवाह के उपरांत नववधुएँ कैलाशपुरी में आ गयीं। पार्वती ने उन्हें अपना प्रिय आमोद-भवन मुंह दिखाई में दे दिया। विनायक को रहने के लिए नवीन गृह की आवश्यकता थी जहां वह अपनी दोनों पत्नियों के साथ सुख पूर्वक निवास कर सके।

वर्ष बीतते न बीतते विनायक की दोनों पत्नियों ने कुछ ही दिनों के अंतराल से एक एक पुत्र को जन्म दिया। उनके नामकरण के लिए स्वयं ब्रह्मदेव को आमंत्रित किया गया। ब्रह्मदेव ने सिद्धि से उत्पन्न पुत्र का नाम शुभ तथा बुद्धि से उत्पन्न पुत्र का नाम लाभ रखा। शुभदेव और लाभदेव तथा उनकी माताओं के साथ विनायक गृहस्थी का सुख भोगने लगे।

समय पंख लगाकर उड़ने लगा। रुद्रदेव तथा पार्वती दोनों का समय पुत्र, पुत्रवधुओं तथा पौत्रों के साथ आनंद विहार में बीत रहा था। पार्वती और रुद्रदेव को पौत्रों के रूप में खेलने के लिए जैसे खिलौने मिल गये थे। उमा दोनों बालकों को अपने पास ही रखती थी बहुधा। उनके लालन-पालन में उसे विशेष आनंद की अनुभूति होती थी। माता का हृदय कार्तिकेय के लिए कसकता रहता लेकिन वह कर भी क्या सकती थी प्रतीक्षा करने के अतिरिक्त। बस यही विचार करती रहती कि कार्तिकेय आ जाए और उसके लिए भी वह एक प्यारी सी वधू ढूँढ लाये।

पार्वती और रुद्रदेव शुभदेव को गोद में लिए बैठे थे और लाड कर रहे थे। अचानक कार्तिकेय ने आकर उनकी चरण वंदना की।

"प्रणाम माता! प्रणाम पिताश्री!"

"चिरंजीवी हो पुत्र! बहुत दिन बिता दिये तुमने। स्वस्थ तो हो न?"

रुद्रदेव ने पूछा।

"आपकी कृपा है पिताश्री! पृथ्वी की परिक्रमा करने में ही लगा रहा। आपकी आज्ञा पूरी करने के उपरांत लौट आया हूँ पिताश्री!"

कार्तिकेय ने कहा। पुनः माँ की गोद से नन्हे लाभदेव को प्यार करते हुए पूछा -

"ये दोनों किसके पुत्र हैं माँ?"

"विनायक के।"

"क्या? विनायक का विवाह हो गया? उसके पुत्र भी हो गये? माँ! आप लोगों ने तो कहा था कि जो पृथ्वी की परिक्रमा पूर्ण करके पहले लौटेगा उसी का विवाह आप लोग पहले करेंगे। विनायक तो पृथ्वी की परिक्रमा करने गया ही नहीं फिर भी आप लोगों ने मुझे यहां से हटा कर दूर भेज दिया और उसका विवाह कर दिया।"

कार्तिकेय क्रुद्ध होकर बोला।

"तुम गलत समझ रहे हो पुत्र! विनायक तुमसे पहले ही परिक्रमा करके लौट आया था।"

"यह असंभव है।"

"नहीं पुत्र! विनायक ने अपनी बुद्धि का प्रयोग करके अपनी जन्मभूमि कैलाशपुरी की परिक्रमा माता-पिता के सहित कर ली थी। इस प्रकार वह पृथ्वी की परिक्रमा करने का फल पा चुका था।"

रुद्रदेव ने समझाया।

"यह अन्याय है पिताश्री! आप लोगों ने सदा से मेरे साथ इसी प्रकार अन्याय किया है। मैं अब यहां कैलाश पर नहीं रहूँगा। आप लोग अपने प्रिय पुत्र तथा उसके परिवार के साथ सुखपूर्वक रहें। जहाँ मेरे प्रति प्रेम, सम्मान तथा अपनापन नहीं हो वहां मैं किसी प्रकार नहीं रह सकूँगा।"

कार्तिकेय ने क्रोध से पैर पटकते हुए कहा।

"यह तुम किस प्रकार की बातें कर रहे हो? क्या पिता से इस प्रकार बात की जाती है? तुमने पिता का अपमान किया है कार्तिकेय!"

पार्वती बोलती।

"मैंने किसी का अपमान नहीं किया है माँ! केवल सत्य कहा है। यदि सत्य कथन को आप अपमान समझती हैं तो आपकी इच्छा। मैं जा रहा हूँ। यदि कभी मेरी आवश्यकता आपको पड़ी और मुझे ज्ञात हुआ तो प्रस्तुत हो जाऊंगा अन्यथा... "

कार्तिकेय ने दोनों को प्रणाम किया और उन्हें हतप्रभ छोड़ कर अपने मयूर वाहन में बैठ कर पूर्व दिशा की ओर उड़ गया। वे निर्निमेष उसे जाता देखते रह गये।

००००

कैलाशपुरी पुनः अपनी दिनचर्या जीने लगी। कार्तिकेय के आने और फिर रुष हो कर चले जाने का कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं दृष्टिगत होता था। विनायक अपने परिवार के साथ अपने नवीन आवास में सुखमय जीवन व्यतीत कर रहा था। रुद्रदेव और पार्वती उसके सुंदर भोले पुत्रों की बाल क्रीड़ाओं में अपना दुख भूलने का प्रयत्न कर रहे थे परंतु पार्वती कार्तिकेय के रोषपूर्वक चले जाने की घटना से अत्यधिक दुखी थी। यद्यपि वह सदैव रुद्रदेव के सम्मुख मुस्कुराती रहती, राजकार्यों तथा पालित पशुओं के मध्य स्वयं को व्यस्त रखती। कभी दास दासियों के जीवन की समस्याएं सुलझाती तो कभी गोशाला में जाकर बछड़ों को अपने हाथों से चारा खिलाती। उसकी इस व्यस्त दिनचर्या में भी उसके हृदय की पीड़ा यदा-कदा छलक ही पड़ती। तब छलकते नेत्रों को वह चुपके से पोंछ लेती।

रुद्रदेव से पत्नी की व्यथा छिपी नहीं थी। वह स्वयं चाहते थे कि पार्वती जीवन के इस निर्मम सत्य को स्वीकार कर ले। संभवतः उनके भाग्य में उनके ज्येष्ठ पुत्र का प्रेम और साथ ही नहीं था तभी तो शैशवावस्था में ही वे उसे खो बैठे थे और जब इतने वर्षों बाद उसे प्राप्त भी किया तो भी उसके हृदय में अपना वह स्थान न बना सके जो विनायक के हृदय में उनके लिए था। यह कार्तिकेय इतना अभिमानी क्यों है? इतना क्रोध? जरा जरा सी बात पर रुठ जाना और एकांतवास के लिए चल देना..।

पार्वती को अकेली उद्यान में अनमनी सी बैठी देख कर रुद्रदेव ने पुकारा -

"उमा!"

"अँ... हाँ स्वामी, आप? यहाँ?"

चौंक पड़ी वह।

"हाँ प्रिये! तुम्हें अकेली बैठी देख कर चला आया। उदास हो?"

"नहीं प्रभु! स्वस्थ हूँ मैं और प्रसन्न भी। आप हैं, विनायक है, वधुएँ हैं। नगर निवासी और दास दासियां सभी तो हैं। मैं प्रसन्न हूँ इनके साथ। फिर आप हैं तो"

"मुझसे भी अपना कष्ट नहीं कहोगी?

"....."

"तुम्हारा यह मौन तुम्हारी मुखरता से अधिक प्रभावशाली है उमा! तुम अभिन्न हो मुझसे। अर्धांगिनी हो मेरी। तुम्हारी व्यथा को क्या मैं न जानूँगा?"

"....."

पार्वती मौन ही रही।

"बहलाने का प्रयास करने पर भी मोहग्रस्त हृदय मानता नहीं। कार्तिकेय के इस प्रकार रुष्ट हो कर चले जाने से मुझे भी कम कष्ट नहीं हुआ है किंतु अब वह बच्चा नहीं रहा। समर्थ पुरुष बन गया है। उसके अपने विचार हैं, अपनी धारणाएँ हैं और अपनी इच्छाएँ भी हैं।"

"जानती हूँ स्वामी! उसकी इच्छाओं का सम्मान भी करती हूँ किंतु इस प्रकार से अकारण रुष्ट होकर कैलाश का त्याग कर देना? यह तो सर्वथा अनुचित है न?"

"हां प्रिये! किन्तु उसका आवेग से भरा हृदय इसे अनुचित नहीं समझता। उसे तो यही लगता है कि हमने उसके साथ अन्याय किया है। हम विनायक का पक्षपात करते हैं। उसने हमारी पूरी बात सुने बिना ही निर्णय ले लिया। हम क्या करते?"

"मैं आपको दोष नहीं दे रही हूँ स्वामी! जो जीवन उसने जिया है उसके कारण ही संभवतः उसका ऐसा विद्रोही और कठोर स्वभाव हो गया है। उसके विद्रोह के सम्मुख हमारी ममता छोटी पड़ गयी है। तभी तो"

पार्वती के नेत्र छलछला आये।

रुद्रायन – 2

"इस प्रकार दुख मत करो उमा! वह युवक है और अति उत्साही भी। अभी क्रोध में है। जाने दो उसे। क्रोध शांत होने पर जब उसे अपनी भूल समझ में आ जाएगी तो वह स्वयं लौट आएगा।"

रुद्रदेव ने समझाया।

"वह लौट तो आएगा न प्रभु?"

पार्वती व्यग्र हुई।

"हाँ, अवश्य लौटेगा। अपने माता-पिता से अधिक दिनों तक दूर नहीं रह सकेगा तुम्हारा पुत्र। जड़ों से कट कर कितने वृक्ष पल्लवित, पुष्पित हो पाते हैं? और फिर हमारा आशीर्वाद और स्नेह सदैव रक्षक बन कर उसके साथ रहता है यह क्यों भूल जाती हो?"

रुद्रदेव ने पत्नी के आँसू पोछ कर उसे प्रकृतस्थ करने का प्रयत्न किया।

"तुम यहाँ इस शिला पर बैठो। मैं तुम्हारे लिए जल लाता हूँ।"

"दासी को"

"नहीं प्रिये! दासी को बुला कर हम अपना यह दुर्लभ एकांत क्यों भंग करें? बस, तुम बैठो तो।"

रुद्रदेव ने उमा को स्फटिक शिला पर बैठा दिया और निकट स्थित सरोवर की ओर चले गये। एक बड़े से केले के पत्र का दोना बना कर उन्होंने उसमें शीतल जल भरा और पार्वती के पास आ कर उसकी ओर बढ़ाया।

"लो, मुंह खोलो। मैं पानी धार बना कर मुख में डालता हूँ।"

उमा ने मुख ऊपर उठा कर खोल दिया। रुद्रदेव उसके मुख में जल की धारा गिराने लगे। दोनों के नेत्र एक दूसरे के नेत्रों में उलझ कर रह गये।

कितने दिनों बाद रुद्रदेव की इस छोटी सी चेष्टा ने पार्वती को वन प्रदेश में बिताए गये दिनों की याद दिला दी।

"स्वामी!"

जल पीकर वह बोली।

"हाँ प्रिये! कहो।"

"इस पत्रद्रोण से जल पी कर प्रमदावन में बिताये दिनों की स्मृति हो आयी। कितने सुखद थे वे दिवस।

"हाँ प्रिये! तब वहाँ हम थे और प्रकृति का प्रांगण। कितने सुखद थे वे क्षण, वे घटनाएं, वे दृश्य।"

"हूँ!"

छोटी सी हुंकार भर कर पार्वती विगत स्मृतियों में डूब गयी।

"हम उन दिनों को पुनः जीने का प्रयत्न क्यों न करें उमा?"

कुछ देर बाद बोले रुद्रदेव।

"हम?"

"हाँ, हम। मैं और तुम। चलो, हम फिर कुछ दिनों के लिए उसी प्रमदावन की ओर निकल चलें। इससे तुम्हारा हृदय भी शांत हो जाएगा और हमें नवजीवन का संबल भी मिलेगा। वहाँ रह कर हमें इस पर्वतीय व्याधि की औषधि भी मिल जाये सम्भवतः।"

"अच्छा प्रस्ताव है। कब चलेंगे?"

उमा ने पूछा।

"अब तो रात होने वाली है। हम कल प्रातः ही वहाँ चलेंगे। थोड़ी सी जीवनोपयोगी वस्तुएं साथ ले चलेंगे। कुछ दिन वनवास का आनंद लेंगे।"

रुद्रदेव की योजना से पार्वती का हृदय खिल उठा। कुछ दिन इसी बहाने वह अपने पति के दुर्लभ संग का आनंद तो उठा सकेगी।

नंदीश्वर ने उनके प्रस्ताव का थोड़े से संशोधन के साथ समर्थन कर दिया। रात में ही उसने आवश्यक वस्तुएं बांध कर सेवकों को सौंप दी। दो चर उनका सामान लेकर प्रमदावन जाने वाले थे। स्वयं नंदीश्वर उनके साथ जाकर प्रमदावन के आवास को व्यवस्थित करने के लिए जा रहे थे। उन्होंने रुद्रदेव को दो दिन बाद देवी पार्वती के साथ वहाँ आने के लिए मना लिया था। इस बीच में वहाँ जाकर उनके लिए उस वनवास को सुविधाजनक बनवा देते। वे स्वयं भी वहाँ उनके साथ ही वन में रह कर उनकी देखरेख करना चाहते थे किंतु रुद्रदेव ने इसे स्वीकार नहीं किया।

दूसरे दिन प्रात ही रुद्रदेव ने दो सेवकों के साथ सारी सुविधा जनक आवश्यक वस्तुएं भिजवा दीं। दोपहर बाद वे अन्य दो सेवकों को साथ लेकर बन की ओर चले गए। दो दिनों में वहाँ की सारी व्यवस्था ठीक करा दी गयी। टूटी फूटी कुटिया को मरम्मत करके मिट्टी से पोत दिया गया। ऊबड़ खाबड़ मार्गों को यथासंभव सुगम बना दिया गया और जलाशय की ओर जाने का मार्ग व्यवस्थित करके सरोवर के किनारे ठीक कर दिए गए। वहाँ फलदार वृक्षों की बहुतायत थी और खाने योग्य कंद आदि भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थे। संपूर्ण व्यवस्था कर के तीसरे दिन नंदीश्वर लौट आए। सेवकों को उन्होंने कुछ दूर पर ठहरा दिया जिससे आवश्यकता पड़ने पर वे रुद्रदेव तथा देवी पार्वती की सहायता के लिए उपलब्ध हो सकें।

दो दिन बाद अपने पवनहंस नामक प्रिय अश्व पर बैठ कर रुद्रदेव पत्नी सहित प्रमदावन की ओर चले। जब वे निर्दिष्ट स्थल पर पहुंचे, शाम ढलने लगी थी। उस पुराने आवास को देख कर पार्वती का हृदय प्रसन्न हो गया। नन्दीश्वर ने वहाँ उनकी सभी आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए व्यवस्था कर दी थी। कुटिया तथा उसके आसपास का स्थान समतल कर दिया गया था। कुटिया साफ और पीली मिट्टी से लीप पोत कर सुंदर बना दी गयी थी।

पीछे के छोटे कक्ष में सूखी लकड़ियां भर दी गयी थीं। सामने का कक्ष थोड़ा बड़ा था। उसमें पड़ी विशाल चौरस शिला पर हिरण के चर्म का बिछौना पड़ा था। एक ओर दो घड़ों में स्वच्छ जल भरा था और कुछ स्वादिष्ट मीठे फल भी एक ओर दीवार पर खूँटी के सहारे लटकी झोली में रखे हुए थे।

"वाह, नंदीश्वर ने तो जंगल में मंगल कर दिया है!"

रुद्रदेव बोल पड़े।

"हाँ स्वामी! हमारी आवश्यकता की सभी वस्तुएं हैं और उस ओर देखिए न! लकड़ी पर हमारे वस्त्र और उसी के पास आपका खड़ग भी रखा है।"

पार्वती ने पिछली दीवार की ओर संकेत किया।
 "और यह मेरा धनुष बाण और कमंडल रखा है। नन्दीश्वर कुछ भी
 नहीं भूलो!"

रुद्रदेव बोले।

पार्वती को वहीं छोड़ कर आवास के बाहर जाकर उन्होंने आस पास का भली-भाँति निरीक्षण किया। वे नहीं चाहते थे कि पिछली बार के समान असुरक्षा का कोई स्थान उनके लिए पुनः विपत्ति का कारण बन जाए। इस कार्य से निवृत्त होकर उन्होंने कुटिया के द्वार के निकट आग जला दी।

रात घिरने लगी थी। पहले से चुन कर रखे हुए फलों का आहार करके उस रात वे चैन से सोये। त्रिशूल रुद्रदेव ने अपनी शैया के निकट ही रख लिया था जिससे आवश्यकता पड़ने पर हाथ बढ़ा कर उसे उठाया जा सके।

दूसरे दिन वे एक साथ ही सरोवर की ओर गये। रुद्रदेव ने कहा -

"उमा! हमें यहाँ सावधान रहना होगा क्योंकि यहाँ कुछ हिंस पशु भी निवास करते हैं। दूसरी बात यह है कि तुम कभी अकेले कहीं मत जाना। सदा मेरे निकट ही रहना!"

"यही करुंगी स्वामी! वैसे आपकी उमा भी कोई दुर्बल स्त्री नहीं है जिसे कोई सहज ही आक्रांत कर लो। मैं आपकी इस सखी को सदैव अपने साथ रखती हूँ।"

पार्वती ने अपने कमर में खुसी कटार को दिखाते हुए कहा।

"हाँ, जानता हूँ मैं किंतु फिर भी मैं नहीं चाहता कि तुम यहां किसी संकट में पड़ जाओ।"

शीघ्र ही वे उस वन की मोहक सुंदरता में रम गये। जीवन की सारी चिंताओं समस्याओं को भूल कर वे वन में रहने लगे। कभी वे वृक्षों पर बैठे पंछियों का गान सुनते तो कभी मर्यादों का नर्तन देख कर मुग्ध हो जाते। दिन भर वन प्रांतों में धूमते प्रकृति के सुंदर दृश्यों को देखते हुए भिन्न-भिन्न प्रकार के फूलों वनस्पतियों का अध्ययन करते। निरापद जान

रुद्रायन – 2

कर उनकी कुटिया के निकट खरगोशों का दल घूमता रहता। उनके साथ खेलना पार्वती को बहुत प्रिय था। उसने तो उनके नाम भी रख दिए थे - श्वेतकेतु, रक्ताभ, श्यामल और न जाने क्या-क्या। एक नन्हे से हिरण के बच्चे को घास खिला कर उसने पकड़ लिया और दुलार कर छोड़ दिया। जब भी वह उसे पुकारती -

"चित्रक! आ.... आ!"

तब वह कुलाचें भरता हुआ आकर उसकी हथेली सूंघने लगता। वहाँ आकर पार्वती कार्तिकेय का दुख भूल गयी। उस सुरम्य वातावरण में वह पति के साथ अपना अतीत ही मानो पुनः जीने लगी थी।

ऐसे ही आनंदमय वातावरण में एक दिन घूमते हुए वे अपने आवास से कुछ दूर चले गये। दूर बहते झारने की कल-कल ध्वनि से आकृष्ट होकर वह बहुत दूर आ गए थे। दोपहर हो रही थी।

झारने के निकट पहुंच कर रुद्रदेव ने जल में अपने पांव डाल दिए।

"आओ उमा! इधर से आओ। पानी में पैरों को डाल दो तो सारी थकान उतर जाएगी। संभल कर ..."।

उनके पुकारने पर पार्वती भी शिलाओं पर संभल संभल कर पैर रखती हुई उनके निकट आ गयी। झारने के ठंडे पानी में पैर डाल कर वह रुद्र देव से सट कर बैठ गयी।

कुछ देर बाद हाथ मुँह धोकर वे प्रकृतस्थ हुए तब उमा बोली -

"आप कुछ देर यहीं विश्राम करें। मैं अभी आती हूँ।"

"कहाँ जा रही हो?"।

"कहीं दूर नहीं। वह सामने झाड़बेरियाँ लगी हैं और उधर वह चौड़ी पत्तियों वाली झाड़ी है न! उसमें भी कुछ फल लगे हैं। मैं उन्हें लेकर आती हूँ।"

पार्वती ने कहा और उठ खड़ी हुई।

"ठीक है, पर जरा संभल कर जाना। यहाँ की शिलाओं के सिरे बहुत तीखे हैं और झाड़ियों में कांटे भी हैं।"

पार्वती के जाने के बाद रुद्रदेव ने अपना सिर झ़रने की धार में डाल दिया। शीतल जल ने उनका सारा ताप और थकान हर लिया। वे उठ कर झ़रने के पास उगी धास के बीच भाँग के पौधे ढूँढ़ने लगे। पार्वती के लौटने तक उन्होंने थोड़ी पत्तियां एकत्र कर लीं और उन्हें पत्तों में लपेट कर कमर में खोंस लिया। फलों को झ़रने के जल में धो कर पत्ते पर रख कर वे खाने बैठे। तभी वीणा का मधुर स्वर सुन कर वे चकित हो गये। कान लगा कर सुनने लगे रुद्र।

दूर कहीं से वीणा का स्वर हवाओं पर तैरता आ रहा था।

"तुमने कुछ सुना पार्वती?"

"हाँ स्वामी! यह तो वीणा का स्वर है। नारद नारद आ रहे हैं शायद!"

पार्वती उठती हुई बोली। तब तक स्वर अधिक स्पष्ट हो गया।

"हाँ, नारद ही हैं। उनका नारायण मंत्र भी सुनाई पड़ रहा है। तुम ठहरो। मैं उन्हें बुला लेता हूँ।"

रुद्रदेव उठ कर ऊँची शिला पर चढ़ गये। दूर नारद वीणा बजाते जाते हुए दिखाई दिये। वे पुकारने लगे -

"नारद मुनि!... नारद!"

नारद ने ठिक कर देखा और उनकी ओर बढ़ आये।

"आहा! आज तो अच्छा शगुन हुआ। आपके दर्शन हो गये। आप यहाँ कहाँ?"

निकट आकर पूछा नारद ने।

"आओ, उधर चलें। उमा के पास। हम भोजन करने जा रहे थे। आ जाओ तुम भी।"

रुद्रदेव ने पार्वती की ओर संकेत करते हुए कहा।

"अवश्य प्रभु!"

रुद्रदेव के पीछे नारद भी झ़रने के पास पहुँच गये। शीतल जल से आचमन करके एक शिला पर वे भी आसीन हुए।

रुद्रायन – 2

"प्रणाम गुरुदेव!"

पार्वती ने हाथ जोड़े।

"सदा सौभाग्यवती रहो। रुद्रदेव ! आप सपरिवार यहाँ वन में निवास कर रहे हैं। यह वनवास कैसा प्रभु?"

नारद ने पूछा।

"मैं तो सदा से वनवासी हूँ नारद। अर्धागिनी होने के नाते पार्वती भी मेरे साथ हैं।"

मुस्कुरा कर कहा रुद्रदेव ने।

"आप दोनों को देख कर तो वनवासी राम की स्मृति हो आयी।"

नारद बोले।

"वनवासी राम?"

"हाँ रुद्रदेव! दशरथ-नंदन राम। पिता के द्वारा वनवास का आदेश पाकर पत्नी सहित वे भी ऐसे ही वन वन भटकते रहे थे।"

"हमें वनवास कौन देगा मुनिवर? कार्तिकेय के कैलाश से चले जाने के कारण मन व्यथित था इसलिए हम प्रकृति की गोद में मन की शांति ढूँढ़ने चले आये हैं।"

"हाँ प्रभु! कार्तिकेय के कैलाश त्याग की बात तो मैंने भी सुनी है। वह अपने रोष को नियंत्रित नहीं रख पाता। अर्घ्य की प्रवृत्ति उसे किसी बात को भली-भांति समझने नहीं देती। इसी से रुष्ट हो जाता है वह। इस समय वह क्रौंच पर्वत पर निवास कर रहा है।"

नारद ने कहा।

"क्रौंच पर्वत पर?"

"हाँ प्रभु! मैंने उसके क्रौंच पर्वत पर रहने की बात सुनी है। यदि आप कहें तो मैं जाकर उसे समझाऊं।"

"नहीं, रहने दो। अभी वह क्रोधाविष्ट है। उसे शांत होने तथा वस्तुस्थिति का आकलन करने योग्य होने के लिए समय की आवश्यकता है। जब उसका क्रोध शांत होगा तभी वह वस्तुस्थिति समझने के योग्य हो सकेगा। अभी उससे बात करने का कोई लाभ नहीं है।"

रुद्रदेव उदास होकर बोले।

"परंतु....."

नारद ने कुछ कहना चाहा।

"इसी का नाम जीवन है नारद! इसे सहज रूप में स्वीकार करना ही जीवन जीना है!"

"आप किसी दशरथनंदन राम की बात कर रहे थे मुनिवर? कौन है यह राम? क्यों उन्हें पिता ने वनवास दे दिया था?"

पार्वती ने उत्सुक होकर पूछा।

"बड़ी लंबी कथा है। संभवतः कई वर्ष पूर्व मैं देवी सती के साथ दक्षिणावर्त में स्थित दंडक नामक वन में निवास करने वाले अगस्त मुनि के आश्रम में गया था। उस समय राम अपने भाई लक्ष्मण तथा पत्नी सीता सहित दंडक वन में ही निवास कर रहे थे। वहाँ मैंने राम के वन गमन की कथा तथा बाद में रावण द्वारा देवी सीता के अपहरण का वृतांत अगस्त मुनि से सुना था परंतु उसके बाद की कथा मुझे ज्ञात नहीं है। वहाँ से लौटते समय हमने विरही राम और लक्ष्मण को वन में भटकते हुए देखा भी था।"

"आपने तो मेरी जिज्ञासा इस विषय में और अधिक बढ़ा दी है स्वामी!"

उमा ने चकित होते हुए कहा।

"अब सूर्य अस्ताचल की ओर जा रहा है। हमें अब अपने आवास की ओर चलना चाहिए।"

रुद्रदेव ने अस्ताचलगामी सूर्य की ओर दृष्टिपात करते हुए कहा।

"हम अपने आवास से बहुत दूर आ गये हैं स्वामी! वहाँ तक पहुंचने से पूर्व ही अंधकार हो जायेगा। वैसे भी आज कृष्ण पक्ष की अष्टमी है। अंधकार में वन में चलना उचित नहीं होगा।"

पार्वती बोली।

"हाँ उमा! ठीक कर रही हो तुम। हमें यही कहीं रात्रि निवास की व्यवस्था करनी होगी।"

रुद्रायन – 2

अन्वेषण पूर्ण दृष्टि से चारों ओर देखते हुए रुद्रदेव ने कहा ।

"उधर झरने के पीछे एक कंदरा जैसी दिखाई दे रही है। चलो, उधर ही चल कर देखते हैं।

रुद्रदेव के पीछे पीछे पार्वती और नारद उस ओर बढ़ गये। झरने के पीछे की ओर पहाड़ी मुड़ गयी थी। वहाँ एक कंदरा दिखाई दे रही थी। रुद्रदेव ने कुछ पत्थरों के टुकड़े गुफा में फेंक कर उसके निरापद होने का निश्चय किया। जब कई पत्थर फेंकने पर भी अंदर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई तो वे बोले -

"यह कंदरा निरापद है। यहाँ कोई जीव जंतु नहीं है। हम लोग यहाँ रात बिता सकते हैं। अंधेरा घिरने लगा है। मैं आग जलाने का प्रबंध करता हूँ।"

रुद्रदेव ने कहा।

"नहीं प्रभु! आप कुछ कंदमूल की व्यवस्था करें। मैं तब तक कुछ काष्ठ-संग्रह कर लूँगा। अग्नि स्थापना में देवी पार्वती मेरी सहायता करेंगी।"

नारद ने उन्हें रोकते हुए निवेदन किया।

"जैसी आपकी इच्छा। इधर कुछ झाड़ियाँ और उनके निकट वृक्षों के नीचे सूखी लकड़ियाँ मिल जाएँगी। तब तक मैं कुछ फल मूल ले आता हूँ।"

कह कर रुद्रदेव शीघ्रता से वन की ओर बढ़ गये। नारद तथा उमा लकड़ियाँ एकत्र करने लगे। अंधेरा होने तक पर्यास काष्ठ संग्रह हो चुका था और रुद्रदेव भी फल मूल लेकर आ गये थे।

वे नारद मुनि के साथ मिलकर अग्नि स्थापना करने लगे। तब तक पार्वती ने कंदरा का कुछ भाग साफ करके विश्राम करने योग्य बना लिया। वहाँ की भूमि कुछ ऊंची होने के कारण सूखी थी और वहाँ रात में विश्राम किया जा सकता था। कुछ ही क्षणों में आग जल गयी। पार्वती ने रुद्रदेव का त्रिशूल एक ओर चट्टान से टिका कर खड़ा कर दिया। नारद ने अपनी बीणा भी वहीं टिका दी। अग्नि के निकट बैठ कर उन्होंने फलाहार किया।

"नारद!"

रुद्रदेव ने वार्तालाप आरम्भ किया।

"हाँ प्रभु!"

"आप इस ओर किधर जा रहे थे?"

"यहाँ उत्तर की ओर थोड़ी और ऊंचाई पर मुनि कागभुसुंडि का आश्रम है। वहाँ वह अपने आश्रम में बनवासियों के बालकों को सुशिक्षित करते हैं तथा उन्हें पौराणिक कथा वार्ता, योग आदि की शिक्षा प्रदान करते हैं। बहुत दिनों पूर्व एक बार उनसे मार्ग में भेंट हुई थी। तब उन्होंने कहा था - 'नारद मुनि! कभी अवसर मिले तो मेरे आश्रम में भी पधारिएगा।' मैं उन्हीं से मिलने की इच्छा से आया था। सोचा था कुछ सत्संग होगा। सौभाग्य से आप दोनों के भी दर्शन हो गये।"

नारद मुनि ने बताया।

"ये कागभुसुंडि मुनि कौन हैं? मैंने कभी उनके विषय में नहीं सुना। क्या वे यहाँ कुछ दिनों पूर्व ही आए हैं?"

रुद्रदेव ने पूछा।

"नहीं प्रभु! उनका तो वहां विगत पाँच वर्षों से निवास है। वे पूर्व में कौशल नरेश राजा दशरथ के राज भवन में कार्यरत थे। उनसे मिल कर राम का संपूर्ण वृत्तांत ज्ञात हो सकता है। यदि आप सहमत हों तो कल हम सभी उनके आश्रम में चल कर सत्संग का लाभ लें तथा अपनी राम विषयक जिज्ञासा भी शांत करें।"

नारद मुनि ने प्रस्ताव रखा। उनका यह प्रस्ताव रुद्रदेव तथा पार्वती दोनों को रुचिकर प्रतीत हुआ। राम के विषय में जानने के लिए उत्कंठित पार्वती तत्काल बोल पड़ी।

"स्वामी! गुरुदेव का प्रस्ताव अत्यंत सुखद तथा रुचिकर है। यदि आप सहमत हों तो कल हम प्रातः वहाँ चलें।"

"हाँ, यही उचित होगा। कल प्रातः ही हम उस ओर प्रस्थान करेंगे।"

रुद्रदेव ने सहमति दी। उस रात्रि तीनों को ही निद्रा नहीं आयी। नवीन स्थान होने के कारण रुद्रदेव अत्यंत सतर्कता पूर्वक थोड़ी थोड़ी देर

रुद्रायन – 2

बाद उठकर निरीक्षण करते रहे। पार्वती राम के जीवन में विचार करती अर्द्धनिद्रावस्था में रही और नारद मित्र मिलन के भावी आनंद की कल्पनाओं में मग्न रहे।

रात्रि जैसे तैसे करके व्यतीत हुई। प्रातः नित्य क्रिया आदि से निवृत्त होकर वे उत्तर की पहाड़ियों पर चढ़ने लगे। उसी ओर नारद मुनि के कथनानुसार काकभुशुण्डि मुनि का आश्रम था जिसके चारों कोनों पर चार वृक्ष क्रमशः वट, आम्र, पाकड़ और जामुन के स्थित हैं। वही उनके आश्रम की पहचान थे।

दो प्रहर चलने के बाद उन्हें दूर पर एक विशाल वृक्ष का आभास मिला।

"वह सामने वटवृक्ष दिखाई दे रहा है। वहाँ निकट ही होगा उनका आश्रम।"

नारद उत्साहित होकर बोले।

"आप क्या इससे पूर्व उनके आश्रम स्थान पर नहीं आये कभी?"

पार्वती ने पूछा।

"नहीं। कभी इस ओर आने का अवसर ही नहीं मिला। उस दिन मार्ग में यदि वे न मिले होते तो मैं भी आप लोगों के समान ही उनसे अनभिज्ञ ही रहता।"

नारद ने कहा।

कुछ ही देर में वे उस आश्रम के निकट पहुंच गये। चारों वृक्षों ने जैसे आश्रम भूमि का सीमांकन कर दिया था। आश्रम के सामने पूर्व की दिशा में था वह विशाल बरगद का वृक्ष। दूसरी ओर पश्चिम में पाकड़ का तथा उत्तर और दक्षिण में क्रमशः आम और जामुन के वृक्ष सुशोभित हो रहे थे। उनकी छाया ताप से आश्रम की रक्षा करती थी तथा शीतल वायु भी प्रदान करती थी। वन्य काष्ठ से बना हुआ लंबा सा झोपड़ा था वह जिसे कागभुशुण्डि मुनि का आश्रम कहा गया था। चारों ओर की भूमि समतल और साफ-सुथरी थी। वृक्षों पर पक्षी कलरव कर रहे थे। वटवृक्ष की छाया

में बैठा श्यामवर्ण का पुरुष संभवतः मुनि था। उसके निकट कुछ वन्य जातियों के बालक बैठे अपना पाठ याद कर रहे थे।

निकट पहुंचने पर उन्होंने देखा - मुनि कागभुशुंडी जी का वर्ण काला था और चेहरा सामने की ओर कुछ निकला हुआ सा था। उनके सिर पर गहरे भूरे रंग के बाल थे। चेहरे पर लंबी दाढ़ी थी और उनके नेत्र अत्यंत चंचल थे जिनमें अनोखी सी चमक थी। नारद मुनि को देखते ही वे हर्षित होकर उठ पड़े।

"आइए, आइए नारद मुनि! पधारिए। बहुत दिनों बाद हमारी स्मृति आयी आपको मित्र!"

नारद को उसने आलिंगनबद्ध कर लिया।

"कुछ इधर आने का संयोग ही नहीं हुआ मित्रवर! आप तो जानते ही हैं कि प्रत्येक कार्य अपने निर्धारित समय पर ही होता है। संभवतः वह शुभ संयोग आज ही था जब हम मिल पाते। ये मेरे साथ कैलाशपति रुद्रदेव और उनकी धर्मपत्नी पार्वती भी आपके आश्रम पर पधारे हैं।"

नारद मुनि ने बताया।

"पधारिए प्रभु! आज यह भूमि आपके आगमन से धन्य हो गयी।"

मुनि कागभुशुंडि ने उनका स्वागत कर के आसन पर बैठाया। गुरु के आदेश पर शिष्यों ने उन्हें मधुपर्क आदि देकर संतुष्ट किया।

"आपके आगमन से यह आश्रम और मैं धन्य हो गये। प्रभु! यदि आपके आगमन का कोई विशेष प्रयोजन हो तो आदेश करें।"

विनम्र स्वर में पूछा मुनि ने।

"हमें दाशरथि राम के समाचार जानने की जिज्ञासा है मुनिवर! नारद मुनि ने आप के विषय में बताया और कहा कि आप राम के संबंध में संपूर्ण विवरण बता सकते हैं। इसी हेतु"

रुद्रदेव ने संसंकोच कहा।

"अवश्य। अवश्य प्रभु! आप हमारे स्वामी राम के संबंध में जानने के इच्छुक हैं, उनकी कथा सुनना चाहते हैं और मुझे इस योग्य समझते हैं यह मेरा अहोभाग्य है।"

रुद्रायन – 2

"मुनिवर! वर्षों पूर्व मैं देवी सती के साथ अगस्त्य मुनि के आश्रम पर उनसे मिलने के लिए दंडकारण्य गया था। वहाँ पर राम के बन गमन तथा सीता के हरण की कथा ज्ञात हुई थी। उसके बाद क्या हुआ यह जानने की हमें बड़ी इच्छा है। यदि आप उनके समाचारों से अवगत हों तो हमें भी बताइये।"

रुद्रदेव बोले।

"जैसी आपकी इच्छा।"

कह कर कागभुसुंडि मुनि ने अपने शिष्यों को अतिथियों के मध्याह्न भोजन आदि की व्यवस्था करने का निर्देश दिया। फिर वे बोले -

"प्रभु! आप लोग थके हुए हैं। विश्राम करें। भोजन आदि से निवृत हो जाएं तब मैं आपकी इच्छानुसार राजा राम के समाचार कहूँगा।"

"यदि अन्यथा न समझें तो हम आप के विषय में भी जानना चाहते हैं मुनिवर! आपके संबंध में हमारी जिज्ञासा है तथा हम यह भी जानना चाहते हैं कि आपका राम के विषय में ज्ञान इतना प्रामाणिक कैसे है।"

पार्वती अपनी उत्सुकता रोक न सकी और बोल पड़ी।

"आपकी यह जिज्ञासा स्वाभाविक है देवी! वास्तव में मैं राजा दशरथ के महल में सेवक का कार्य करता था। मैं उनका अनुचर था। राम तथा अन्य राजपुत्रों के जन्म के समय मैं बालक ही था अतः उनकी सेवा में नियुक्त कर दिया गया था। राजपुत्रों से मेरा बड़ा प्रेम था। राम को तो मैं अपने प्राणों से बढ़ कर प्यार करता था। जब राजकुमार राम और लक्ष्मण को विश्वामित्र मुनि अपने यज्ञ की सुरक्षा के लिए राजा से मांग कर ले गये और उनका जनकपुरी में राजकुमारी सीता से विवाह होना निश्चित हुआ था तब मैं भी उनकी बारात के साथ मिथिलापुरी गया था। वहाँ का अकूत वैभव, राज्य की शोभा, चारों राजकुमारों का विवाह, सब कुछ मैंने देखा था। अयोध्यापुरी में बारात आने के बाद जो उत्सव मनाया गया था उसमें मैंने भी भाग लिया था। कुछ वर्ष वास्तव में अत्यंत आनंददायक थे जब राजा दशरथ अपने परिवार के साथ आनंद पूर्वक अयोध्या में निवास करते थे।

"कुछ दिनों के पश्चात अपने नाना के बुलाने पर राजकुमार भरत और शत्रुघ्न अपने मामा युद्धाजित के साथ सपत्नीक अपने ननिहाल केकय देश चले गये। फिर एक दिन राजा दशरथ ने गुरु वशिष्ठ से मंत्रणा कर के राम का राज्याभिषेक करने का निर्णय लिया। तब धाय माँ तथा दासी मंथरा की बातों में आकर सरलमना रानी कैकेई ने राजा से अपने पुत्र के लिए राज्याभिषेक और राम के लिए चौदह वर्ष का दंडकारण्य निवास के रूप में दो वर मांग लिये। राम के बन जाते समय उनकी पत्नी सीता तथा भाई लक्ष्मण भी उनके साथ हो लिये। तब मैं भी अन्य सेवकों व नगर वासियों के साथ राम के पीछे पीछे दूर तक गया किंतु राम हमें सोता छोड़ कर रात्रि के अंधकार में बन चले गये। तब मैं अयोध्या-वासियों के साथ अयोध्या वापस नहीं लौटा। राम के बिना वहाँ जाकर रहने का मुझमे साहस नहीं था। राम जाने किस ओर चले गये थे। मैं बरसों यहाँ-वहाँ भटकता रहा। कभी काशी तो कभी मथुरा। कभी ब्रह्मावर्त की ओर निकल गया तो कभी विंध्य पर्वत के बीहड़ों में भटकता, मांगता खाता, राम के विषय में जानने की चेष्टा करता धूमता फिरता था।"

काग्भुसुंडि पुरानी स्मृतियों में खोने लगे। उसी समय उनके शिष्य ने आकर भोजन करने के लिए निवेदन किया।

"चलिए प्रभु! आओ मित्र! चल कर भोजन कर लें उसके बाद विश्राम और तब आपकी जिज्ञासा शांत करने का प्रयत्न करूंगा।"

काग्भुशुण्डि मुनि ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया। सभी उठ कर उनके आश्रम की ओर बढ़ गये।

०००

रुद्रायन – 2

दोपहर ढलने लगी थी जब नारद मुनि ने अपने चिर परिचित स्वर में
मंत्र जाप किया -

"नारायण नारायण।"

रुद्रदेव मुस्कुराये।

"बहुत विश्राम कर चुके हैं नारद मुनि! देखिए तो, बाहर शाम घिर
आयी है।"

"हाँ प्रभु! यहाँ तो इतनी शीतलता है कि बस सारी थकान ही
छूमंतर हो गयी।"

"उधर देखिए, पाकड़ वृक्ष के निकट भुशुण्डि मुनि को उनके शिष्यों
ने घेर रखा है।"

"चलिए हम भी उधर ही चलते हैं।"

जब वे पाकड़ वृक्ष के निकट पहुंचे तब कागभुशुण्डि मुनि अपना
भाषण समाप्त कर चुके थे। रुद्रदेव नारद तथा पार्वती के साथ जाकर उनके
निकट बैठ गये। मुनि का संकेत पाकर उनके शिष्य वहाँ से चले गये।

"एक बात पूछूँ यदि आप अन्यथा न लें तो ... ?"

"हाँ हाँ, पूछिए। यदि मैं आपकी शंकाओं का समाधान कर सका
तो स्वयं को कृतार्थ समझूँगा।"

"आपका नाम कुछ विचित्र सा है। आप"

खिलखिला कर हँस पड़े मुनि।

"प्रभु! मेरा नाम क्या था यह तो मैं स्वयं ही नहीं जानता। आप तो
जानते ही हैं दासों का नामकरण नहीं किया जाता। छोटा था तो काले रंग
के कारण काले, कागा, कालू, कलुआ, कृष्णा जैसे नामों से या फिर ए,
ओ कह कर ही लोग काम चला लिया करते थे। राजमाता कौशल्या मुझे
सदा 'कागा' कहकर बुलाती थीं। बहुत प्यार करती थीं वह हम दासों से
भी। एक बार न जाने कैसे राजकुमार राम ने मुझे कागभुशुण्डि कह कर
पुकारा। बस यही नाम जँच गया मुझे। मेरे इष्ट स्वामी का दिया हुआ यही
नाम मैंने धारण कर लिया।"

राम की स्मृतियों में मग्न होकर मुनि ने बताया।

"बहुत सुखद थे वे बचपन के दिन जब राम हमारे सामने आँगन में खेला करते थे। उनका वह मोहक रूप, धुंधराले बाल, शरीर पर पीला झबला पहने, कमर में सोने की करधनी और उसमें लगी स्वर्ण किंकिणियों की रुनझुन..... वह रूप मन में बस गया है जैसे।"

"राम के वन जाने के बाद क्या हुआ मुनिवर?"

रुद्रदेव ने कथा बढ़ाने के उद्देश्य से पूछा।

"राम के चले जाने के बाद कई वर्षों तक मैं यहाँ-वहाँ भटकता रहा और जब यह अनुभूति हुई कि अब उनके वनवास की अवधि समाप्त होने वाली है तब मैं पुनः अयोध्या लौट आया। तब अयोध्या का रूप देखा न जाता था। वैसे ही हाट बाट, नगर, बाजार। वैसे ही भवन, वृक्षों की कतारें और वे ही पुरजन परिजन, परंतु जैसे सब के रहते हुए भी अयोध्या निर्जीव हो गयी थी। लोग हँसना-मुस्कुराना, आनंद मनाना भूल गये थे। राम के जाने के बाद से नगर में कोई उत्सव या आनंद कार्य नहीं किया गया था। भरत यद्यपि नंदीग्राम में रह कर संपूर्ण राज्य की साज संभाल कर रहे थे। मंत्री-गण भी पूर्ववत नगर सुरक्षा तथा पुर-जनों की सुख सुविधाओं को जुटाने में संलग्न थे फिर भी आनंद की वे जीवन धाराएँ कहीं खो गयी थीं जो राम के रहने पर सतत प्रवहमान रहती रहती थीं। राजभवन में उदासी छायी थी। रानियां, राजवधुएँ यंत्रवत सोती जागती बस जिए जा रही थीं। सबको एक ही प्रतीक्षा थी - राम के पुनरागमन की।

कुछ दिवस मैंने अयोध्या में व्यतीत किये परंतु वहाँ की उदासी मुझे काटने लगी थी। राजभवन में मेरा अबाध आवागमन था। तीनों राजवधुएँ उर्मिला, मांडवी और श्रुतकीर्ति का उदास मुख देखा न जाता था। उनकी मौन दृष्टि जैसे बारंबार मुझसे प्रश्न करती -

"कब आएंगे तुम्हारे स्वामी?"

जब वह मौन असह्य होने लगा तो मैं नंदीग्राम चला गया जहाँ कुटिया बना कर राजकुमार भरत निवास कर रहे थे। मैंने उनसे प्रार्थना करते हुए कहा -

"मुझे अपनी सेवा में ले लीजिए प्रभु!"

रुद्रायन – 2

राजकुमार उदास स्वर में बोले -

"मैं तो स्वयं दास हूँ श्री राम का। दासों को न तो किसी सेवक की आवश्यकता होती है न सेवक रखने का अधिकार ही। रहना चाहो तो तुम भी इसी कुटिया में पड़े रहो भाई!"

उनका आदेश पाकर मैं वहीं ठहर गया। यथासम्भव उनकी सेवा करता था और उनके कार्यों में सहयोग देने का प्रयत्न किया करता। दिन रात मैं उनकी छाया बन कर डोलने लगा। राजकुमार भरत में मुझे अपने राम दिखाई देते थे इसीलिए मेरा हृदय एक पल भी उन से वियुक्त होकर नहीं रहना चाहता था।

एक रात की बात है। सदैव की भाँति राजकुमार भरत अपना धनुष बाण लेकर रात्रि भ्रमण कर रहे थे। मैं उनका अनुकरण कर रहा था। प्रत्येक रात्रि कभी अश्वारूढ़ होकर और कभी पदाति ही वे नगर में भ्रमण करके राज्य वासियों की सुरक्षा सुनिश्चित किया करते थे।

उस रात भी वे अश्वारूढ़ होकर आगे आगे चल रहे थे और मैं उनका अनुसरण कर रहा था जब आकाश मार्ग से जाती हुई एक विशाल आकृति दिखायी पड़ी। राजकुमार भरत ने अपना अश्व रोक लिया और ध्यान पूर्वक आकाश की ओर दृष्टि जमा कर देखने लगे। उन्होंने पूछा -

"क्या है वह काग?"

"कोई विशाल दानव प्रतीत होता है प्रभु!"

मैंने अनुमान से बताया।

"इतनी विशाल आकृति किसी मनुष्य की तो हो ही नहीं सकती। संभवतः कोई दानव अयोध्या पर आक्रमण करता चाहता है। कहीं यह हमारे राज्य को हानि न पहुंचा दे।"

आशंकित होकर राजकुमार ने धनुष पर बाण चढ़ाया और उसकी प्रत्यंचा कानों तक खींचकर छोड़ दी। अग्नि के समान प्रज्ज्वलित बाण उस आकृति को बेध गया।

"हे राम!"

आकृति चीत्कार करती धरती पर आ गिरी।

"राम? राम को पुकारने वाला यह व्यक्ति राक्षस नहीं हो सकता। चलो, चल कर देखो। मैंने किसे धराशायी कर दिया?"

हम दोनों शीघ्रता पूर्वक उस गिरे हुए व्यक्ति के पास पहुंचे तो देखा कि एक विशाल मनुष्य गिरा पड़ा था और उसके चारों और बहुत से लता पत्रकों की झाड़ियां बिखरी पड़ी थीं।

"कौन? कौन हो तुम?"

राजकुमार भरत ने निकट जाकर पूछा परंतु वह व्यक्ति अचेत पड़ा था। मैं भाग कर निकट के भवन से जल मांग कर ले आया और उसके मुख पर छिड़कने लगा। थोड़ा जल उसके मुख में भी डाल दिया।

"उठो भाई! राम का नाम स्मरण करने वाले मित्र! उठो!"

राजकुमार भरत के बार बार पुकारने और पंखा करने पर उसने नेत्र खोल दिये।

"मैं कहां हूँ? आप कौन हैं?"

उस ने चकित होकर पूछा।

"मैं दशरथ-पुत्र राम का छोटा भाई भरत हूँ। आप इस समय अयोध्या राज्य की सीमा में हैं। मैंने आपको आकाश मार्ग से जाते देख कर शत्रु की आशंका से बाण से घायल कर दिया। मुझे इसके लिए क्षमा करें। आप कौन हैं और मेरे भाई राम को कैसे जानते हैं?"

भरत ने व्याकुल होकर पूछा।

"प्रणाम प्रभु! मैं किञ्चिंधा-नरेश सुग्रीव का सेवक तथा राम का अभिन्न दास हनुमान हूँ। राम के कार्य से ही मैं आया था। राम और लक्ष्मण का लंकानरेश गावण से युद्ध हो रहा है जिसमें लक्ष्मण घायल हो गए हैं। मैं उन्हीं को औषधि देने के लिए इस छोटी-सी यान पट्टिका पर हिमगिरि गया था किंतु औषधि पहचान न पाने के कारण लगभग सभी प्रकार की औषधि लता पत्र आदि को उखाड़ कर लिए जा रहा था। मुझे प्रातः होने से पूर्व ही वहां पहुंचना आवश्यक है।"

हनुमान नामधारी व्यक्ति ने बताया।

"लंका-नरेश रावण से राम का युद्ध? हनुमान! संपूर्ण कथा जानने के लिए मैं अधीर हूँ। मैं स्वयं अक्षौहिणी सेना लेकर लंका की ओर शीघ्र ही प्रस्थान करूँगा जिससे भाई राम की सहायता कर सकूँ।"

"नहीं भाई! उसकी आवश्यकता नहीं है। आप इतनी शीघ्र वहां तक नहीं पहुँच सकेंगे। अभी मुझे जाने दें। बस इतना समझ लें कि रावण द्वारा माता सीता का हरण कर लिए जाने के कारण राम ने समस्त वन्य जातियों को एकत्र करके सेना तैयार की है। समुद्र पर पुल बना लिया है और अब लंका की भूमि पर ही रावण से उनका युद्ध हो रहा है। शीघ्र ही वे विजय प्राप्त करके लौटेंगे तब समस्त कथा विस्तार से सुनिएगा।"

"मैं तुम्हें अपने विशिष्ट सायक यान से तुम्हें वहां भेज दूँगा।"

राजकुमार भरत बोले।

"नहीं प्रभु! यह मेरी यान पट्टिका अत्यंत तीव्र गति वाली है। अब मुझे आज्ञा दें जिससे मैं समय पर पहुँच सकूँ।"

और प्रणाम करके हनुमान समस्त लता पत्र आदि को एकत्र करके उड़ गये।

चौदह वर्ष की अवधि पूर्ण होने पर राम पत्नी तथा भाई एवं लंका नरेश विभीषण, किञ्चिंधापति सुग्रीव, युवराज अंगद, हनुमान आदि इष्ट मित्रों सहित लंकापति के विशेष पुष्पक नामक विमान से अयोध्या लौट आये। तब हमें उनके वनवास की समस्त कथा का विवरण ज्ञात हो सका। उसे ही क्रमवार कहने का प्रयत्न करता हूँ।

अयोध्या वासियों को सोता छोड़ कर राम का रथ उन्हें सपरिवार लेकर काशी पहुँचा। वहां गंगा तट पर वह निषादराज ने उनका बड़ा आदर सत्कार किया। वह राम का बाल सखा था और अब निषादों का राजा बन गया था। उसके वहीं निवास करने के आग्रह को ठुकरा कर राम ने एक रात गंगा तट पर निवास करने के पश्चात सुमंत्र को रथ सहित वापस जाने की आज्ञा देकर नौका द्वारा गंगा पार की। निषादराज गुह उनके साथ थे। वहां से वे प्रयाग गये जो कि तीर्थों का राजा कहा जाता था। प्रयाग में स्थित भरद्वाज मुनि के आश्रम में एक रात निवास करके राम

उनकी आज्ञा तथा मार्गदर्शन में चित्रकूट चले गये। निषादराज की सहायता से लक्ष्मण ने वहां गंगा के निकट कुटिया तैयार की। उनकी हर संभव व्यवस्था करके निषादराज गुह लौट गया।

कुछ दिन राम ने भाई लक्ष्मण तथा पत्नी सीता के साथ वहीं निवास किया। चित्रकूट में ही अत्रि आदि मुनियों के आश्रम थे। राम सब से प्रेम पूर्वक मिले। महर्षि अत्रि ने अपने आश्रम में उनका विशेष रूप से सत्कार किया। उनकी पत्नी अनुसूया ने सीता को बल्कल वस्त्र पहने हुए तथा अलंकार विहीन पाकर अपने आभूषण उन्हें पहना दिये। जब सीता ने उन्हें रोकना चाहा तो वह बोली -

"ये आभूषण तो मेरे पास निरर्थक ही पड़े हैं। तुम राजकुल की वधु हो। इस प्रकार बिना आभूषण के रहना तुम्हें शोभा नहीं देता। ये आभूषण कलुषहीन हैं। प्रतिदिन धारण करने पर भी ये कभी मलिन नहीं होंगे। सदैव ऐसे कांतिमान बने रहेंगे। अनुसूया ने उन्हें विशेष प्रकार के रेशमी वस्त्र भी दिये जिन पर धूल नहीं टिकती थी और वे पानी से धोने पर भी नये के समान प्रतीत होते थे।

राम के चित्रकूट में रहने का समाचार पाकर राजकुमार भरत गुरु वशिष्ठ तथा समस्त परिवार के साथ उन्हें मना कर वापस लौटा ले जाने के लिए चित्रकूट गये किंतु राम ने पिता के आदेश को पूर्ण किए बिना लौटना स्वीकार नहीं किया। भरत को समझा-बुझा कर वापस भेजने के बाद भी यदा-कदा राम से मिलने के लिए उनके मित्र तथा पुरजन, परिजन पहुंचे लगे। यह देख कर राम लक्ष्मण और सीता के साथ आगे दण्डक नामक वन में चले गये। वहां वे अगस्त्य मुनि से मिले जिन्होंने उन्हें अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र दिये तथा उनका प्रयोग करना भी सिखाया।

दंडक वन अपने नाम के अनुसार ही अत्यंत भयंकर था तथा वहां नरभक्षी जातियां असुर, दैत्य, दानव आदि निवास करती थीं। उनसे सुरक्षित रहने के लिए अगस्त्य मुनि ने अपने आश्रम-वासियों को अस्त्र शस्त्र संचालन में निपुण बनाया था। इस विषय में वे नित्य नवीन शोध करते रहते थे तथा अनेक प्रकार के अस्त्रों का उन्होंने स्वयं निर्माण भी

किया था। उनकी समुद्र में भी अच्छी गति थी। समुद्र मार्ग द्वारा वे अपने विभिन्न गुरुकुलों में सहज ही तथा कम समय में आया जाया करते थे।

दंडक वन में निवास करते हुए राम तथा लक्ष्मण का लंकापति रावण की बहन शूर्पणखा से विवाद हो गया जो अपने तीन भतीजों खर और दूषण तथा त्रिशिरा व सैनिकों सहित दंडक वन की स्वामिनी थी। शूर्पणखा ने इस विवाद को अपनी आन का प्रश्न बना लिया और इसे अपना अपमान समझा। उसके भड़काने पर खर दूषण और त्रिशिरा ने अपने सहायक सैनिकों के साथ राम पर आक्रमण कर दिया किंतु राम ने अपने बुद्धि चातुर्य से उनको मार डाला। तब सूर्पनखा ने लंका जाकर रावण से सारी बातें कहीं और राम की पत्नी सीता के सौंदर्य की प्रशंसा करते हुए कहा -

"मैं तुम्हारी बहन हूँ यह जानने के पश्चात भी उन दोनों राजकुमारों ने मेरा अपमान किया। तुम्हें भी इस अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए उसकी पत्नी का हरण कर लेना चाहिए। इससे वे पराजित भी हो जाएंगे और तुम्हें सुंदर पत्नी भी मिल जाएगी।"

रावण को शूर्पनखा की बात जँच गयी। उसने अपने मामा मारीच की सहायता ली और सीता का हरण कर लिया। उस समय कुटिया में सीता के अतिरिक्त कोई और न था इसलिए वे अपनी रक्षा कर सकीं।

सीता की रक्षा करने के प्रयास में उनके पिता का मित्र गृध्र जाति का राजा जटायु आहत होकर भूमि पर गिर पड़ा। रावण सीता को रथ पर डाल कर भाग छूटा। आश्रम लौटने पर राम और लक्ष्मण सीता को न पाकर बहुत दुखी हुए। उन्हें ढूँढ़ने का प्रयास करने पर जटायु को घायल अवस्था में पड़ा देखा। तब वह जीवित किंतु मरणासन्न था। राम से सीता का रावण द्वारा हरण किए जाने की बात बता कर उसने प्राण त्याग दिए। संभवतः उसके प्राण राम को यह सूचना देने के लिए ही अटके हुए थे।

जटायु की अंतिम क्रिया संपन्न करके राम लक्ष्मण दोनों भाई पुनः वन वन भटकते हुए सीता को ढूँढ़ने लगे। गहन वन में वे सीता को ढूँढ़ते हुए भटक रहे थे। उसी वन में एक चित्ररथ नाम का यक्ष निवास करता था।

हिमगिरि पर यक्षों की अलकापुरी में निवास करते समय उसे भी इस विचित्र पर्वतीय रोग ने धेर लिया जिसके कारण यहाँ के निवासी अपना सौंदर्य खो बैठते हैं तथा विचित्र रूप वाले हो जाते हैं। चित्ररथ के दोनों हाथ बढ़ कर उसकी पिंडलियों तक आ गये थे। ग्रीवा तो जैसे लुम ही हो गई थी और विशाल सिर औंधे घड़े के समान सीधे धड़ से जुड़ा प्रतीत होता था।

रोग के प्रारंभ होने तथा चिकित्सा का लाभ न होने पर जलवायु परिवर्तन की दृष्टि से वह दंडक वन में रहने लगा था किंतु उसका रोग दिन पर दिन बढ़ता ही गया। उसकी भयानक स्थिति के कारण उसे लोग कबंध कहने लगे तथा उससे भयभीत रहने लगे। उसे अत्यधिक भूख लगती थी तथा उस दुर्गम वन में उस जैसे व्यक्ति के लिए भोजन ढूँढना सरल कार्य नहीं था। अधिक खाने के कारण वह स्थूलकाय हो गया था। फल-फूल, वनस्पति, पशु, पक्षी, मनुष्य जो भी उसके हाथ आ जाता वही उसके मुख में पहुंच जाता। दो दिनों से वह निराहा था। भोजन के लिए व्यग्र वह अपनी गुफा से निकला तो उसे राम और लक्ष्मण आते हुए दिखाई दिये। वह एक वटवृक्ष के पीछे छिप कर उनकी प्रतीक्षा करने लगा। राम आगे चल रहे थे और उसके पीछे लक्ष्मण थे। कबंध ने हाथ बढ़ा कर दोनों भाइयों को दबोच लिया। उसके अद्वितीय से कानन गूंज उठा।

"अहाहा..... दो दिन बाद ही सही ईश्वर ने पर्याप्त भोजन दे दिया। अब मैं इन दोनों को खा जाऊंगा!"

कबंध के हाथों की शक्तिशाली पकड़ में फँस कर दोनों असहाय से हो रहे थे। तभी राम ने किसी प्रकार खड़ा खींच कर उसकी भुजा पर प्रहार किया। लक्ष्मण ने भी वैसा ही किया। दोनों हाथ कलाई के पास से कट कर भूमि पर गिर पड़े। राम और लक्ष्मण स्वतंत्र होकर उस पर प्रहार करने लगे। हाथों के कट जाने से विवश कबंध प्राण बचा कर भागा और भागते हुए एक विशाल खड़ा में गिर कर प्राण गंवा बैठा। दोनों भाई पुनः आगे बढ़े। भटकते भटकते वे एक अत्यंत सुरम्य सरोवर के निकट जा

रुद्रायन – 2

पहुंचे। सरोवर से कुछ ही दूरी पर टूटी फूटी झोपड़ी दिखाई दे रही थी। राम उसी और बढ़े।

कुटिया में जीर्ण शीर्ण वस्त्रों में एक वृद्ध स्त्री मिली जिसके बाल सफेद हो गये थे। कमर झुक गयी थी और वह सामने जंगली बेरों से भरी टोकरी लिए बैठी थी। राम ने उसे प्रणाम किया तथा अपना परिचय दिया। राम लक्ष्मण को देख कर वह अत्यंत प्रसन्न हुई।

उसने बताया -

"यह आश्रम मतंग ऋषि का है जो गोलोक वासी हो चुके हैं। यहाँ निकट ही पंपा नामक सरोवर है। मैं ऋषि की सेविका शबरी हूँ। यहीं रह कर जीवन यापन कर रही हूँ। आप दोनों सरोवर में जाकर स्नान करके कुछ दिन यहीं निवास करें तथा अपना स्वास्थ्य बनाएं। मेरा जीवन समाप्त हो रहा है। मेरी इच्छा है कि आप लोग यहीं रुक कर मेरी अंतिम क्रिया करें।"

"परंतु माता! हम तो अपनी पत्नी सीता की खोज में भटक रहे हैं। उसे कोई रावण नामक राक्षस उठा ले गया है।"

राम बोले।

"सीता को ढूँढ़ने का मार्ग मैं आपको बताती हूँ। लंका का राजा रावण अत्यंत पराक्रमी है। उसे जीतने के लिए आप लोगों को अपनी शक्ति और सामर्थ्य बढ़ानी होगी। यहाँ से दक्षिण की ओर ऋष्यमूक नामक पर्वत है। उस पर किञ्चिंधापति राजा बालि का छोटा भाई सुग्रीव अपने मंत्रियों तथा मित्रों के साथ निवास करता है। आप वहाँ जाकर सुग्रीव से मित्रता कर लें तथा परस्पर सहायता पूर्वक उसके सहयोग से अपने अभियान का आरंभ करें।"

शबरी की बात मान कर राम और लक्ष्मण वहीं रुक गये। उसी रात शबरी ने प्राण त्याग दिये। उसका अंतिम संस्कार करने के पश्चात दोनों भाई ऋष्यमूक पर्वत की ओर बढ़ चले।"

रात्रि बहुत हो गयी थी। शिष्यों ने उनके निकट मशालें प्रज्वलित कर दी थीं परंतु राम की कथा इतनी शीघ्र समाप्त होने वाली नहीं थी।

आधी रात बीती देख कर कागभुशुण्ड मुनि ने कहा - "अब आप सब चल कर आश्रम में विश्राम करें प्रभु! कल प्रातः पहर भर बाद पुनः हम लोग इस कथा को आगे बढ़ाएंगे।"

"अवश्य मुनिवर! कथा ने हमारी जिज्ञासा और बढ़ा दी है। आपके कहने के ढंग से हमें यह ज्ञात ही नहीं हुआ कि इतना समय व्यतीत हो गया। सब कुछ जैसे आँखों के सम्मुख घटित होता प्रतीत हो रहा था।"

नारद बोले।

"चलो उमा! अब हमें विश्राम करना चाहिए और मुनिवर को भी।"

अभिवादनों के आदान-प्रदान के बाद वे आश्रम में विश्राम करने के लिए चले गये।

दूसरे दिन मुनिवर ने आगे कथा प्रारंभ की -

"किञ्चिंधापुरी में उस समय वानरराज बालि का राज्य था। किञ्चिंधा पुरी में वन में रहने वाली वानर जाति निवास करती थी। उनके राजा बालि का अपने छोटे भाई पर अत्यधिक स्नेह था इसलिए उसने सुग्रीव नामक अपने छोटे भाई को युवराज बना दिया था। बालि की पत्नी का नाम तारा था और वह अत्यंत बुद्धिमती थी। सुग्रीव की पत्नी रूमा अपने सौंदर्य के कारण विख्यात थी। बालि तथा तारा का पुत्र अंगद किशोरावस्था में होते हुए भी अत्यंत बलवान था। किञ्चिंधापुरी स्वतंत्र तथा आन मान के लिए मर मिटने वाले वीरों की नगरी थी। आसपास स्थित अन्य जातियों में तथा उनके कबीलों में वही सभ्य समाज तथा सर्वश्रेष्ठ माना जाता था। राजा बालि का बल दूर दूर तक विख्यात था। उसके नेत्रों में सम्मोहित कर देने वाला आकर्षण था।

एक बार की बात है - मय दानव के पुत्र मायावी ने सुग्रीव की पत्नी रूमा के सौंदर्य का वर्णन सुन कर उसे प्राप्त करने की इच्छा से किञ्चिंधापुरी पर आक्रमण कर दिया। भयंकर युद्ध हुआ। पराजित होकर मायावी भागने लगा। बालि उसके पीछे दौड़ा। सुग्रीव भी अपनी गदा लेकर बड़े भाई की सहायता करने की इच्छा से उसके पीछे-पीछे गया। गहन वन में जाकर मायावी एक गहरी कंदरा में प्रवेश कर गया। सुग्रीव ने कहा -

"अब उसे जाने दो भाई! वापस लौट चलो।"

किंतु बालि शत्रु को जीवित नहीं छोड़ना चाहता था। वह अपने छोटे भाई को भी संकट में नहीं डालना चाहता था। उसने सुग्रीव को समझाया -

"मैं मायावी को मारने गुफा में जा रहा हूँ। इस समय वह अकेला है। अतः उसे मारना सरल है। बाद में वह पुनः अपने साथियों तथा सेना को एकत्रित कर के किञ्चिंधा पुरी का संकट बन सकता है। तुम वापस लौट जाओ।"

"परंतु भाई! इस प्रकार आपको एकाकी छोड़ कर"

"तुम मेरी चिंता मत करो सुग्रीव! मायावी के लिए मैं ही पर्याप्त हूँ।"

बालि ने अपनी गदा कंधे पर रखी और मायावी को पुकारता हुआ गुफा में प्रवेश कर गया। सुग्रीव वापस नहीं लौटा और गुफा के निकट एक वृक्ष पर चढ़ कर बालि के लौटने की प्रतीक्षा करता रहा। एक सप्ताह बाद भी जब वह वापस नहीं लौटा तब सुग्रीव ने स्वयं गुफा में जाकर बालि को ढूँढ़ने का निश्चय किया। कुछ अंदर जाने पर उसे एक स्थान पर बहुत सारा रक्त पड़ा दिखाई दिया किंतु बालि या मायावी का वहाँ कोई चिह्न न था। निराश और दुखी होकर सुग्रीव अपने घर वापस लौट गया। एक माह से अधिक समय व्यतीत हो जाने पर भी जब बालि नहीं लौटा तब किञ्चिंधापुरी के मंत्रियों ने सुग्रीव को राजा के पद पर अभिषिक्त कर दिया क्योंकि अधिक दिनों तक राजा से हीन रहने पर राज्य विपत्ति ग्रस्त हो जाता है। ऋक्षों के राजा जाम्बवन्त सुग्रीव तथा बाली के परम मित्र व शुभचिंतक थे। उन्होंने कहा -

"यदि आपको आपत्ति है तो आप तब तक के लिए राजा बने रहें जब तक बालि लौट नहीं आते। यदि वे जीवित हैं तो अवश्य लौटेंगे। तब आप उन्हें उनका राज्य सौंप दीजिएगा। उनकी अनिश्चितकालीन प्रतीक्षा में सिंहासन खाली रखना उचित नहीं होगा अतः आप राज्य पद स्वीकार करें।"

इस प्रकार सबने तथा स्वयं बालि की पत्नी तारा ने सुग्रीव को समझा-बुझा कर राजा बना दिया। वह नीति पूर्वक राज्य करने लगा। कुछ मास व्यतीत हो गये। एक दिन फटे हाल, अस्त-व्यस्त वेशभूषा में बालि वापस लौटा और सीधा राज्यसभा में जा पहुंचा। वहाँ सुग्रीव को राज्य सिंहासन पर बैठा देख कर वह अत्यंत क्रोधित हुआ। सुग्रीव के प्रति उसके हृदय में द्वेष तथा क्रोध की भावना उत्पन्न हो गयी। उसे लात मार कर सिंहासन से नीचे धकेल कर वह गरजा -

"अरे दुष्ट! तूने भाई होकर मेरे साथ घात किया। मैं राज्य में नहीं था तो राज्य को असुरक्षित समझ कर स्वयं राजा बन बैठा। जा, दूर हो जा मेरी दृष्टि से अन्यथा आज तुझे जीवित नहीं छोड़ूँगा।"

सुग्रीव ने अपनी स्थिति स्पष्ट करनी चाही परंतु बालि ने उसकी कोई बात नहीं सुनी और उसे मार मार कर नगर से बाहर निकाल दिया। अपना राज्य संभालते ही उसने सुग्रीव की पत्नी रूमा को भी पराजित राजा की पत्नी मानते हुए वानरों की प्रथा अनुसार अपने भवन में बंदी बनाकर रख लिया।

राजा बालि के भय से किसी ने सुग्रीव का साथ नहीं दिया। केवल उनके मंत्री तथा मित्र हनुमान, जाम्बवन्त तथा दो चार अन्य हितैषी मित्रों ने किञ्चिंधा को छोड़ दिया और सुग्रीव के साथ पर्वत पर रहने लगे। यहाँ वे गुप्त रूप से निवास कर रहे थे। बालि ने सुग्रीव के सभी सहयोगियों को कारागार में डाल दिया था तथा सुग्रीव को मारने या जीवित बंदी बना कर लाने के लिए सैनिकों को नियुक्त कर दिया था। भयभीत सुग्रीव किसी प्रकार जीवन व्यतीत कर रहा था तथा नित्य ही पुनः अपने परिवार तथा खोई हुई प्रतिष्ठा को प्राप्त करने की चिंता में डूबा रहता था।

सीता को ढूँढते हुए भीलनी शबरी के निर्देशानुसार राम और लक्ष्मण दोनों भाई ऋष्यमूक पर्वत की ओर चले जा रहे थे। उन्हें दूर से उस ओर आता देख कर सुग्रीव ने हनुमान को भेजा जिससे वे आगंतुक वीरों के संबंध में पूरी जानकारी ज्ञात करके लौटे। कहीं ऐसा तो नहीं कि वे बालि के द्वारा नियुक्त किए गए हों और सुग्रीव को मारने के लिए वहाँ आ रहे हों।

हनुमान ब्राह्मण का वेश बना कर राम-लक्ष्मण से मिले। उन्हें ब्राह्मण समझ कर राम ने प्रणाम किया तथा अपना परिचय और वहाँ आने का उद्देश्य बताया। हनुमान ने पूर्व में ही राम लक्ष्मण की वीरता के विषय में सुन रखा था अतः वे अत्यंत प्रसन्न हुए। राम तथा सुग्रीव की मित्रता दोनों के लिए लाभप्रद होगी। दोनों ही अपनी पत्नियों से वियुक्त हैं तथा उन्हें मुक्त कराना चाहते हैं। समान कष्ट होने के कारण ये दोनों एक दूसरे के हृदय के अधिक निकट हो सकते हैं। राम की सहायता से सुग्रीव अपना राज्य और पत्नी रूमा को प्राप्त कर लेगा और फिर उसकी सहायता से राम अपनी पत्नी सीता को रावण के बंदी गृह से मुक्त करा

लेंगे। यह सोच कर वह दोनों भाइयों को अपने साथ लेकर सुग्रीव के पास पहुंचा और उन दोनों को एक दूसरे का संपूर्ण परिचय देकर उन्हें अग्नि-साक्षी देकर मित्रता के अटूट बंधन में बांध दिया।

राम ने सुग्रीव को विश्वास दिलाया कि वह राजा बाली को मार कर उसे उसका राज्य वापस प्राप्त करने में सहायता करेंगे। सुग्रीव ने भी उन्हें आश्वस्त किया कि यदि उन्हें उनका राज्य पुनः प्राप्त हो गया तो वे अपनी संपूर्ण सैन्य शक्ति के साथ उनकी पत्नी को लंकापति रावण के बंधन से मुक्त कराने में पूर्ण सहयोग देंगे।

यद्यपि सुग्रीव ने राम की वीरता की कहानियां सुन रखी थीं फिर भी उसके हृदय में आशंकाएं विद्यमान थीं। वह पूर्ण आश्वस्त नहीं था। राम और लक्ष्मण दो राजपुत्र अकेले कैसे बालि को पराजित कर सकेंगे? राम की शक्ति की परीक्षा लेने के विचार से सुग्रीव ने उन्हें सात ताल वृक्षों को जो अत्यंत विशाल और एक सीध में थे दिखाते हुए उसने कहा –

"राम! मैं आपकी शक्ति पर शंका नहीं करता किंतु बालि एक ही बार से इन ताल वृक्षों को गिरा सकता है। क्या आप ऐसा कर सकते हैं?"

राम ने धनुष उठा कर प्रत्यंचा चढ़ायी और एक ही तीर से सातों ताल वृक्षों को भेद दिया। उन्होंने सुग्रीव को समझाया –

"मित्र! विजय पौरुष तथा साहस से प्राप्त की जाती है। बुद्धि का प्रयोग करने पर दुर्धर्ष शत्रु को भी पराजित किया जा सकता है। तुम स्वयं जाकर बालि को युद्ध के लिए ललकारोगे तब वह स्वयं अकेला ही आकर तुम से भिड़ जाएगा। उसे पूर्ण विश्वास है कि वह तुम्हें मार देगा इसलिए वह अकेला तुमसे द्वन्द्व युद्ध करेगा। उस समय मैं उसे मार दूँगा और तुम विजयी हो जाओगे।"

राम की बताई युक्ति सुग्रीव को रुचिकर लगी। राम के समझाने और आश्वासन देने पर सुग्रीव अपनी गदा उठा कर एक बार फिर बाली से युद्ध करने के लिए पहुंच गया। राम, लक्ष्मण जाम्बवान तथा हनुमान युद्ध की भूमि के निकट झाड़ियों के पीछे छुप कर बैठ गये। सुग्रीव ने किञ्चिंधा के

रुद्रायन – 2

राज दरबार में जाकर बालि को युद्ध के लिए ललकारा। उसके बार-बार ललकारने पर बाली अपनी विशाल गदा उठा कर बोला -

"क्यों अपनी मृत्यु को निमंत्रण दे रहा है? जा, भाग जा भाई समझ कर मैंने तुझे क्षमा कर दिया।"

"मुझ पर अन्याय करने और झूठे आरोप लगाने के बाद यह क्षमाशीलता का ढोंग मत करा युद्धभूमि में ही आज निर्णय होने दे।"

सुग्रीव ने कहा।

"ठीक है। यदि तेरी यही इच्छा है तो यही सही। चला।"

बालि को युद्ध के लिए तत्पर देख कर उसकी पत्नी तारा बोली -

"आवेश में आकर कार्य करने पर बहुधा पश्चाताप के लिए भी अवसर नहीं मिलता। सुग्रीव तो आप से भयभीत होकर अपने प्राण बचाने के लिए वन प्रांतरों में मारा मारा फिरता था। आज उसमें इतना साहस कहाँ से आ गया जो आपको इस प्रकार ललकारने आ गया है? अवश्य इसमें कोई भेद है। इस पर विचार कर लीजिए।"

"युद्ध के लिए ललकारने वाले को प्रत्युत्तर न देना वीरों के लिए लज्जा जनक है। तुम चिंता मत करो। मैं आज इसे मार डालूंगा और यदि कोई दूसरा इसकी सहायता करने आएगा तो मैं उसे भी जीवित नहीं छोड़ूंगा।"

पत्नी को समझा कर बाली सुग्रीव की ओर बढ़ा। सुग्रीव दौड़ कर उसी युद्धभूमि में जा पहुंचा जिसके निकट राम आदि छिपे हुए थे।

मैदान में पहुंच कर दोनों परस्पर भिड़ गये। पहर भर दोनों ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया। बाली अधिक बलशाली तथा क्रोध से भरा हुआ था जबकि सुग्रीव पहले से ही बाली से डरा हुआ था। उसमें आत्मविश्वास की कमी थी। उसे शिथिल पड़ते देख कर जाम्बवंत का संकेत पाकर राम ने वृक्ष की ओट से तीर चला कर बालि को आहत कर दिया। राम का बाण उसकी छाती में लगा और वह लड़खड़ा कर गिर पड़ा।

"यह क्या? धोखा?"

बालि चिल्लाया।

"युद्ध और प्रेम में कुछ भी अनुचित नहीं होता यह शिक्षा तो आपने ही मुझे दी है भाई! अलविदा!"

सुग्रीव ने निर्मम होकर कहा। कुछ क्षण तड़प कर बाली ने प्राण त्याग दिये।

विजयी सुग्रीव ने भयंकर अद्वृहास किया। क्षण भर में ही बाली के निधन का समाचार किञ्चिंधा पुरी में फैल गया। महारानी तारा पुत्र अंगद तथा मंत्रि-गण दौड़ कर वहाँ आ पहुंचे। राम, लक्ष्मण, जाम्बवन्त और हनुमान भी अपने छिपने के स्थान से बाहर आकर सुग्रीव के निकट खड़े हो गये।

"धन्यवाद मित्र!"

सुग्रीव ने राम के गले लगकर कहा।

जाम्बवन्त ने आगे बढ़ कर घोषणा की -

"राजा बलि के देहावसान के बाद विजयी सुग्रीव को राजा बनाया जाये जिससे बालि की अंतिम क्रिया संपन्न की जा सके।"

सबने उसका अनुमोदन किया। सुग्रीव को राजा बनाया गया और अंगद को युवराज। पिता का अंतिम संस्कार अंगद ने स्वयं अपने हाथों से किया। सुग्रीव ने राम से चल कर किञ्चिन्धापुरी में निवास करने का आग्रह किया परंतु उसे राम ने स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा -

"अब तुम राज्य कार्य संभालो मित्र! वर्षा ऋतु आ गई है। राज्य को नियंत्रण में लेकर कुछ दिन विश्राम करो। वर्षा काल समाप्त होने पर सीता की खोज में हमें लग जाना होगा।"

"अवश्य मित्र! इस अवधि में आप"

"हम प्रवर्षण पर्वत पर निवास करेंगे मित्र! वहाँ की कंदराएं गहरी और सुरक्षित हैं तथा फल मूल आदि भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं।"

राम ने कहा।

"मैं आपके साथ चल कर आप के ठहरने का प्रबंध कर दूँगा। प्रवर्षण पर्वत मेरा देखा भाला है।"

रुद्रायन – 2

हनुमान ने आग्रह किया।

हनुमान ने राम के साथ जाकर प्रवर्षण पर्वत पर उनके रहने के लिए एक गहरी और सुरक्षित गुफा दिखाई जिसके निकट एक झरना बहता था तथा फलदार वृक्षों के समूह भी थे।

"वर्षा काल में आखेट कठिनाई से मिलता है। आप यहाँ रहेंगे तो भोजन आदि की सुगमता रहेगी। यदि आप आदेश करें तो मैं यहाँ आपके निकट रह कर आपकी सेवा करूँ।"

हनुमान ने निवेदन किया।

"नहीं हनुमान! अभी तुम्हें सुग्रीव के निकट ही रहना अभीष्ट है। उसने बहुत समय तक वनवास के कष्ट भोगे हैं। अब पुनः राज्य पाकर वह सुख, ऐश्वर्य का उपभोग करने में लग जाएगा और राज्य के कार्य में प्रमाद करने लगेगा। तुम वहाँ रह कर राज्य संचालन में उसकी सहायता करो। महारानी तारा अत्यंत बुद्धिमती महिला प्रतीत होती हैं। वह बालि के साथ राज्य संबंधी कार्यों में सहयोग देती रही है। उसका निरादर न होने पाये इसका ध्यान रखना ... और सुग्रीव से कहना, तारा से परामर्श करके राज्य चलाए।"

राम ने हनुमान को समझा कर वापस सुग्रीव के पास भेज दिया और स्वयं लक्ष्मण के साथ प्रवर्षण पर्वत पर निवास करने लगे।

वर्षा ऋतु आयी और जी भर जल बरसा कर वन को हरा-भरा बना कर बीत गयी। धुले धुले पेड़-पौधे, धुले धुले पर्वत शिखर सब कुछ सुहावने बन कर नेत्रों को सुख देने लगे। राम सोचते - कहां होगी सीता और किस दशा में? पत्नी की स्मृतियां मन को अधीर करने लगी।

ऐसे में सुग्रीव, हनुमान, अंगद तथा जाम्बवंत उनके पास आ पहुंचे। कुशलोपरांत सुग्रीव ने बताया -

"मैंने विभिन्न स्थानों से अपने समस्त वानर सैनिकों को यहाँ आने के लिए संदेश भेज दिया है। प्रमुख वानरों को पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा में आपकी पत्नी की खोज के लिए भेज दिया है। आपने बताया था कि वृद्ध मुनि जटायु ने मृत्यु पूर्व आपसे बताया था कि आपकी पत्नी का

हरण लंका के अधिपति रावण ने किया है। उसका राज्य लंका दक्षिण दिशा में स्थित है। उसी ओर रहने वाले कुछ वानर निवासियों ने आकर मुझे कुछ आभूषण दिये हैं। उन्होंने कुछ दिन पूर्व काष्ठ संचय करते समय एक अत्यंत बलशाली पुरुष को रथ से जाते हुए देखा था। रथ में बैठी हुई रुखी आसन से बंधी हुई थी और 'रक्षा करो' 'रक्षा करो' पुकारती जा रही थी। वह बहुत रो रही थी। वानर पुरुषों को देख कर उसने अपने आभूषण उतार कर मार्ग में फेंक दिए थे जिसे वे उठा लाये। मेरे विचार से उन्होंने रावण को ही आपकी पत्नी को बलपूर्वक ले जाते हुए देखा था। रथ की गति अत्यंत तीव्र थी इसलिए वे बनवासी कुछ प्रतिरोध नहीं कर सके। आभूषणों को उन्होंने देते हुए ये सारी बातें बताईं। आप इन्हें देख कर सुनिश्चित करें कि क्या यह आपकी पत्नी के ही आभूषण हैं।"

सुग्रीव ने अपने उत्तरीय में लपेट कर रखे नूपुर और कंठहार को राम के सम्मुख रख दिया। उसे देखते ही राम बोल पड़े -

"ये आभूषण तो सीता के ही हैं।"

"इससे प्रमाणित हो गया मित्र! आपकी पत्नी को रावण दक्षिण दिशा में स्थित अपनी राजधानी लंकापुरी ही लेकर गया है। अब यदि आप उचित समझें तो मैं कुछ प्रमुख वानर वीरों के साथ युवराज को उस दिशा में सीता का अन्वेषण करने के लिए भेज दूं या मैं स्वयं ही वहाँ जाऊं।"

सुग्रीव ने कहा।

"नहीं नहीं। तुम्हारा वहाँ जाना उचित नहीं है सुग्रीव! अब तुम किञ्चिंधा नरेश हो। संपूर्ण वानर जाति का दायित्व है तुम पर। युवराज अंगद को ही उस ओर जाने दो। साथ में हनुमान और जाम्बवंत सहित चुने हुए पराक्रमी वीरों को भेज दो। उस दिशा में स्थान स्थान पर राक्षसों के आवास मिलेंगे और उनसे मुठभेड़ की संभावना रहेगी।"

राम ने समझाया। फिर वह हनुमान से बोले -

"वीर हनुमान! उसी ओर सीता का पता मिलेगा। मार्ग में तुम लोग यथासंभव राक्षसों से बच कर आगे बढ़ना और अपने लक्ष्य पर ध्यान

रुद्रायन – 2

रखना। मैं नहीं चाहता कि मार्ग में ही युद्ध आदि में तुम लोग फँस जाओ और सीता की खोज का दुष्कर कार्य अपूर्ण रह जाये। लंकापुरी में जाकर रावण के नगर का मानचित्र अपने मस्तिष्क में बिठा लेना। उसकी सैन्य शक्ति तथा आयुध भंडार का भी आकलन करना आवश्यक है। शत्रु की शक्ति तथा उसकी दुर्बलताओं का ज्ञान हो तो विजय प्राप्त करने में कोई आशंका शेष नहीं रहती।"

"जो आज्ञा प्रभु!"

"और यह मेरी मुद्रिका अपने पास रख लो। वहाँ शत्रु के कारागार में पड़ी सीता अत्यंत दुखी और अधीर हो रही होगी। यदि उससे मिलना संभव हो तो उसे यह मुद्रिका दे देना। इससे उसे यह विश्वास हो जाएगा कि तुम मेरे सुहृद हो। यह मुद्रिका उसे साहस और आत्मसंबल प्रदान करेगी। तुम लोगों के वापस आने पर हम आगे का कार्यक्रम निश्चित करेंगे। अब सब लोग प्रस्थान करने की तैयारी करो।"

राम का आदेश पाकर जांबवन्त, हनुमान, अंगद किञ्चिंधा की ओर लौट गये जहाँ उन्हें अपने प्रमुख वीरों के दल का चयन करना था।

उनके जाने के बाद राम बोले।

"सुग्रीव! तुम्हारी सहायता के बिना मैं लंकापति से युद्ध करने की कल्पना भी नहीं कर पाता। तुम अब विशाल सैन्य संगठित करके युद्ध की तैयारियां अरंभ कर दो। मैं भी अन्य वनवासी कबीलों तथा राज्यों को रावण के विरुद्ध संगठित करने का प्रयास करूँगा। एक मास बाद हम पुनः इसी स्थान पर मिलेंगे।"

राम की बात का मर्म समझ कर सुग्रीव वापस चले गये और राम लक्ष्मण सहित अपने युद्धायोजन के प्रबंध में संलग्न हुए। रावण जैसे दुर्दृष्ट शत्रु से युद्ध करने के लिए उन्हें अधिक से अधिक जनशक्ति को संगठित करना था।"

काकभुशुंडि मुनि ठहर गये।

"फिर क्या हुआ?"

नारद मुनि ने उन्हें मौन देख कर पूछ लिया।

"अब सूरज सिर पर आ गया है मुनिवर! शिष्यों ने भोजन की व्यवस्था कर दी है। उधर देखिए, वे हमारे उठने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। उन्हें निराश करना उचित नहीं है।"

कागभुशुंडि मुनि ने एक ओर खड़े अपने दो शिष्यों की ओर संकेत किया जो अंजली बांधे एक ओर खड़े थे।

"चलिए, भोजन कर लिया जाये अन्यथा ये बालक भी भूखे बैठे रहेंगे। घड़ी भर विश्राम करके पुनः कथा प्रारंभ की जाये।"

"अवश्य मुनिवर!"

रुद्रदेव ने अपनी ध्यानावस्था से बाहर आते हुए कहा और देवी पार्वती सहित उठ खड़े हुए।

भोजन के पश्चात दो घड़ी सबने विश्राम किया। पुनः वे कथा सुनने के लिए एकत्र हुए तब मुनि काग भुशुंडि ने कथा का सूत्र आगे बढ़ाया।

"युवराज अंगद हनुमान आदि के साथ दक्षिण दिशा में आगे बढ़ने लगा। वे चारों ओर बिखर कर चल रहे थे जिससे सीता यदि कहीं उस ओर किसी गुप्त निवास या कंदरा में छुपा कर रखी गयी हो तब भी उन्हें ढूँढा जा सके।"

कई दिन व्यतीत हो गये। वन अधिक से अधिक घना और दुर्गम होता जा रहा था। कई दिनों से उन्हें भोजन के लिए कुछ मिलना तो दूर पानी के दर्शन भी नहीं हुए थे। भूख प्यास से व्याकुल वे मृतप्राय हो रहे थे। तब हनुमान ने एक ऊंचे वृक्ष पर चढ़ कर चारों ओर दृष्टि डाली। दूर-दूर तक कटीली झाड़ियां और पथरीली चट्टानें बिखरी हुई थीं।

बहुत ध्यान से देखने पर उसे एक ओर दूर पर कुछ पक्षी उड़ते दिखाई दिए। वहां कुछ हरियाली भी दिखाई दे रही थी। उसके कहने पर सभी उसी दिशा में बढ़ गये। उन्होंने वहां एक छोटा सा गहरा जलकुंड देखा जिस के निकट कुछ फलदार वृक्ष लगे थे। उन्हीं वृक्षों पर उन पक्षियों ने घोंसले बना रखे थे जिन्हें हनुमान ने दूर से उड़ते देखा था।

पानी को देख कर उनकी प्यास और भी तीव्र हो गयी। वह कुंड बहुत गहरा था और पानी बहुत नीचे दिखाई दे रहा था। जाम्बवंत के

रुद्रायन – 2

निर्देशन में एक ओर से तिरछी चट्टानों पर होकर एक दूसरे को सहारा देते हुए वे नीचे उतरे।

कुंड का जल अत्यंत शीतल तथा मधुर था। उन्होंने जल पिया तथा कुछ अपने सिरों पर डाल कर ताप से मुक्ति पायी। वे थक गये थे। उन्ही चट्टानों पर लेट कर वे अपनी थकान उतारने लगे। उसी समय उन चट्टानों के मध्य न जाने किधर से एक अत्यंत सुंदर बनवासी स्त्री वहां दिखाई दी। वह हिरण की खाल धारण किए हुए थी। उसने निकट आकर कहा -

"आज मेरे द्वार पर अतिथि पधारे हैं। स्वागत है।"

उसे देख कर वे वानर भयभीत हो गये। इस बीहड़ स्थान पर वह स्त्री जैसे पत्थर फोड़ कर प्रगट हो गई थी। न जाने कौन थी वह। कहीं कोई मायाविनी या दानवी तो नहीं थी जो उन्हें मार डालना चाहती हो? संभवतः उसके अन्य साथी वहीं कहीं छिप कर उन पर घात लगा रहे होंगे।

"आप भयभीत न हों। मैं यक्ष कन्या स्वयंप्रभा हूँ। इस दुर्गम स्थान पर रह कर कुछ गुप्त साधनाएं कर रही हूँ।"

वह उन्हें आश्वस्त करती हुई निकट आकर बोली।

"यहां आप कैसे रह रही हैं?"

जाम्बवन्त ने साहस करके पूछा।

"वास्तव में मैं यहां अपनी सखी के साथ रहती थी किंतु इस समय मैं अकेली हूँ। आप लोगों को देख कर मैं प्रसन्न हूँ। आप कौन हैं? और इस ओर क्यों घूम रहे हैं?"

जाम्बवंत ने उन्हें अपना तथा अपने साथियों का परिचय दिया। फिर पूछा -

"हम लंकापति रावण द्वारा अपहृत राम की पत्नी सीता की खोज कर रहे हैं। क्या आप हमारी सहायता कर सकती हैं?"

"अवश्य। आप इधर मेरे पीछे आएँ। मैं आपको अपने आवास पर ले चलती हूँ। वहाँ पर भोजन ग्रहण करें तो मैं आपको लंका की ओर जाने के छोटे रास्ते का पता बता सकती हूँ।"

स्वयंप्रभा नामक यक्षिणी उन्हें अपने साथ उन पर्वतों के मध्य एक पतली दरार में से अपने आवास की ओर ले गयी। अंदर जाकर वह दरार चौड़ी हो गयी थी और कई भागों में बट गई थी। एक भाग में उसका निवास था। वहाँ जीवनोपयोगी समस्त सुविधाएं थी।

उन सबको भोजन आदि से तृप्त करके स्वयं प्रभा ने उनका मार्गदर्शन करते हुए एक अन्य गुहामार्ग की ओर संकेत करते हुए कहा -

"महानुभावो! रावण के अत्याचारों से सभी वनवासी पीड़ित तथा भयभीत हैं। परस्ती का अपहरण करके उसने संपूर्ण स्त्री जाति के प्रति अपराध किया है। ऐसे अनाचारी के पराभव में यदि मैं किंचित मात्र भी सहायक हो सकूं तो स्वयं को धन्य समझूँगी। आप सभी मेरे पीछे-पीछे मशालों हाथ में लेकर चलें। यह मार्ग गुप्त है। दुर्गम है किंतु छोटा है। यह पर्वतीय गुप्त सुरंग आपको दोपहर में ही समुद्र के तट पर पहुंचा देगी।"

स्वयंप्रभा हाथ में मशाल लेकर आगे बढ़ी। सबने उसका अनुसरण किया। रास्ता ऊबड़ खाबड़ तथा पथरीला था। वहाँ घना अंधकार फैला था। मशालों के प्रकाश में वह संभल संभल कर चलने लगे। दोपहर पश्चात सामने दूर पर प्रकाश दिखाई दिया।

"आपका गंतव्य आ गया है। अब आप लोग आगे बढ़ें। मेरी शुभकामनाएं आपके साथ हैं।"

स्वयं प्रभा ने उन्हें आगे बढ़ने का संकेत करते हुए कहा। उस प्रकाश की दिशा में वे आगे बढ़ गये। वह उस गुफा का दूसरा मुहाना था। बाहर अस्ताचलगामी सूर्य की धूप बिखरी हुई थी। उन्होंने पीछे पलट कर देखा तो स्वयंप्रभा की मशाल का प्रकाश दूर जाता दिखायी पड़ा।

गुफा से बाहर आकर उन्होंने स्वयं को समुद्र तट पर पाया। वे बढ़ कर चट्टानों के मध्य एक ऊंची शिला पर बैठ गए। सामने सागर की लहरें आ आकर चट्टानों को भिगो रही थीं। ठंडी हवा बहुत सुखद प्रतीत हो रही थी।

"यहाँ तो जैसे पृथ्वी ही समाप्त हो गई। दूर तक जल ही जल दिखाई दे रहा है। यहाँ तो आगे बढ़ने का कोई मार्ग नहीं है। अब हम क्या करें?"

रुद्रायन – 2

अंगद ने सिर पर हाथ फेरते हुए कहा।

"यहां तक आने का मार्ग मिल गया है तो आगे भी कोई राह मिलेगी ही।"

हनुमान बोला।

बहुत देर तक सोचने पर भी उन्हें कोई मार्ग नहीं सूझ रहा था।
निराश होकर अंगद ने कहा -

"यहां से आगे जाने का कोई मार्ग नहीं है और न ही दूर दूर तक कोई मनुष्य ही दिखाई दे रहा है। बिना सीता का पता लगाये लौटने पर हम सबको राजा सुग्रीव के कोप का भाजन बनना पड़ेगा। वह मेरे पिता की हत्या कर चुका है। मुझे वह अवश्य ही मार डालेगा।"

"इस प्रकार निराश न हो युवराज !"

हनुमान ने कहा।

"तुम सब सुग्रीव के मित्र हो। संभवत वह तुम सबको क्षमा कर देगा किन्तु मुझे जीवित नहीं छोड़ेगा। मैं यहां से वापस नहीं जाऊंगा।"

अंगद पुनः दुखी होकर बोला।

"ऐसा मत कहो। हम सब तुम्हें यहां अकेला छोड़ कर नहीं जाएंगे भले ही हमारे प्राण क्यों न चले जायें।"

जाम्बवन्त ने उसे आश्वस्त किया। वे सभी अंगद को घेर कर वहीं बैठ गए। कितनी ही देर वे ऐसे ही पड़े रहे। तब उन्हें एक भयानक स्वर सुनाई पड़ा।

"कौन है?"

हनुमान ने चिल्ला कर पूछा।

"मैं संपाति हूँ। गृध्रों का राजा।"

"गृध्र?"

अंगद चकित हुआ।

"यह गृध्र जाति दंडक वन के दक्षिणी छोर पर निवास करने वाली जंगली जाति है। इनका कबीला गृध्र कबीला कहा जाता है।"

जाम्बवन्त ने समझाया।

"आप कहां हैं गृध्रराज? हम आपको देख नहीं पा रहे हैं।"

हनुमान ले पुकार कर पूछा।

"मैं इधर सबसे ऊंची चट्टान की खोह में हूँ। वृद्ध हूँ और चलने फिरने से लाचार भी। तुम लोग यहां मेरे पास क्यों नहीं आ जाते। और कुछ खाने के लिए भी लेते आना। मैं बहुत भूखा हूँ।"

गृध्र राज ने चिल्लाकर उत्तर दिया।

वानरों ने समुद्र से कुछ सीपियाँ एकत्र कर ली और उन्हें लेकर संपाती के पास पहुंचे।

"यहां खाने के लिए कुछ भी नहीं है गृध्रराज! हम यह कुछ सीपियाँ समुद्र तट से एकत्र करके लाए हैं। आप चाहें तो इन्हें खा लें।"

जाम्बवंत ने उसके सामने सीपियाँ रख दी। संपाती उन्हें तोड़ तोड़ कर खाने लगा। उन्हें समाप्त करके उससे डकार ली।

"कई दिनों बाद आज कुछ खाने को मिला है।"

"आपका संपूर्ण शरीर जला हुआ सा प्रतीत हो रहा है। आपकी यह दशा कैसे हो गई?"

जाम्बवंत ने पूछा।

"यह यह सब मेरे ही कृत्यों का फल है मित्रो! संसार में अहंकार से बड़ा कोई शत्रु नहीं होता। इससे बच कर रहना चाहिए। मेरी यह दशा मेरे अहंकार के कारण ही हुई है।"

"यदि गोपनीय न हो तो विस्तार से बताइए। हमें आपकी बातों से अत्यंत उत्सुकता हो रही है।"

अंगद ने पूछा।

"कुछ गोपनीय नहीं है भाई! मैं गृध्र जाति का राजा था। हम दो भाई थे। मैं और मेरा छोटा भाई जटायु बड़ा होने के कारण पिता की मृत्यु के पश्चात मुझे गृध्रों का राजा बनाया गया। मुझे अपने बल का बड़ा अभिमान था। हम दोनों भाई बहुधा अपने बल की परीक्षा लेकर स्वयं को एक दूसरे से श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयत्न करते रहते थे। एक बार हम दोनों भाई गहन वन में गये। वहां वृक्षों के नीचे बहुत से सूखे पत्ते और लकड़ियां

रुद्रायन – 2

पड़ी हुई थीं। हमने उन्हें एकत्र करके आग जला दी और आपस में होड़ करने लगे कि हम में से कौन उसे एक छलांग में पार कर सकता है। मैंने और जटायु ने उसे कूद कर पार कर लिया। तब मैंने अग्नि का क्षेत्र और बड़ा कर दिया। उसे भी हम पार कर गए। मैंने फिर आग का क्षेत्र बढ़ा दिया। इसी प्रकार मैं आग का क्षेत्र बढ़ाता गया और हम उसे छलांग लगा कर पार करते रहे। जब अग्नि का क्षेत्र बहुत चौड़ा हो गया तो जटायु ने हार मानते हुए कहा -

"अब बहुत हो गया भाई! अब हमें लौट चलना चाहिए!"

"तुम हार गए?"

"हाँ भाई! मैं हार मानता हूं। अब वापस लौट चलें।"

जटायु ने आग्रह किया किंतु बल के अभिमान मैंने उत्तर दिया -

"तुम हार गए तो लौट जाओ। मैं इसे पार किए बिना नहीं जाऊंगा।"

जटायु के बार बार कहने पर भी मैं नहीं माना और उस विशाल अग्निमय क्षेत्र को पार करने के लिए छलांग लगा दी। अग्नि का धेरा बहुत बड़ा था और अग्नि भी धधक रही थी। मैं भी बहुत थका हुआ था। संभवतः इन्हीं कारणों से उसे पार न कर सका और उस अग्निकुंड में गिर पड़ा। जटायु ने मुझे बड़ी कठिनाई से बाहर निकाला परन्तु तब तक मैं चेतनाशून्य हो चुका था। सम्भवतः मुझे मृत जान कर जटायु कहीं चला गया।

जब मेरी चेतना लौटी तब मैंने स्वयं को चंद्रमा ऋषि के आश्रम में पाया। मैं अग्निदाह से जीवित तो बच गया था परंतु हिलने डुलने में भी असमर्थ था। चंद्रमा ऋषि विभिन्न जड़ी बूटियों से मेरा उपचार करते और जब तक जीवित रहे मेरे भोजन आदि की व्यवस्था करते रहे। कुछ दिन पूर्व वे समुद्र में डूब गए। तब से मैं अकेला अपाहिज बना यहां पड़ा हुआ हूँ। कौन मुझे भोजन पानी देगा? बस किसी प्रकार जीवित हूँ। पता नहीं मेरे भाई जटायु का क्या हुआ?"

संपाति ने दुखी होकर कहा। "सम्भवतः आप जटायु मुनि की बात कर रहे हैं। वे गृध्र जाति के थे और दंडक वन में निवास करते थे।

अयोध्या नरेश दशरथ के पुत्र राम अपने भाई लक्ष्मण और पत्नी सीता के साथ उनके आश्रम के निकट ही कुटिया बनाकर रहते थे।"

हनुमान बोले।

"आप बार बार भाई जटायु के लिये भूतकाल की क्रिया का प्रयोग क्यों कर रहे हैं? क्या अब वह"

संपाति ने सहम कर पूछा।

"राम तथा लक्ष्मण की अनुपस्थिति में लंका के राजा रावण ने सीता का हरण कर लिया। तब सीता को बचाने के लिए रावण से युद्ध करते समय जटायु मुनि मारे गये।"

"हाय, मेरा भाई भाई जटायु ... वह सदा से परोपकारी था। दूसरों के हित के सामने कभी उसने अपने हित को महत्व नहीं दिया और परोपकार करते हुए ही देह त्याग दी। अवश्य वह स्वर्ग-लोक में स्थान पा गया। मैं पापी यहीं इसी लोक में नर्क के समान दुख भोग रहा हूँ।"

संपाति ने विलाप करते हुए कहा।

"हम लोग उन्हीं माता सीता को ढूँढ़ने के लिए आये हैं परंतु यहां से आगे जाने का मार्ग नहीं दिखाई देता। यदि आप हमारा मार्गदर्शन कर सकें तो बड़ी कृपा होगी।"

अंगद ने निवेदन किया था।

"मैं जानता हूँ यह स्थान बहुत ऊँचाई पर है। यहीं से मैंने एक दिन रावण को तीव्रगामी यान से समुद्र पार कर के लंका में जाते देखा था। मैं तुम लोगों को वह स्थान दिखाता हूँ देखो, उस ओर पूर्व की दिशा में वह स्थान देखो जहां समुद्र तट का एक सिरा समुद्र में कुछ भीतर तक प्रवेश करता दिखाई दे रहा है। वहां से लंका द्वीप के मध्य समुद्र संकरा हो गया है। वहीं से उसे पार करके लंका में जाया जा सकता है। वहीं सीता को ढूँढ़ा जा सकता है। अब आप लोग यह विचार कर लें कि आप में से कौन कैसे समुद्र पार कर सकता है।"

संपाति ने उन्हें दूर स्थित वह स्थान दिखा दिया जहां समुद्र का पाट कम चौड़ा था।

"अब आप लोग मुझे किसी प्रकार सहारा देकर समुद्र तट तक ले चलें जिससे मैं अपने दिवंगत भाई को जलांजलि दे सकूँ।"

संपाति के कहने पर वे उसे सहारा देकर समुद्र तट तक ले गये। जल के कुछ भीतर जाकर उसने अपने भाई जटायु को जलांजलि दी। तभी एक तीव्र लहर उससे आकर टकराई और उसे अपने साथ बहा ले गयी।

हनुमान, जाम्बवन्त तथा अन्य वानरवीर युवराज अंगद के साथ सम्पाति द्वारा इंगित दिशा की ओर बढ़ गये। संपाति के इस प्रकार समुद्र में अनायास ही बह जाने के कारण उन्हें दुख तो हुआ किंतु यह मान कर संतोष भी हुआ कि इस प्रकार उसे अपने असह्य कष्ट से भरे अभिशास जीवन से मुक्ति भी मिल गई। उस ओर समुद्र संकरा होने के बाद भी कई योजन चौड़ा था। उसके विस्तार पर दृष्टि डालने पर भी दूसरा किनारा एक रेखा के समान ही दिखाई देता था।

"कितनी दूरी होगी यहां से लंका की?"

अंगद ने पूछा।

"संभवतः सौ योजन या उससे भी अधिक।"

जाम्बवन्त ने अनुमान लगाते हुए कहा।

"इसे पार करना अत्यंत कठिन है और साथ में कोई नौका भी नहीं है। फिर इसे कैसे पार किया जाए?"

"पार तो करना ही होगा। आसपास ऐसे वृक्ष आदि भी नहीं हैं जिनसे नौका तैयार की जा सके। यहां तो केवल रेत और प्रस्तर शिलाएँ ही हैं चारों ओर।"

अंगद के स्वर में निराशा भर गयी।

"इसे तैर कर ही पार करना होगा। यहां समुद्र कुछ उथला भी प्रतीत हो रहा है। बीच धारा में इसकी गहराई अधिक होगी। हमारे बीच कौन ऐसा है जो इसे तैर कर पार कर सके?"

जाम्बवन्त ने पूछा।

"मैं प्रयत्न कर सकता हूँ परंतु इतनी दूर जाना संभव नहीं।"

एक योद्धा बोला।

"मैं प्रयास करूँ तो संभवतः किसी प्रकार लंका तक पहुंच जाऊँ परन्तु लौटने की शक्ति तब मुझे में बची होगी या नहीं इसमें मुझे संदेह है।"

अंगद ने कुछ चिंतित होकर कहा।

"नहीं युवराज! आप लोग यहीं ठहरें। मैं आप सबसे अधिक स्वस्थ और बलवान हूँ। मैं कई बार तैराकी प्रतियोगिताएँ भी जीत चुका हूँ अतः मैं ही जाता हूँ। आप सब प्रतीक्षा करें। मैं लंका जाकर सीता देवी का समाचार लेकर यथासंभव शीघ्र ही लौटूंगा।"

हनुमान ने दृढ़ स्वर में कहा।

"और कोई उपाय भी नहीं है हनुमान! हममें से कोई भी यह कार्य करने में समर्थ नहीं है। मैं वृद्ध न होता तो मैं स्वयं ही जाता। तुम समुद्र के बीच उभरी चट्टानों का सहारा लेकर आराम से तैर कर जाओ और लंका का समस्त समाचार लेकर शीघ्र ही लौटने का प्रयत्न करना। यदि थकान अधिक हो जाए तो कुछ समय विश्राम करने के उपरांत ही लौटने का प्रयास करना। हम तुम्हारे लौटने तक यहीं तुम्हारी प्रतीक्षा करेंगे।"

जाम्बवंत ने हनुमान को प्रोत्साहित करते हुए समझाया। तब हनुमान समुद्र के किनारे चलते हुए उस स्थान पर पहुंचे जहां समुद्र अन्य स्थानों की अपेक्षा अधिक संकरा दिखाई दे रहा था और समुद्र में कूद कर तैरने लगा।

मार्ग में जिस जिस स्थान पर समुद्र उथला था वह वहां पर टिक कर सांस ले लेता। मार्ग में एक विशाल जलदस्यु से उसे युद्ध भी करना पड़ा। उसे देख कर अचानक उस पर एक विशाल जलजंतु ने आक्रमण कर दिया तब हनुमान ने अपनी गदा से उसे मार डाला। जलमार्ग में ही उसकी मुठभेड़ विशाल सर्पिणी से भी हुई परंतु उसकी गदा की चोट से घबरा कर वह भाग गई। दिन भर के अथक प्रयास के बाद जब हनुमान लंका की भूमि पर पहुंचा तब दिन ढूबने वाला था।

तट पर कुछ देर पेट के बल पड़े रह कर उसने विश्राम किया और सायं काल के धुंधलके में एक ऊँचे पर्वत शिखर पर चढ़ कर उसने लंकापुरी को देखा। वह विशाल नगरी थी जो चौड़े और ऊँचे परकोटे से

घिरी हुई थी। लंकापुरी को चारों ओर से समुद्र ने घेर रखा था और इस प्रकार उसे पूर्ण सुरक्षित बना दिया था। नगर की चहारदीवारी में चारों दिशाओं में चार ऊंचे ऊंचे द्वार बने हुए थे जिन पर लगे हुए किवाड़ मोटी, मजबूत लकड़ी के बने हुए थे और उन पर सोने के रंग वाले पत्तर जड़े हुए थे। उन पर मोटी मोटी नुकीली कीलें लगी थीं जिन्होंने उस किले को अभेद्य बना दिया था। चारदीवारी में स्थान स्थान पर बुर्ज बने थे जिस पर सैनिक पहरा दे रहे थे।

किले के भीतर नगर के चौड़े मार्गों और गलियों में मार्ग के दोनों ओर विभिन्न प्रकार की वस्तुओं को बेचने के लिए दुकानें बनी हुई थीं। नगर में बहुत चहल-पहल थी। स्थान स्थान पर लोग मांस भक्षण करते हुए मदिरापान कर रहे थे। सभी आमोद प्रमोद में व्यस्त थे। वहां की स्त्रियां विभिन्न जातियों (मनुष्य, देव, दानव, यक्ष, गंधर्व आदि) की थीं तथा अत्यंत सुंदर थीं। पुरुष श्यामवर्ण वाले, विशालकाय तथा बलिष्ठ थे। मार्गों तथा गलियों में मशालें प्रज्वलित हो रही थीं जिससे नगर मार्ग प्रकाशित हो रहे थे।

हनुमान ने वहां के बन प्रांत से फल खाकर अपनी भूख मिटायी और रात होने पर सबके सो जाने तथा पहरेदारों के भी निद्रालस हो जाने की प्रतीक्षा करने लगा। रात के तीसरे पहर में लंका नगरी के मार्गों में नीरवता व्याप्त हो गई। अधिकांश मशालें बुझ चुकी थीं। केवल चतुष्पथों पर ही एकाध मशालें प्रज्ज्वलित हो रही थीं। तब हनुमान ने नगर में प्रवेश करने का निश्चय किया। वह झुक कर चलता हुआ, प्रहरियों की दृष्टि से बच कर अंदर प्रवेश कर गया।

कुछ आगे जाने पर उसे एक स्त्री नगर रक्षिका ने रोक लिया। उसका नाम लंकिनी था और वह उन प्रहरियों की रात्रिकालीन टुकड़ी की अध्यक्षा थी। उसने हनुमान को ललकारा। हनुमान ने उसकी छाती पर भयंकर मुष्टि प्रहार किया तो वह रक्त वमन करती हुई गिर पड़ी।

हनुमान आगे बढ़ा। उसने लंकिनी की काली पगड़ी उठा ली और उसे खोलकर ओढ़ लिया। अंधकार में उसका ही एक भाग बन कर वह

गलियों, मार्गों से होता हुआ बड़े बड़े प्रासादों, भवनों में घुस कर सीता की खोज करने लगा। एक प्रकार से उसने पूरी लंका नगरी को खंगाल डाला परंतु सीता कहीं न मिली। कोई भी स्त्री उसे ऐसी न मिली जिसे देख कर वह उसके सीता होने का अनुमान लगा पाता। इस कार्य में पूरी रात बीत गई। अरुणोदय हो गया। आकाश में सूर्य के आगमन की सूचना देने वाली रक्तिम किरणें फैल गयीं। चिंतित हनुमान को अब लंका से बाहर जाना होगा या फिर किसी गुप्त स्थान पर छिप कर रात्रि होने की प्रतीक्षा करनी होगी जिससे पुनः सीता का संधान किया जा सके।

हनुमान लंका पुरी के राज्य प्रासाद से दूर उसके पिछले भाग में पहुंच गया। वहां उसे एक साधारण सा आवास दिखाई दिया जिसके चारों ओर तुलसी की झाड़ियां लगी हुई थीं। अत्यंत साधारण तथा अलंकरण विहीन होते हुए भी उसकी सादगी मन को मुग्ध कर रही थी। अभी हनुमान विचार ही कर रहा था कि क्या करे कि तभी घर के अंदर से 'नारायण' नाम का स्मरण करता हुआ गृहस्वामी बाहर आया।

उसे देख कर हनुमान ने अपना आवरण झाड़ी के पीछे छिपा दिया और सामने आ गया। उसे प्रणाम करते हुए गृहस्वामी ने पूछा -

"आप कौन हैं महानुभाव? यहां कैसे पथारे? आप की आकृति ब्राह्मणों सी जान पड़ती है। यहां लंका में आप कैसे आ गए?"

"मैं हनुमान हूं भाई! आप कौन हैं?"

हनुमान ने प्रणाम का उत्तर देते हुए पूछा।

"मैं लंकापति रावण का छोटा भाई विभीषण हूँ। यह मेरा आवास है। आप पथारिए। विश्राम कीजिए। भोजन कीजिए। फिर अपने विषय में बताइए। लंका में आपका आदर तो न हुआ होगा!"

विभीषण स्नेह पूर्वक हनुमान को घर के अंदर ले गया। उसे स्नान आदि की सुविधा प्रदान की। अपने नित्य कार्यों से निवृत्त होकर उसने हनुमान से वहां आने का कारण पूछा। विभीषण के सरल व्यवहार तथा सदाचरण से हनुमान अत्यंत प्रभावित हुआ। उसे धर्म तथा नीति का पालन करने वाला जान कर हनुमान ने उससे लंकापुरी के संबंध में बातें

करके जान लिया कि विभीषण अपने भाई रावण के अनैतिक कार्यों का विरोधी है तथा रावण से उसके संबंध अच्छे नहीं हैं। 'शत्रु का शत्रु मित्र होता है' इस नीति का अनुसरण करते हुए हनुमान ने उसे अपना संपूर्ण वास्तविक परिचय देकर अपने आने का उद्देश्य भी बता दिया।

"भाई विभीषण! लंकापति ने दाशरथि राम की पत्नी को उनकी अनुपस्थिति में उनके आश्रम से चुरा लिया है। इस अनैतिक कार्य को क्या आपकी आत्मा स्वीकार करती है? राम सीता को प्राप्त करने के लिए भटक रहे हैं और मुझे विश्वास है कि उनसे दूर होकर देवी सीता भी सुखी नहीं होंगी। क्या इस प्रकार दो परस्पर प्रेम करने वाले पति पत्नी को केवल अपने अहंकार की तुष्टि के लिए अलग कर देना लंकाधिपति को शोभा देता है?"

"नहीं भाई! हमने इसका पर्याप्त विरोध किया है। यहां तक कि रानी मंदोदरी ने भी इसे किसी प्रकार स्वीकार नहीं किया। उनके प्रबल विरोध के कारण ही लंकापति देवी सीता को राजप्रासाद में रखने का साहस नहीं कर सका और उन्हें अपने गुप्त अशोक वाटिका नामक उद्यान में कड़े पहरे में सुरक्षित रख छोड़ा है।"

"अशोक वाटिका?"

"हाँ भाई हनुमान! अशोक वाटिका समस्त सुविधाओं से युक्त एक सुरम्य उद्यान है जहां बिना लंकापति की अनुमति के कोई प्रवेश नहीं कर सकता। वस्तुतः यह स्थान रावण की रंगस्थली है। सुंदर स्त्रियाँ उसकी दुर्बलता हैं। उसके रनिवास में सभी देशों की सुंदरियां हैं। जो स्त्री उसे पसंद आ जाती है वह उसका अपहरण कर लेता है और कुछ भय से और कुछ उसके वैभव से अभिभूत होकर उसे पति रूप में स्वीकार कर लेती हैं। ऐसी स्त्रियों को वह तब तक अशोक वाटिका में ही रखता है जब तक वे उसे स्वीकार नहीं कर लेतीं।"

"तो इसका अर्थ यह हुआ कि सीता माता ..."

"हाँ, बड़ी दुर्दर्ष और साहसी स्त्री है सीता। न उसे लंकापति के दिये प्रलोभन आकृष्ट कर पाए और न ही उसकी शक्ति से वह भयभीत हुई।

उसके नेत्रों में तो उसके पति राम की ही मूर्ति विराजमान रहती है। सीता ने तो एक बार दृष्टि उठा कर भी रावण की ओर नहीं देखा। वह तो लंकापति की ओर देख कर बात भी नहीं करती। सदैव अपने पैरों की ओर देखती रहती है या प्रकृति के उपादानों को। अद्भुत है उसका साहस। जितना ही वह विरोध करती है उतना ही लंकापति का हठ भी बढ़ता जाता है। लंकाधिपति ने सीता को एक मास का समय और दिया है। उसका संकल्प है कि वह एक मास में सीता को स्वयं समर्पण के लिए विवश कर देगा अन्यथा उसकी हत्या कर देगा।"

विभीषण ने बताया।

"क्या कहा? देवी सीता की हत्या? फिर तो उनके प्राण संकट में हैं। उन्हें शीघ्र ही सुरक्षित रावण के बंदी-गृह से मुक्त कराना होगा।"

हनुमान चिंतित हुआ।

"किंतु तुम एकाकी क्या कर सकते हो?"

"मैं तो दूत बन कर आया हूं राम का। सीता को देख कर, उनका समाचार लेकर तथा उन्हें धैर्य बंधा कर मुझे शीघ्र ही लौटना होगा।"

"भाई, क्या राम अत्यधिक बलशाली है? खर, दूषण और त्रिशिरा तीनों ही अत्यधिक पराक्रमी थे तभी राजा रावण ने उन्हें दंडक वन की रक्षा के लिए सूर्णनखा के अधीन नियुक्त किया था। उनका राम और लक्ष्मण दो राजकुमार ने सेना सहित विनाश कर दिया और बहन सूर्णनखा जैसी विकट स्त्री को पराभूत कर दिया। इससे तो ऐसा ही प्रतीत होता है कि वे अनुपम वीर हैं। हम जैसे लोगों की लंका में नगण्य संख्या है जो रावण के अनाचार पूर्ण व्यवहार को स्वीकार नहीं करते किंतु हम उसका विरोध भी नहीं कर पाते। हम तो लंकापुरी में ऐसे रह रहे हैं जैसे बत्तीस दांतों के बीच कोमल जिह्वा इस भय से सहमी रहती है कि कहीं दांत उसे कुचल ही न दें। अब तो राम ही हमारी आशा के केंद्र हैं। वे ही हमारी रक्षा कर सकते हैं।"

उदास स्वर में कहा विभीषण ने।

रुद्रायन – 2

"भाई विभीषण! मैं माता सीता से मिलना चाहता हूँ। समय कम है और कार्य अधिक। यदि आप सहायता करें तो मैं उनके दर्शन कर लूँ।"

हनुमान ने विभीषण के कंधे पर हाथ रख कर आत्मीयता पूर्ण स्वर में कहा।

"अवश्य, किंतु अभी चारों ओर दिन का प्रकाश फैला हुआ है। ऐसे में आप वहां जाने का प्रयत्न करेंगे तो प्रहरियों की दृष्टि में आ जाएंगे। आप दिन में विश्राम करें। सायं काल मार्ग निरापद होने पर मैं आपको वहां तक पहुंचने की युक्ति बता दूँगा।"

विभीषण ने हनुमान को आश्वस्त किया।

दिन भर हनुमान ने विश्राम किया। शाम का धुंधलका फैलने लगा तब विभीषण के बताए गुप्त मार्ग से प्रहरियों की दृष्टि से स्वयं को बचाते हुए हनुमान अशोक वाटिका में जा पहुंचा।

अशोक वाटिका अत्यंत सुंदर उद्यान था जहां भांति भांति के वृक्षों तथा पुष्प पादपों से अनेक प्रकार की सुगंध फैल रही थी। वाटिका के बाहर ही नहीं भीतर भी प्रहरी नियुक्त थे। एक अशोक के वृक्ष के निकट सिर झुकाए मलिन वस्त्र में लिपटी रुक्षी को देख कर हनुमान ने अनुमान लगाया कि यही सीता है। वह वृक्षों की ओट में छिप कर रात्रि का अंधकार होने की प्रतीक्षा करने लगा। घड़ी भर बाद चारों ओर अंधकार फैल गया। हनुमान ने एकांत में अवसर पाकर सीता के निकट जाकर उन्हें प्रणाम किया।

"भयभीत न हों देवी! मैं किञ्चिंधा नरेश सुग्रीव का मंत्री, मित्र और दशरथनंदन राम का दूत हूँ। महाराज सुग्रीव ने अपने मित्र राम की सहायता करने के लिए हमें आपको ढूँढने का आदेश दिया है। यह मुद्रिका राम ने आपको विश्वस्त करने के लिए भेजी है।"

हनुमान ने राम की दी हुई मुद्रिका सीता को दे दी। उसे देख कर उन्हें विश्वास हो गया कि हनुमान राम के द्वारा ही भेजे गए हैं। हनुमान ने सीता से राम और सुग्रीव की मित्रता का सविस्तार वर्णन किया तथा यह भी बताया कि नर वानरों की विशाल सेना लेकर राजकुमार राम लंका पर

आक्रमण करके उन्हें शीघ्र ही मुक्त कराने के लिये कोल, भील, पायक, कपोत, गृध्र आदि वन्य जातियों को एकत्र करने के अभियान पर लगे हुए हैं। राजा सुग्रीव के सौजन्य से उन्हें कपि, वानरों तथा ऋक्षों का सहयोग प्राप्त ही है। दंडक वन में निवास करने वाले विभिन्न ऋषि मुनि भी अस्त्र शस्त्र से सहयोग करने के लिए तत्पर हैं। एकता में बल होता है। मुख्य भूमि के निवासियों की सम्मिलित शक्ति के समुख रावण की सेना अधिक दिनों तक नहीं टिक सकेगी।"

हनुमान ने सीता को आश्वासन दिया -

"आप कुछ दिन और धैर्य धारण करें तथा राम की प्रतीक्षा करें।"

"यदि एक मास पर्यंत राम नहीं आए तो भी मुझे जीवित नहीं पाएंगे।"

सीता ने दुखी होकर बताया।

"वे इसके पूर्व ही आपको यहां से मुक्त करा लेंगे। अब आप भी प्रभु राम के लिए कोई ऐसी वस्तु दें जिसे देख कर उन्हें यह भरोसा हो सके कि मैं आपसे मिल कर आया हूँ।"

सीता ने हनुमान के कहने पर अपने केशों में लगी चूड़ामणि निकाल कर हनुमान को दे दी। सीता से विदा होकर जब हनुमान लौटने लगे तब रात्रि व्यतीत हो चुकी थी और अरुणोदय हो रहा था।

सीता से मिलने तथा अपना कार्य पूर्ण कर लेने के उत्साह में हनुमान को भूख लग आयी। चारों ओर फलदार वृक्षों को देख कर उसके मुंह में पानी आ गया। बाहर आते समय उसने हाथ बढ़ा कर कुछ फल तोड़ कर खाना आरंभ कर दिया। फल तोड़ते समय वृक्षों की कुछ शाखाएं टूटीं तो प्रहरी चौंक पड़े। वे हनुमान की ओर दौड़े और उस पर आक्रमण करने लगे। हनुमान भी कहां पीछे हटने वाला था। अपनी गदा घुमाते हुए वह भी उन पर टूट पड़ा। अधिकांश सैनिक मारे गए। कुछ घायल हो गए। कुछ बचे हुए सैनिकों ने भाग कर रावण को सूचना दी -

"महाराज! अशोक वाटिका में कोई वानर घुस आया है। उसने हमारे रक्षकों को मार दिया है और अब उद्यान को उजाड़ रहा है।"

रावण ने अपने छोटे पुत्र अक्षकुमार को एक सैनिक टुकड़ी के साथ भेज दिया। अक्षकुमार अभी किशोर ही था। युद्ध का उसे विशेष ज्ञान न था। हनुमान ने उन सैनिकों को भी मार डाला। इस युद्ध में अक्षकुमार भी मारा गया। सैनिकों ने जब लंकापति को राजकुमार अक्ष के मारे जाने का समाचार दिया तो वह क्रोध से पागल हो उठा और स्वयं ही खड़ग लेकर अशोक वाटिका की ओर जाने लगा।

उसके बड़े पुत्र मेघनाथ ने पिता को रोकते हुए कहा -

"पिताश्री! एक वानर को मारने के लिए आपका इस प्रकार जाना शोभा नहीं देता। आप यहीं प्रतीक्षा करें। मैं स्वयं उससे युद्ध करने जा रहा हूँ।"

"ठीक है पुत्र! किंतु तुम उसे मारना मत। उसे जीवित पकड़ कर मेरे सम्मुख ले आओ। मैं भी तो देखूँ कि वह कौन है और लंकापुरी में कैसे प्रवेश कर पाया है।"

रावण का आदेश पाकर युवराज मेघनाथ थोड़े से सैनिकों के साथ अशोक वाटिका जा पहुंचा। हनुमान से उसका भयंकर युद्ध हुआ। अंततः मेघनाथ के सामने हनुमान ने समर्पण कर दिया। उसे बांध कर वह रावण के दरबार की ओर ले चला।

हनुमान रावण की राज्यसभा, उसके मंत्रियों तथा दरबारियों की बुद्धिमत्ता तथा स्वामिभक्ति का आकलन करना चाहता था। उसे लंका की सैन्य शक्ति तथा आयुधागार की भी जानकारी करने की इच्छा थी। इसलिये वह मेघनाथ के साथ बंदी के रूप में ले जाया जाने पर भी निर्भय एवं आश्वस्त था।

मेघनाथ ने उसे लंकाधिराज के दरबार में प्रस्तुत किया। उसका वैभवशाली दरबार देखकर हनुमान चकित रह गया। रावण के दरबार में अनेक देशों के राजा उसकी आज्ञा का पालन करने के लिए तत्पर थे। मंत्रियों का विशाल समूह उसको राजनीति का मार्ग बताने के लिए उपस्थित था। सैनिकों की सुदृढ़ पंक्ति ने दरबार को चारों ओर से घेर रखा

था। दरबारियों को मदिरा परोसी जा रही थी। नृत्य हो रहा था। वायु बज रहे थे।

हनुमान को देख कर लंकापति ने संकेत से नृत्य रोक दिया। क्रोधित होकर पूछा -

"कौन हो तुम? लंका में तुमने कैसे प्रवेश किया? किसलिए आए हो? अशोक वाटिका को नष्ट क्यों कर रहे थे?"

"मैं दशरथपुत्र राम का दूत हनुमान हूँ। यहां देवी सीता का अन्वेषण करने के लिए आया हूँ। लंका में कैसे प्रवेश किया या अशोक वाटिका में कैसे पहुंचा ये निरर्थक प्रश्न हैं। मैं तो केवल कुछ फल तोड़ कर खाना चाहता था। फल तोड़ने के प्रयास में एकाध शाखाएं टूट गयीं और आप के रक्षक मुझे मारने लगे। मैंने भी उन्हें मारा। फिर भी मुझे यहां बंदी बनाकर लाया गया है। आपके सम्मुख उपस्थित हूँ तो अपने स्वामी का संदेश सुनाना चाहता हूँ।"

"कैसा संदेश?"

"यही कि राजाओं को पर-स्त्री हरण करना शोभा नहीं देता। आप उनकी स्त्री को लौटा दें। उनका आपसे कोई वैर नहीं है।"

"और यदि मैं ऐसा न करूँ?"

"तो युद्ध के लिए तैयार रहें। जिस प्रकार मैं यहां आपके रहते प्रवेश कर गया और आपको इसका ज्ञान तक नहीं हो सका। उसी प्रकार राम सेना सहित आकर लंका का विनाश करके अपनी पत्नी को मुक्त करा ले जाएंगे।"

हनुमान की बात सुनकर रावण क्रोधित हो गया। हनुमान ने परस्ती चोर तथा लंपट कह कर उसे अपमानित किया तो उसने हनुमान के वध का आदेश दे दिया। उसी समय विभीषण ने राज्यसभा में प्रवेश किया। उसने रावण से विनती की -

"महाराज! यह दत होने के कारण अवध्य है। यदि आप इसे दंडित ही करना चाहते हैं तो कोई अन्य दंड दे दें किंतु इसके प्राण न लें।"

अन्य मंत्रियों ने भी विभीषण की बात का समर्थन किया। रावण बोला -

"यदि इसे प्राण दंड देना अनुचित है तो इसका अंग भंग करके वापस भेज दो। जब इसे अंग भंग करके भेजा जाएगा तभी यह अपने वनवासी स्वामी को लेकर आएगा। देखूँगा कि इसका स्वामी कितना सबल है।"

रावण के कहने पर उसके सैनिक हनुमान को बांध कर, उसके आगे ढोल पीटते हुए तथा उसकी लंबी चोटी को खींचते हुए लंका की गलियों में घुमाने लगे। लंकावासियों के बालक तथा स्त्री पुरुष ताली बजाते हुए उसके पीछे लग गये। भली-भांति अपमानित करने के बाद सैनिकों ने उसकी चोटी में लंबा वस्त्र बांध कर उसे तेल से तर कर दिया और आग लगा दी।

हनुमान ने सिर को झटका तो जलती हुई चोटी उसके बंधनों पर पड़ी और उसे जलाने लगी। झटके से उसने अपने बंधन तोड़ दिये और जलते हुए वस्त्रों की चोटी लहराता हुआ एक घर की छत पर जा चढ़ा। इस छत से उस छत पर, इस घर से उस घर पर धूम धूम कर हनुमान ने लंकापुरी के विभिन्न घरों में आग लगा दी। तेज चलती हवा ने अग्नि को भलीभांति प्रदीप कर दिया। चोटी में बंधे कपड़े को हनुमान ने खींच कर निकाला और राजभवन की अटारी पर फेंक दिया।

नगर की अधिकांश इमारतें धू धू कर के जलने लगीं। चारों ओर हाहाकार मच गया। चीख पुकार होने लगी। कोई अपने बालकों को बचाने की गुहार लगा रहा था तो कोई सामान को। कई स्त्रियां क्रुद्ध होकर रावण को भला बुरा कहने लगीं। चारों ओर अफरा-तफरी, भागदौड़ मची थी। इसी भगदड़ में हनुमान लंका से बाहर हो गया और समुद्र के उसी स्थल की ओर चल पड़ा जिधर से वह आया था। एक बार समुद्र तट पर पहुंचने के बाद उसके सामने बाहर निकलने और वापस मुख्य भूमि पर पहुंचने के लिए निर्विघ्नं राह प्रशस्त थी। कुछ देर समुद्र तट पर उसने विश्राम किया। अपनी शक्ति एकत्र की और ईश्वर का नाम लेकर समुद्र में

उतर गया। उस ओर का मार्ग छोटा अवश्य था परंतु संपूर्ण समुद्र बड़ी-बड़ी चट्टानों से भरा पड़ा था। यहीं कहीं था मैनाक नामक पर्वत जिसके शिखर समुद्र के जल में डूबे हुए थे। राह कठिन थी किंतु उसका सबसे बड़ा लाभ यह था कि हनुमान को मार्ग में शिलाओं का सहारा मिल जाता था।

तीन पहर रात गये हनुमान मुख्य भूमि पर आ पहुंचा जहां उसके मित्र और साथी सहचर उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। हनुमान को देखते ही उनमें उल्लास की लहर दौड़ गयी।

"आहा, आ गया पवनपुत्र। जय हो, जय हो!"

"ईश्वर भी उन्हीं की सहायता करता है जो स्वयं अपनी सहायता करना जानते हैं। कैसे हो हनुमान?"

जांबवन्त ने साग्रह पूछा। सभी वानर उसे धेर कर बैठ गये। एक ऊंची शिला पर सब के मध्य बैठे हुए हनुमान ने अपनी सफलता की सूचना दी।

"दुर्गम है लंका परंतु अत्यंत सुरम्य भी। इतना सुंदर स्थान, प्राकृतिक संपदा से संपन्न, धन-धान्य से युक्त, वीरों से कंटकाकीर्ण है लंकापुरी। न वहां धन, आयुधों और वीरों की कमी है न स्त्री धन की। एक ही बात जानते हैं वहां के जन - स्त्री और भूमि दोनों ही वीर भोग्या है।"

"और वहां के शस्त्रागार, नगरबीथिकाओं को देखा तुमने? नगरकोट के सबल और दुर्बल स्थल ...?"

अंगद ने पूछा।

"वह सब भली भाँति देख समझ आया हूँ युवराज! देवी सीता को जिस अशोक वाटिका नामक उद्यान में रावण ने रखा है वहाँ भी गया था मैं। उसे पूरी तरह नष्ट भ्रष्ट कर आया और लंका...."

"लंका में लगी आग हमने यहां से देखी थी। बस तुम्हारी और देवी सीता की कुशलता की कामना करते रहे हैं हम तभी से।"

"वह तो कुछ ऐसा घटनाक्रम चल पड़ा कि क्या कहूँ परंतु अब हमें शीघ्र ही महाराज सुग्रीव के पास चलना चाहिए। दाशरथि राम पत्नी का

रुद्रायन – 2

समाचार जानने के लिए अधीर हो रहे होंगे।"

हनुमान ने कहा।

"तो चलो, सब शीघ्रता से मशालें तैयार कर लो। उसमें वृक्ष की लाख अवश्य भर लेना।"

युवराज ने आदेश दिया।

"उसकी चिंता न करें युवराज ! हमने जब लंका में अभि प्रज्वलित होते हुए देखी थी तभी मशालें तैयार कर ली थीं।"

जाम्बवन्त के संकेत करने पर सभी युवराज और हनुमान को बीच में करके पुनः उसी सुरंग मार्ग की ओर चल पड़े। वह उनका ज्ञात मार्ग था और संक्षिप्त भी इसीलिए वे उसी मार्ग से लौट पड़े।

"यह मार्ग हम थोड़े से लोगों के लिए तो ठीक है किंतु हमारी सेना के लिए यह मार्ग उपयोगी नहीं होगा।"

मार्ग में चलते हुए अंगद बोला।

"महाराज सुग्रीव, राजकुमार राम और लक्ष्मण तथा कुछ चुने हुए योद्धा ही इस मार्ग से आएंगे। शेष समस्त सेना वन मार्ग से ही समुद्र तट तक पहुंचें यही उचित होगा।"

जाम्बवन्त ने सहमत होते हुए कहा।

सुरंग से बाहर आकर वे तीव्र गति से किञ्चिंधा की ओर चल पड़े। मार्ग में स्थान स्थान पर उन्हें सैन्य शिविर दिखाई पड़े। पूछने पर ज्ञात हुआ कि सीता को लंका का राजा रावण लंका नगरी में ही लेकर गया है यह देवी सीता के फेंके हुए आभूषणों से निश्चित हो गया था। अतः सुग्रीव ने विभिन्न सैन्य टुकड़ियों को दक्षिण दिशा में समुद्र तट की ओर बढ़ने का आदेश दे दिया था। उन्हें समुद्र तट पर पहुंचकर महाराज सुग्रीव की प्रतीक्षा करनी थी।

राजा सुग्रीव की इस बुद्धिमानी पूर्ण पहल ने उन्हें प्रसन्न कर दिया।

"अब हम शीघ्र ही लंका पर आक्रमण कर सकेंगे और एक मास के भीतर ही माता सीता को मुक्त करा लेंगे।"

हनुमान ने किलकारी सी मारी।

"हाँ हनुमान, शत्रु का गढ़ देख लेने के बाद विलंब का क्या काम? चलो, अब हम शीघ्र ही महाराज को वहां के समाचार बता दें।"

वे तीव्र गति से आगे बढ़ चले। किञ्चिंधा पुरी की सीमा पर स्थित राजकीय उद्यान मधुबन पहुंचने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि महाराज सुग्रीव अपने मित्रों तथा मुख्यमंत्रियों सहित उसी उद्यान में उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। हनुमान आदि ने जाकर उन्हें प्रणाम किया तथा सीता के लंका में रहने संबंधी विवरण सुना कर कहा -

"प्रभु ! राजा रावण ने सीता को एक मास की अवधि तक प्रतीक्षा करने के लिए कहा है। यदि इस अवधि में वे स्वेच्छा से रावण के अंतःपुर में सम्मिलित नहीं हुईं तो वह उन्हें मार डालेगा। अब आप विलंब न करें।"

हनुमान ने राम को सीता द्वारा दी गई चूड़ामणि दी तो उनके नेत्र छलक उठे।

"भाई, हनुमान इस समय तुमने भाई के समान मुझे सहारा दिया है। सीता मेरी पत्नी है अतः तुम्हारी भाभी है। भाभी माँ के समान होती है। आज तुमने सीता को सांत्वना देकर और उसका समाचार मुझ तक लाकर हम दोनों को पुनर्जीवित कर दिया है। हमारा कार्य सिद्ध करने के लिए ही लंकापुरी को जला कर वहां के निवासियों को तुमने भयभीत कर दिया।"

"प्रभु ! वहां के निवासी रावण की नीतियों के कारण असंतुष्ट हैं। लंकापति का सौतेला भाई विभीषण भी रावण से असंतुष्ट है और वह ऐसे कई अन्य लंका-वासियों के भी संपर्क में है जो मन ही मन रावण का विरोध करते हैं। आप यदि उन्हें अभयदान देकर अपने साथ मिला लेंगे तो हमें लंका की आंतरिक गुप्त सूचनाएं भी प्राप्त हो जाएंगी।"

हनुमान ने बताया।

"हम इसका ध्यान रखेंगे हनुमान! भाई सुग्रीव! अब हमें शीघ्र ही लंका के लिए प्रस्थान कर देना चाहिए।"

राम ने कहा।

रुद्रायन – 2

"महाराज सुग्रीव ने अधिकांश सैन्यदल तो पूर्व में ही दक्षिण दिशा की ओर भेज दिया है। शेष सैन्य बल के साथ हमें भी प्रस्थान कर देना चाहिए।"

लक्ष्मण ने कहा।

"हम कल प्रातःकाल ही प्रस्थान करेंगे।"

सुग्रीव ने घोषणा की। दूसरे दिन प्रातः सूर्योदय के शुभ मुहूर्त में राम ने सेना के साथ लंका की ओर कूच कर दिया।

जब राम, लक्ष्मण तथा सुग्रीव का दल वन मार्ग से होता हुआ जाम्बवान तथा हनुमान के मार्गदर्शन में सुरंग का मार्ग तय करके समुद्र तट पर पहुंचा तब तक उनकी सेना के कुछ प्रमुख दल वहां पहुंच चुके थे। राम आदि के पहुंचने पर उन्होंने जयघोष करते हुए इनका स्वागत किया। सभी दल प्रमुखों को एकत्र करके राजा सुग्रीव ने उन्हें अपने-अपने दल को व्यवस्थित करने तथा सुविधा अनुसार वन प्रांत में ठहराने के लिए कहते हुए संध्याकाल में अपने शिविर के निकट एकत्र होने का आदेश दिया।

सब के चले जाने पर सुग्रीव के दल के सैनिकों ने एक सुंदर स्थल ढूँढ कर शिविर की स्थापना की जहां जल तथा फल मूल की उपलब्धता सुगम थी। शिविर की सुरक्षा व्यवस्था दृढ़ करने के उपरांत संध्याकालीन विचार मंत्रणा हेतु आहूत गोष्ठी के लिए मैदान में सभी एकत्र हुए। अभी उनकी मंत्रणा आरंभ ही हुई थी कि एक सैनिक ने आकर सूचना दी -

"महाराज! कुछ लोग आपसे मिलना चाहते हैं।"

"कौन है वे?"

सुग्रीव ने पूछा। "पूछने पर उनके प्रमुख ने अपना नाम विभीषण बताया है और कहा है कि वह लंकापति का भाई है। उसके साथ उसके कुछ साथी भी हैं।"

सैनिक ने निवेदन किया।

"लंकापति का भाई यहां क्यों आया है? कहीं वह हमारा भेद तो नहीं जानना चाहता?"

सुग्रीव चिंतित होकर बोला।

"प्रभु! यह लंकापति रावण का वही सौतेला भाई है जो रावण की नीतियों का समर्थन नहीं करता। इसी के संबंध में मैंने आपको बताया था। इसने लंका में अशोक वाटिका तक जाने में मेरी सहायता की थी तथा जब रावण मेरे प्राण हर लेने को तत्पर था तब इसी विभीषण ने मेरी रक्षा की थी।"

हनुमान ने बताया।

"अवश्य इस प्रकार विभीषण के यहाँ अपने साथियों के साथ आने का कोई विशेष ही कारण है। हनुमान! तुम जाकर उन लोगों को सम्मान सहित ले आओ। यदि वे हमारी मित्रता चाहते हैं और शरणागत हैं तो हम उन्हें अवश्य शरण देंगे। यदि वे युद्ध की इच्छा से आए हैं तब भी उन्हें मारने में कोई कठिनाई नहीं होगी।"

राम ने कहा।

उनका संकेत पाकर लक्ष्मण हनुमान के साथ जाकर सम्मान पूर्वक विभीषण तथा उसके साथियों को लेकर राम के निकट आये। राम को देख कर तथा उन से सम्मानित होकर विभीषण के नेत्र भर आये। वह बोला -

"दशरथनंदन! आपने तो भाई से अधिक स्नेह और सम्मान देकर मुझे जीत लिया। भाई रावण ने देवी सीता को लौटाने के लिए कहने पर मुझे लात मार कर निकाल दिया। अब मैं आपकी शरण में हूँ। मेरी पत्नी और मेरी संतानें लंका में ही हैं। मेरे साथियों ने भी रावण के भय से लंका का परित्याग कर दिया और अपने प्राणों की रक्षा के लिए मेरे साथ चले आये। इनके परिवार भी लंका में ही हैं। न जाने रावण उनके साथ कैसा व्यवहार करेगा। अब आप ही हमारी रक्षा कर सकते हैं।"

"अब आप निर्भय हो जायें विभीषण! आप तथा आपके मित्र अब हमारे अपने हो गए हैं। मुझे छल कपट से घृणा है। यदि आप निश्छल हृदय से हमारे साथ हैं तो हम लंका को रावण के अत्याचारों से अवश्य

रुद्रायन – 2

मुक्त कर सकेंगे। लंका के भावी राजा आप ही होंगे। हम सब आपको लंकानरेश स्वीकार करते हैं।"

राम के कहने पर सुग्रीव ने जल पुष्प की व्यवस्था की। राम ने स्वस्तिवाचन करते हुए विभीषण का जलाभिषेक करके मस्तक पर तिलक लगाया।

"लंकापति विभीषण की जय।"

राम के साथ समस्त सेना ने जय घोष किया। भावावेश में आकर विभीषण राम से लिपट गया।

"आपने मुझे पुनर्जीवित कर दिया प्रभु! हम जीवन भर आप के अनुयायी बन कर रहेंगे। हमारे लिए आपका यह स्नेह सम्मान ही पर्याप्त है।"

विभीषण की इस भावाभिव्यक्ति से संतुष्ट होकर राम ने उसे भी अपनी मंत्रणा में सम्मिलित कर लिया।

रावण अत्यंत दूरदर्शी तथा प्रतापी राजा था। उसे पूर्व में ही यह ज्ञान था कि उसका भाई विभीषण उसके महत्वाकांक्षी स्वभाव तथा राज्य विस्तार की नीति को पसंद नहीं करता। उसकी ऐश्वर्यपूर्ण जीवन शैली भी उसकी रुचि के अनुकूल नहीं है। उसने अपने ही समान असंतुष्ट जनों का एक दल बना लिया था जो कभी भी विद्रोह कर सकता था। वस्तुतः विद्रोह का प्रारंभ तो तभी हो गया था जब रावण ने अपने बड़े भाई कुबेर को उसके गणों सहित मार कर लंका से भगा दिया था तथा स्वयं लंकाधिपति बन बैठा था।

रावण के द्वारा सीता के हरण ने इस विद्रेष की अग्नि में आहुति का कार्य किया। स्वयं पटरानी मंदोदरी रावण से असंतुष्ट हो गई क्योंकि वह सीता को पटरानी बनाने की इच्छा रखता था। मंदोदरी चाहती थी कि सीता को उसके पति के पास सम्मान सहित भेज दिया जाये। उस ने विभीषण से कहा तो वह अपने मामा माल्यवान के साथ जाकर रावण को अनेक प्रकार से समझाने का प्रयत्न करने लगा। इससे क्रुद्ध होकर रावण ने विभीषण को लात मार कर अपमानित करके लंका से निकाल दिया।

उसे लंका का त्याग कर जाते देख कर उस के अधिकांश साथी भी उसके साथ ही लंका से निकल गये। उनकी गतिविधियां जानने के लिए लंकापति ने उनके पीछे दो गुप्तचर भेज दिए। शुक और सायन नाम के दोनों गुप्तचर अपने कार्य में अत्यंत निपुण थे। वे विभीषण तथा उसके दल का सावधानी से अनुसरण करते हुए सैनिकों के वेश में उनके मन्त्रणा स्थल तक पहुंच गये। विभीषण के दल का सदस्य समझ कर उन्हें वानर सैनिकों ने नहीं रोका।

राम द्वारा रावण को विजित कर विभीषण को लंकाधिपति बनाने का संकल्प करते देख कर दोनों परस्पर बातें करने लगे -

"अद्भुत है यह राम भी। लंकाधिपति का भाई जान कर भी विभीषण को आश्रय दे दिया और उसका राजतिलक भी कर दिया।"

"शत्रु के भाई को इतना सम्मान? राजनीतिज्ञ है राम। इस प्रकार सहज ही शत्रु पक्ष के महत्वपूर्ण व्यक्तियों को अपना समर्थक बना लिया। जो युवक वनवासी होकर इतनी बड़ी विशाल सेना तैयार करके लंकापति रावण से युद्ध करके उसे पराजित करने का साहस रखता हो उसे शत शत बार नमन किया जाना चाहिए।"

"विजय उस जैसे पुरुषार्थी को ही प्राप्त होती है। काश हम रावण के सेवक न होते .."

"हाँ, तब हम स्वतंत्र होकर विभीषण के अनुचर बन कर सदाचारी राम का साथ दे सकते थे या कम से कम तटस्थ तो रह ही सकते थे।"

उनकी बातें सुनकर सुग्रीव के सैनिकों ने उन्हें बंदी बनाकर राम के सम्मुख प्रस्तुत किया। उन्हें देखते ही विभीषण ने कहा -

"अरे, ये तो रावण के सेवक हैं। ये उनके गुप्तचर शुक और सारण हैं।"

"हाँ स्वामी! हमें लंकापति रावण ने आपके पीछे यहां भेजा था। हम तो रावण के सेवक हैं। हमें क्षमा कर दो। स्वामी के आदेश के कारण ही हमें यहां आना पड़ा।"

शुक ने कहा।

रुद्रायन – 2

"रावण ने हनुमान की चोटी में आग लगा कर उसे अपमानित किया था। हम भी अंग भंग करके इन्हें वापस भेज देंगे।"

सुग्रीव ने क्रोधित होकर कहा।

"क्षमा .. क्षमा करें महाराज!"

दोनों गुप्तचर पुकार उठे।

"आपको राजा रामचंद्र की सौगंध है। हमारे अंग भंग न करें। क्षमा कर दें हमें।"

"कहां जाओगे यहां से?"

विभीषण ने पूछा।

"यहां से तो लंका ही जाना होगा स्वामी! हमें प्राणदान दें। हम अब से आपके क्रीतदास हैं। लंका में रह कर हम आपकी सहायता करेंगे।"

शुक ने प्रार्थना की।

"उचित है, तुम्हें वहीं रह कर हमारे परिवार वालों की रक्षा करनी होगी।"

"जो आज्ञा प्रभु!"

मुक्त होकर दोनों गुप्तकर लंका की ओर लौट गये।

राम ने पुनः मन्त्रणा प्रारंभ की।

"भाइयों! अब हमारे सामने सबसे महत्वपूर्ण समस्या समुद्र को सेना सहित पार करने की है। इस संबंध में आप सब विचार करें।"

"विभीषण जी! आप लंका में रहते हैं तथा आपका लंकापति तथा आपके नगर वासियों का समय-समय पर इस मुख्य भारत भूमि पर आगमन होता रहता है। आप ही इस संबंध में कोई उचित परामर्श दें।"

लक्ष्मण ने कहा।

"इस संबंध में मैं अधिक नहीं जानता क्योंकि मैं प्रथम बार ही लंका छोड़कर यहां आया हूँ। आने के लिए हमने एक नौका का प्रयोग किया था जो लंकापति की संपत्ति है। संभवतः शुक उसे अपने साथ ले गया होगा।"

"तो अब क्या करें? समुद्र में अनेकों हिंसक जलजन्तु विचरण करते

रहते हैं अतः उसे तैर कर भी पार नहीं किया जा सकता। सभी सैनिक तैरने में निपुण भी नहीं हैं।"

"मेरे विचार से हमें समुद्रदेव से सहायता मांगनी चाहिये।"

विभीषण ने राम को सुझाया।

"समुद्रदेव? हाँ, एक बार पिताश्री ने इसी संदर्भ में बताया था कि समुद्रदेव राजा दशरथ के मित्र हैं। वे इस समय अवश्य आपकी सहायता करेंगे।"

अंगद बोला।

"किंतु उनका राज्य तो यहां से बहुत दूर है। सुदूर सहस्रधारा के निकट का समस्त क्षेत्र उनके अधीन है। उन्हें मिलने के लिए या सहायता मांगने के लिए संदेश भेजना होगा। उनकी सहायता मिल पाएगी या नहीं और मिलेगी भी तो कब तक इसका कोई समय निर्धारित नहीं किया जा सकता।"

राम ने कहा।

उसी समय एक सैनिक ने अगस्त्य मुनि के आगमन की सूचना दी। अनुमति पाकर अगस्त्य मुनि अपने कुछ शिष्यों सहित पधारे।

"प्रणाम मुनिवर!"

सबने उन्हें प्रणाम किया।

"विजयी हो। लगता है कि सी गंभीर चिंता में हैं सब।"

अगस्त्य मुनि ने कहा।

"मुनिवर! इस समय हमारी सबसे बड़ी चिंता समुद्र संतरण की है।"

किञ्चिंधा नरेश सुग्रीव ने बताया।

"तो क्या विचार किया आप लोगों ने?"

"महाराज विभीषण ने परामर्श दिया है कि समुद्रदेव से सहायता प्राप्त की जानी चाहिए किंतु उन तक जाना और सहायता प्राप्त करना अत्यंत कठिन प्रतीत हो रहा है।"

"आप उसके लिए चिंतित न हों। मैंने अपने शिष्यों के सहयोग से पतली तीव्र गामी नौकाओं का निर्माण किया है। यदि आप चाहें तो मैं

रुद्रायन – 2

समुद्रदेव तक संदेशवाहक भेज सकता हूँ।"

अगस्त मुनि बोले।

"अवश्य। आपने तो हमारी सारी समस्या ही सुलझा दी। हमें विश्वास है कि समुद्रदेव के सहयोग से यह दुष्कर कार्य अवश्य सुकर हो जाएगा। अगस्त्यमुनि ने अपने एक शिष्य के साथ राजकुमार लक्ष्मण को समुद्रदेव के राज्य तक भेजने की व्यवस्था की।

जांबवन्त ने आपत्ति व्यक्त करते हुए कहा -

"लक्ष्मण को न भेज कर उनके स्थान पर युवराज अंगद को भेज दिया जाए या आप कहें तो मैं स्वयं ही चला जाऊँ।"

"नहीं आर्य! समुद्र देव हमारे पिता के मित्र हैं और उनके सहयोग की आवश्यकता हमें है। अतः उनके सम्मान और हमारी अपेक्षा के लिए मेरा या लक्ष्मण का जाना ही उचित है। यहां की व्यवस्था के कारण मैं नहीं जा सकता अतः लक्ष्मण को ही जाने दीजिए।"

"जैसी आपकी इच्छा।"

लक्ष्मण के अगस्त मुनि के निर्देशानुसार तीव्र गामी नौका से प्रस्थान करने के बाद राम बोले -

"हम ने समुद्र देव से सहयोग मांगा अवश्य है किंतु उन पर पूर्ण रूप से निर्भर रह कर हम हाथ पर हाथ रखकर बैठे नहीं रह सकते। हमें अपने स्तर से भी समुद्र संतरण के लिए प्रयास करना चाहिए।"

"अवश्य मित्र! सर्वप्रथम तो मैं आपको अवगत कराना चाहूँगा कि मेरे राज्य के दो प्रमुख शिल्पी नल और नील भी इस समय हमारी सेना के साथ आए हैं। उनसे इस संबंध में बात कर सकते हैं।"

"उन्हें शीघ्र बुलवाइए।"

सुग्रीव ने तत्काल एक सैनिक को आदेश देकर उससे नल और नील नामक शिल्पी बंधुओं को बुलवा भेजा। राम के आदेश पर दोनों भाइयों ने उसी दिन समुद्र तल का निरीक्षण कर सेतु निर्माण के लिए उचित स्थल ढूँढ निकाला।

अगस्त्यमुनि तथा उनके सहयोगी शिष्य ने भी सहयोग किया। यह समुद्र तट स्थल चट्टानों से भरा हुआ था। उसी स्थल पर समुद्र में मैनाक पर्वत की श्रृंखलाएं फैली हुई थीं जिसके कारण समुद्र दुर्गम किन्तु कुछ उथला हो गया था।

अगस्त्यमुनि के सहयोग से नल और नील ने अपने निर्देशन में मुनि की बनाई तीव्र गामी नौकाओं के समान विशाल वृक्षों के तनों को खोखला कर के कई नौकाएँ बनाने का काम प्रारंभ कर दिया। शेष वानर सैनिकों तथा अन्य जाति के सैनिकों को वृक्षों के तने काट कर लाने, शाखाएं एकत्र करने तथा पर्वत की शिलाओं को एकत्र करने का आदेश दे दिया गया। इसके लिए उन्हें तीन दलों में बांट दिया गया जो क्रम से दिवस को तीन भागों में बांट कर कार्य करने लगे। जब एक दल कार्य करता था तब अन्य दोनों दल विश्राम करते थे तथा भोजन आदि की व्यवस्था करते थे।

तीन दिन बीत गए। चौथे दिन उत्तर दिशा की ओर समुद्र में दूर से आती हुई बड़ी नौका दिखाई दी जिस पर समुद्रदेव के राज्य की नीले रंग की पताका फहरा रही थी और उस पताका पर विशाल व्हेल का चित्र अंकित था। राम की सेना में आनंद की लहर दौड़ गई। सैनिक उछल उछल कर बारंबार जयघोष करने लगे।

लक्ष्मण ने बताया -

"आर्य समुद्रदेव ने अपने प्रमुख शिल्पियों का दल मेरे साथ भेजा है जो यहां सेतु निर्माण का प्रयास करेंगे। समुद्रदेव ने भी अपने दोनों विशाल युद्ध पोतों को भेजने का आश्वासन दिया है।"

"लक्ष्मण! तुमने समुद्र देव को भली-भांति समझा कर उन्हें सहायता देने के लिए तैयार कर लिया। कहीं अपने सहज क्रोध का प्रदर्शन तो नहीं पर बैठे थे?"

राम ने हँस कर पूछा।

"नहीं भ्राताश्री! मैंने उन्हें पिताश्री का नाम लेकर अपना परिचय दिया तथा यहां की समस्त कथा बताई। पहले तो यह सब सुन कर वे

रुद्रायन – 2

सहायता करने के लिए सहमत नहीं हुए। उन्हें आशंका हुई कि किसी दोष के कारण पिताश्री ने आपको राज्य से निष्कासित कर दिया है। इस कारण उन्होंने तटस्थ रहने की नीति अपनाई। तब मैंने पिताश्री के स्वगारीरोहण का उल्लेख किया तथा दंडक वन में खर दूषण और त्रिशिरा जैसे विकट निशाचरों के पराभूत करने की घटना बताई और कहा कि हम उनके भरोसे ही नहीं हैं। अपने पुरुषार्थ से जब हम अब तक दुष्टों तथा आतताइयों का संहार करते रहे हैं तो लंका को भी विजित कर ही लेंगे। ऐसी स्थिति में आपका राज्य हमारा मित्र नहीं रह जाएगा। यदि हमारा प्रकोप आपकी ओर परावर्तित हो गया तो परिणाम के लिए आप स्वयं उत्तरदायी होंगे। तब अपने मंत्रियों से मंत्रणा करने के पश्चात उन्होंने सहायता भेजना स्वीकार कर लिया।"

"कभी कभी क्रोध का प्रदर्शन भी आवश्यक हो जाता है। लक्ष्मण! ठीक किया तुमने।"

श्री रामचंद्र ने समुद्र देव के भेजे हुए शिल्पियों को अगस्त्यमुनि को सौंप दिया।

"अब आप नल नील तथा इन शिल्पियों के साथ अपना कार्य संपन्न कराएं।"

"आप निश्चिंत रहें राम! सेतु निर्माण का कार्य को आरंभ भी हो चुका है। इन लोगों के आ जाने पर कार्य तीव्र गति से संपूर्ण किया जाएगा।"

अगस्त्य मुनि के निर्देशन में समस्त शिल्पियों ने शीघ्र ही समुद्र की धारा को अपनी नौकाओं को एक दूसरी से लंबाई में बांध कर रोक दिया। दोनों ओर से नौकाओं की पंक्ति बना कर उनके मध्य वृक्ष की मोटी शाखाएं तथा तने बांध कर सेतु का ढांचा तैयार किया गया और उसमें पत्थरों और चट्टानों तथा मिट्टी को भर कर सेतु बनाया जाने लगा। दिन-रात परिश्रम करते हुए बारह दिनों में चालीस हाथ चौड़े पुल का निर्माण कर दिया गया जो चट्टानों के सहारे मैनाक पर्वत की चोटियों से जुड़ कर

मानो समुद्र तल पर तैर रहा था। समुद्रदेव की भेजी नौका पर राम, लक्ष्मण सुग्रीव आदि प्रमुख जनों ने समुद्र पार किया। विभीषण को श्रीराम सदैव अपने साथ ही रखते थे। वे सभी लंका के सुरम्य तट पर रात्रि के प्रवेश काल में उतरे।

रात्रि भर सैनिकों के दल लंका की भूमि पर उतरते रहे। तीन पहर में सारी सेना लंका की धरती पर उतर गयी। शेष रात्रि शिविर निर्माण में व्यतीत हो गयी। प्रातः काल जब भुवन भास्कर ने अपनी आँखें खोलीं तब लंका के बन प्रदेश में अनेक सैन्य शिविर सिर उठाये उन्हें देख रहे थे।

प्रातः क्रिया के पश्चात सबने फलाहार किया तब किञ्चिंधा नरेश सुग्रीव ने कहा -

"अब हमें लंका की भौगोलिक स्थिति तथा लंकापुरी को भलीभांति देख समझ लेना चाहिए।"

"हाँ प्रभु! हम अभी त्रिकूट पर्वत की चोटी पर चलते हैं। वहां से लंका का विहंगम दृश्य दिखाई देता है।"

हनुमान ने कहा।

विभीषण ने उसका अनुमोदन किया। राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण तथा हनुमान पर्वत की चोटी की ओर बढ़े। हनुमान आगे आगे उन्हें मार्ग दिखाते हुए चल रहा था। पिछले लंका दहन के अभियान के समय उसने लंका के आसपास स्थित पर्वत भूमि का भली-भांति निरीक्षण कर लिया था। छोटे संकरे मार्ग से पर्वत चट्टानों के बीच की दरारों से होकर वे कुछ ही क्षणों में पर्वत शिखर पर जा पहुंचे। एक समतल स्थान पर खड़े होकर उन्होंने लंका का विहंगम दृश्य देखा। इसी स्थान से हनुमान ने लंका पुरी का निरीक्षण किया था। विशाल नगरी उस स्थान से किसी वृहद चित्र के समान प्रतीत हो रही थी। लंका निवासी अपने अपने कार्यों में रत थे।

विभीषण ने उन्हें लंका के चारों द्वारों को दिखाते हुए कहा -

रुद्रायन – 2

"नगरी की चारों दिशाओं में एक-एक विशाल द्वार हैं जो अत्यंत दृढ़ तथा सैनिकों द्वारा सुरक्षित हैं। द्वारों के बंद हो जाने पर इन्हें नष्ट करके लंका में प्रवेश करना असंभव है। लंका में प्रवेश करने के लिए इन्हें युक्ति पूर्वक खोलना होगा या फिर जब ये खुले हों तभी हमें लंका में प्रवेश करना होगा। उत्तरी द्वार अपेक्षाकृत अधिक दृढ़ है क्योंकि यह भारत भूमि के निकट है। दक्षिणी द्वार छोटा और अन्य द्वारों की अपेक्षा कम रक्षित है क्योंकि उस ओर समुद्र के अतिरिक्त कुछ नहीं है। इसी कारण वह निरापद समझा जाता है। पूर्व और पश्चिम के द्वार मार्ग भी ऐसे ही हैं।"

लंका में विभिन्न स्थानों पर मल्लयुद्ध के अभ्यास के लिए मैदान बने हुए थे और वहां लंका वासी मल्लयुद्ध का अभ्यास कर रहे थे। एक ओर विशाल क्षेत्र में शस्त्र संचालन का अभ्यास किया जा रहा था। राजमहल के निकट स्थित अश्वशाला में सेवक पशुओं की मालिश कर रहे थे। हस्तिशाला में हाथियों को भोजन दिया जा रहा था। लंकापुरी पूर्ण सजग दिखायी दे रही थी।

"ऐसा प्रतीत होता है कि लंकापति को हमारे आगमन का समाचार मिल गया है।"

सुग्रीव ने अपना अनुमान प्रगट किया।

"अवश्य राम! लंका के गुप्तचरों ने सेना के समुद्र संतरण का समाचार अवश्य रावण तक पहुंचा दिया है। तभी तो इस समय वहां सभी सजग तथा सतर्क दिखायी दे रहे हैं। लंकावासी देर रात तक आमोद प्रमोद में व्यस्त रहते हैं तथा पहर दिन चढ़े तक सोना उनके लिये सामान्य बात है। इसके विपरीत लंका प्रातःकाल ही जग गयी है तथा अपने युद्धाभ्यास में लग गयी है। इससे स्पष्ट है कि रावण हमारे आगमन से अनभिज्ञ नहीं है।"

लंका नगरी का सूक्ष्म निरीक्षण करते हुए राम ने पूछा -

"और राजभवन के पूर्व की ओर एक सामान्य सा आवास दिखाई दे रहा है। वहां क्या है और वह इतना साधारण क्यों है?"

"वह लंका का शस्त्रागार है।"

विभीषण ने कहा।

"शस्त्रागार? इतना अरक्षित?"

लक्ष्मण चकित हुआ।

"नहीं लक्ष्मण अरक्षित नहीं, विशेष सुरक्षित। उसके सुरक्षा सैनिक शस्त्रागार के निकट स्थित अन्य आवासों में हैं किंतु उनकी दृष्टि सदैव शस्त्रागार पर ही रहती है।"

विभीषण ने बताया।

"लंका का शस्त्रागार तो बहुत छोटा है।"

सुग्रीव बोला।

"हाँ, ऊपर से देखने पर ऐसा ही प्रतीत होता है किंतु वास्तव में ऐसा है नहीं। वह भवन जितना भूमि के ऊपर है उससे अधिक भूमिगत है और विभिन्न शास्त्रों से भरा हुआ भी। लंकापति रावण को विजय का उन्माद है। विभिन्न देशों को जीत कर अपने अधीन कर लेना उसे अत्यंत प्रिय है और उतना ही प्रिय है विजित प्रदेशों से स्वर्ण, शस्त्र तथा सुंदरियों का आहरण। लंकापति विश्व की समस्त सुंदर वस्तुओं पर अपना अधिकार समझता है। लंका में विभिन्न देशों की सुंदरियां निवास करती हैं। यहां अकूत स्वर्ण राशि है और विशाल शस्त्र भंडार भी।"

राम विचारमन हो गये।

"उस ओर दक्षिण द्वार के निकट विशाल क्षेत्र में वह कैसा भवन दिखाई दे रहा है विभीषण? सूर्य के प्रकाश में जगमगा सा रहा है वह।"

लक्ष्मण ने पूछा।

"वह भवन नहीं है लक्ष्मण! वह रावण का अत्यंत प्रिय विमान पुष्पक है। इसे रावण ने अपने सौतेले भाई कुबेर की अलकापुरी में जाकर छीन लिया था। यह उसे अत्यंत प्रिय है। इस पर बैठ कर वह विभिन्न देशों में भ्रमण किया करता है। श्रेत्र पद्म पंक्तियों से सुसज्जित पुष्पक विमान को उसने विभिन्न प्रकार के स्वर्ण आभूषणों तथा रत्नों से सजा रखा है।"

"अद्भुत है वह।"

"और अतुलनीय भी।"

रुद्रायन – 2

राम ने प्रशंसा पूर्ण शब्दों में कहा। लंका का निरीक्षण करते हुए राम ने पाया कि अब तक लंका के जले हुए भवनों को पुनः निर्मित नहीं किया जा सका है। संपूर्ण नगरी अपने दहन की कथा स्वयं कह रही थी। विभिन्न भवन आग की लपटों में घिरने के कारण काले पड़ गये थे। उनके स्वर्णमंडित कंगूरे और द्वार जल गए थे उन्हें साधारण रूप से साफ करके प्रयोग करने योग्य बना दिया गया था। राम की दृष्टि का अनुसरण करते हुए विभीषण ने बताया -

"अभी लंका-दहन हुए अधिक समय नहीं व्यतीत हुआ है न इसीलिए लंका को पूर्ववत नहीं बनाया जा सका है अभी तक। हनुमान ने आग भी तो विकट लगाई थी। ऐसे भीषण अग्नि-दाह के बाद भी लंका सुव्यवस्थित है यही क्या कम बड़ी बात है? मैं तो अभी भी उस दृश्य का स्मरण करके सिहर उठता हूँ कितनी भयंकर अग्नि थी वह। पूरी लंका धू-धू कर जल रही थी। चारों ओर हाहाकार मचा था। न जाने कितनी जन धन की हानि हुई।"

"परंतु तुम्हारा भवन तो अग्नि के स्पर्श से पूर्ण सुरक्षित दिखाई दे रहा है।"

हनुमान ने मुस्कुराते हुए विभीषण के भवन की ओर संकेत किया।

"वह भी तुम्हारी कृपा रही हनुमान जो उस आग से तुमने मेरा भवन अछूता रहने दिया। आभारी हूँ तुम्हारा।"

विभीषण ने आभार प्रकट करते हुए कहा।

"तुम्हें मित्र कहने के बाद मैं तुम्हें और तुम्हारे भवन को थोड़ी सी भी क्षति कैसे पहुंचा सकता था मित्र?"

"तुम्हारी मित्रता पाकर कृतार्थ हूँ हनुमान! और राम की भी।"

विभीषण ने आभार प्रगट किया।

लंका नगरी के पश्चिमी छोर पर ऊंचे शिखर पर बने एक सुंदर विशाल भवन की ओर संकेत करते हुए राम ने पूछा -

"विभीषण! वह भवन किसका है? वह तो राजभवन से भी विशाल प्रतीत हो रहा है।"

"वह रावण का रंगभवन है राम! राज्य कार्यों से निवृत्त होने के पश्चात अथवा मानसिक उलझन के समय बहुधा रावण पत्नी मंदोदरी तथा मंत्रियों सहित वहां जाकर आमोद किया करता है। उस पान सभा में विशेष विषयों पर मंत्रणा भी होती है और विशेष गोपनीय तथा महत्वपूर्ण निर्णय भी लिए जाते हैं।"

विभीषण ने बताया।

वह सारा दिन राम तथा उसके सहयोगियों ने लंका के निरीक्षण में बिताया। दूसरे दिन प्रातः ही युद्ध आरंभ करने की इच्छा होने पर भी राम ने राजनीति के नियमों का अनुसरण करते हुए लंका में अपना संदेशवाहक दूत भेजने का निश्चय किया। इसके लिए उन्हें अंगद उपयुक्त प्रतीत हुआ। वह राजकुमार होने के साथ-साथ सुंदर, बलवान तथा वाक निपुण भी था। राम चाहते थे कि रावण उन्हें सीता को लौटा दे तो वह वापस लौट जाएं और दोनों पक्षों की होने वाली भीषण जन हानि को रोका जा सके। अकारण रक्तपात करना उन्हें अभीष्ट नहीं था।

अंगद ने राम का अभिप्राय भली-भाँति समझ कर लंका नगरी में प्रवेश किया। मुख्य द्वार पर रक्षकों ने उसे राम का दूत जान कर सीधे रावण के दरबार में पहुंचा दिया। रावण के दरबार का वैभव देख कर वह चकित रह गया। विभिन्न देशों के प्रतिनिधि उस के दरबार में शोभा पा रहे थे। स्वर्ण निर्मित दीवारों पर उकेरे गए चित्र और मूर्तियां उसकी कला तथा सौंदर्य के प्रति अभिरुचि को प्रदर्शित कर रही थीं। अंगद का रावण ने बड़ा स्वागत किया। जब उसे अंगद ने अपना बालि-पुत्र कह कर परिचय दिया तो रावण ने प्रसन्न होकर उसे अपने पुत्र के बराबर आसन देकर विशेष सत्कार किया। रावण ने बताया कि वह बालि का मित्र था। बालि के वध का समाचार जान कर रावण ने दुखी होकर कहा –

"अंगद ! किसने तुम्हारे पिता का वध किया है? तुम अभी बालक हो किंतु मैं अपने मित्र बालि के वध का प्रतिकार करना चाहता हूँ। तुम मेरे साथ चलो। मैं तुम्हारे शत्रु को जीवित नहीं छोड़ूँगा।"

"मेरे पिता को स्वयं राम ने ही पितृव्य सुग्रीव से मित्रता निभाते हुए मारा था। अब मैं स्वयं उन्हीं राम के संरक्षण में हूँ और उन्हीं का दूत बनकर यहां आया हूँ।"

बालि कुमार अंगद ने बताया।

"तुम्हारा बालि के पुत्र का ऐसा अधः पतन? अपने ही पिता के हत्यारे के साथ रहकर तुम उसके दूत बन गए? छि:"

"मुझे धिक्कारने की आवश्यकता नहीं है लंकेश! उन्होंने मेरे पिता को न जानने के कारण चाचा को न्याय दिलाने के लिए उनकी सहायता की और मुझे युवराज बना कर मेरा अधिकार अक्षुण्ण रखा परंतु वह बात अलग है। उसकी चर्चा मैं नहीं करना चाहता। मैं तो यह निवेदन करने आया हूँ कि दशरथनंदन राम चाहते हैं कि आप सीता को ससम्मान उन्हें लौटा दें तथा इस भावी युद्ध से अपनी प्रजा तथा राज्य को नष्ट होने से बचा लें। राम आपका राज्य नहीं चाहते और न ही उन्हें आपसे कोई प्रतिस्पर्धा ही करनी है। आपने उनकी अनुपस्थिति में उनकी सहधर्मिणी का अन्याय पूर्वक चोरों के समान अपहरण किया है जो आप जैसे सम्मानित राजा को शोभा नहीं देता। राम आपको अपनी भूल सुधारने का एक अवसर देना चाहते हैं। यदि आप सीता को लौटा दें तथा अपने कृत्य के लिए उनसे क्षमा मांग ले तो वे बिना युद्ध किए ही लौट जाएंगे।"

अंगद ने समझाया।

"सीता को लौटा दूँ? और उसका क्या जो राम ने मेरी बहन का अपमान किया? मेरे भतीजों खर, दूषण और त्रिशिरा का सेना सहित विनाश करके दंडक वन से हमारा अधिकार छीन लिया? जा कर राम से कहो यदि शक्ति है तो लड़कर अपनी पत्नी को छुड़ा ले जाए अन्यथा उसे भूल कर लौट जाए। मैं पीछे से वार नहीं करूँगा तथा उसके सभी अपराधों को क्षमा कर दूँगा।" रावण ने गर्व भरे स्वर में उत्तर दिया।

अंगद ने अनेक प्रकार से रावण को समझाया। उसे राम के अपरिमित बल तथा संगठन शक्ति का आभास कराया। उनकी युद्ध कुशलता तथा शस्त्र संचालन की निपुणता का वर्णन किया। अनेक

प्रकार से धर्म तथा नीति का भी उपदेश दिया किंतु रावण ने उसकी एक न सुनी। वह किसी भी मूल्य पर सीता को लौटाने के लिए तैयार नहीं हुआ। निराश होकर राजकुमार अंगद राम के पास लौट गए।

सारे समाचार जान कर राम ने कहा -

"मुझे ज्ञात था कि यह युद्ध नहीं रोका जा सकता किंतु फिर भी शत्रु को एक अवसर प्राण-रक्षा का देना आवश्यक था। युवराज! अब विश्राम करो कल प्रातः लंका के चारों द्वारों पर एक साथ आक्रमण करना होगा।"

पहर रात गए तक अपने प्रमुख सेनापतियों के तथा मंत्रियों के साथ राम युद्ध की मंत्रणा करते रहे।

दूसरे दिवस प्रातः ही राम के निर्देशानुसार सुग्रीव ने अपनी आधी सेना को रोक कर शेष आधी सेना के चार भाग किए और उन्हें लंका के चारों द्वारों पर एक साथ आक्रमण करने के लिए भेज दिया। जाम्बवान ने पश्चिमी द्वार पर धावा बोला और सुग्रीव ने पूर्वी द्वार पर मोर्चा संभाला। द्विविद अपनी सैन्य टुकड़ी लेकर दक्षिण के द्वार की ओर चला गया और अंगद तथा हनुमान ने अपनी चुनी हुई टुकड़ी के साथ उत्तरी द्वार पर आक्रमण कर दिया। राम लक्ष्मण और विभीषण तथा उसके सचिव अवशिष्ट सेना के साथ सभी ओर दृष्टि रखे हुए थे। कुछ ही क्षणों में भीषण युद्ध आरंभ हो गया। बानर सैनिकों ने चारों ओर से लंकापुरी की चारदीवारी पर उत्पात मचाना शुरू कर दिया। वे बड़े-बड़े वृक्षों के तनों से द्वार तोड़ने का प्रयत्न करने लगे। पत्थरों के बड़े बड़े टुकड़ों को दो वृक्षों के मध्य रस्सियों से बनाये गए प्रक्षेपास्त्र सहायता से लंका पर उनकी बरसात करने लगे। दिनभर युद्ध करने के पश्चात भी लंका के द्वार नहीं तोड़ जा सके। राक्षस गण दुर्ग के भीतर से ही अस्त्रों को फेंक कर उनकी सेना के प्रहारों का प्रतिकार करते रहे।

वह दिन लंका के सैनिकों ने अपनी विशेष तैयारी में लगाया। रात्रि विश्राम के पश्चात युद्ध के दूसरे दिन जब पुनः राम की सेना ने लंका के द्वारों पर आक्रमण किया तो राक्षसों ने द्वार खोल दिए और बाहर निकल

रुद्रायन – 2

कर सैनिकों से भिड़ गए। उस दिन लंका का प्रधान सेनापति अकम्पन तथा रावण के कई पुत्र मारे गए।

तीसरे दिन लंकापति रावण का महा बलशाली भाई कुंभकरण युद्ध के लिए युद्ध भूमि में आया। उसके साथ मल्लों की पूरी टोली थी जो मल्लयुद्ध के लिए प्रख्यात थी। तीन पहर तक भीषण युद्ध करने तथा भयंकर मारकाट करने के पश्चात उसे जब राम की सेना अजेय समझने लगी थी तब स्वयं राम ने आगे बढ़ कर उससे युद्ध किया और सूर्यास्त होने के साथ ही उसे देवलोकगामी बना दिया।

कुंभकर्ण की मृत्यु ने रावण को दुख से पागल सा बना दिया। कुंभकर्ण रावण के समान ही शक्तिशाली तथा उससे भी अधिक निर्मल था। उसकी मृत्यु ने रावण की कमर ही जैसे तोड़ दी थी। उसे अत्यंत दुखी और निराश देख कर युवराज मेघनाद ने पिता को समझाते हुए कहा -

"पिताश्री! युद्धभूमि में वीरगति प्राप्त करना गर्व की बात है। ऐसे दिवंगत वीरों की मृत्यु पर शोक नहीं करना चाहिए। कल मैं स्वयं युद्धभूमि में जाऊंगा और कुछ ऐसा कौतुक करूँगा कि आपका सारा दुख दूर हो जाएगा। पूज्य तातश्री ने आज के युद्ध में अधिकांश शत्रुओं का नाश कर दिया है। शेष के लिए मैं पर्याप्त हूँ। कल आप मेरा शौर्य देखिएगा।"

मेघनाथ की बात सुन कर रावण को कुछ सांत्वना मिली।

मेघनाद की प्रिय पत्नी सुलोचना नागवंश की राजकन्या थी। वह पति की अत्यंत प्रिय, विदुषी तथा युद्ध नीति को समझने वाली थी। राम की सेना में वानर, कपि, ऋक्ष, मत्स्य, कपोत, गरुण, काक आदि वन्य जातियों के कबीले सम्मिलित हुए थे। उन सब की युद्ध शैली भिन्न थी। वनवासी जातियां होने के कारण वे अस्त्र-शस्त्र की अपेक्षा न करके उपलब्ध प्राकृतिक साधनों को अस्त्र बना कर युद्ध करने में निपुण थे। उन्हें जीतना इसी कारण अधिक दुष्कर हो रहा था। बहुत सोच विचार कर और यह जान कर कि अगले दिन स्वयं मेघनाद जिसने देवलोक पर विजय प्राप्त करने के पश्चात इंद्रजीत की उपाधि धारण की थी, युद्ध करने वाला

है, सुलोचना ने अपने पिता के पास उनके चुने हुए नाग सैनिकों का दल भेजने के लिए संदेश भेज दिया।

दूसरी प्रातः: इंद्रजीत मेघनाद ने अत्यंत भयंकर युद्ध किया। लंका के वीरों की संख्या कम होती जा रही थी और लंका द्वीप पर अन्य राज्यों से सहायता नहीं प्राप्त की जा सकती थी अतः मेघनाथ राम और लक्ष्मण को मार कर या बंदी बना कर युद्ध समाप्त कर देना चाहता था। दिन भर युद्ध होता रहा। कभी राम की सेना भारी पड़ती तो कभी मेघनाद की सेना। संध्या समय सूर्यास्त के साथ ही राम ने युद्ध बंद करने की घोषणा कर दी। सभी शिविरों की ओर लौट चले। राम के निकट सभी सेना प्रमुख एकत्र हुए और उस दिन हुई हानि का आकलन करने लगे।

अंधकार फैलने लगा था। ऐसे समय अचानक ही नाग सैनिकों की सैन्य टुकड़ी ने शिविर को घेर कर राम लक्ष्मण सुग्रीव विभीषण आदि सहित समस्त सैन्य प्रमुखों को बंदी बना लिया। विकट स्थिति उत्पन्न हो गई। राक्षस तथा नाग जाति रात्रि के अंधकार का बल पाकर अधिक बलवती हो उठती है। उनके लिए युद्ध के नियमों का उल्लंघन करना कोई अनुचित बात नहीं थी क्योंकि युद्ध में विजय प्राप्त करना ही एकमात्र लक्ष्य मानने के कारण वे औचित्य के निर्धारण की आवश्यकता नहीं समझते थे।

रात्रि के अंतिम प्रहर में जब नाग सैनिक अपनी विजय पर गर्वित, निश्चिंत होकर झपकियाँ ले रहे थे तब विलंब होने के कारण राम के निकट न पहुंच सके गरुड़ सैन्य प्रमुख ने आक्रमण करके नाग सैनिकों को मार डाला और राम आदि समस्त वीरों को स्वतंत्र करा लिया। प्रहर भर विश्राम के पश्चात राम की सेना पुनः युद्ध के लिए सनद्ध होने लगी।

मेघनाद के द्वारा युद्ध के नियमों का उल्लंघन करने तथा धोखे से शस्त्रहीन होने पर प्रमुख वीरों को बंदी बना लेने के कारण लक्ष्मण अत्यधिक क्रोधित था। उसने राम से स्वयं मेघनाथ के साथ युद्ध करने की आज्ञा मांगी। राम ने लक्ष्मण को मेघनाथ की अवसरवादिता से सावधान रहने के लिए कहा तथा उसे श्रेष्ठतम आयुध देकर युद्ध के लिए जाने की

रुद्रायन – 2

आज्ञा दे दी। विभीषण भी लक्ष्मण के साथ जाना चाहते थे किंतु राम ने उसे अपने निकट ही रोक लिया।

"नहीं लंकापति! आपको देखकर रावण और मेघनाथ आदि का समस्त कोप आप पर ही टूटेगा। अभी आप मेरे निकट ही रहें। आवश्यकता पड़ने पर हम सब युद्ध रत हो जाएंगे।"

राम आदि को बंदी बना कर मेघनाद अत्यंत प्रसन्न था। लंका में विजयोत्सव मनाया जाने लगा था। उसी समय राम लक्ष्मण के जयघोष के साथ राम की सेना ने लंका पर आक्रमण कर दिया।

उस दिन प्रमुख रूप से मेघनाथ और लक्ष्मण का युद्ध हुआ। इस द्वंद्व युद्ध को देखने के लिये समस्त सेना युद्ध रोक कर जैसे दर्शक बन गई थी। मेघनाद और लक्ष्मण दोनों ही समान बलशाली थे। जब वे श्रमित प्रतीत होने लगते तब दोनों ओर के योद्धा परस्पर युद्ध करने लगते। पुनः दोनों महान वीरों का युद्ध प्रारंभ हो जाता। सूर्यास्त होता देख कर क्षण भर के लिए लक्ष्मण का ध्यान भटका। उसने अपने कुलदेवता सूर्य को स्मरण कर मानसिक प्रणाम निवेदन किया। उसी क्षण मेघनाथ की फेंकी हुई शक्ति उसके वक्ष में जा घुसी। लक्ष्मण का शरीर धूम कर पृथ्वी पर गिरने लगा तो हनुमान ने दौड़ कर उसे अपनी भुजाओं में थाम लिया। लक्ष्मण के मूर्छित होते ही राम की सेना में हाहाकार मच गया। हर्षनाद करते हुए राक्षस मेघनाद को धेर कर जय जयकार करते लंका में लौट गए।

हनुमान ने लक्ष्मण का मूर्छित शरीर लाकर राम के शिविर में रख दिया। राम ने शास्त्र फेंक दिया और लक्ष्मण का सिर गोद में रख कर अश्रुपात करने लगे। विभीषण ने उसी समय हनुमान को समझा कर गुप्त द्वार से लंका में जाकर राजवैद्य सुषेण को लाने के लिए कहा। सुषेण विभीषण का मित्र था तथा रावण का विरोधी भी। हनुमान के साथ गुप्त रूप से आकर वैद्य ने लक्ष्मण के घाव की परीक्षा की और उस पर कुछ औषधियां लगा कर कपड़ा लपेट दिया। सुषेण ने बताया - "लक्ष्मण को जिस शक्ति ने घायल किया है वह विषाक्त थी और उस विष की औषधि

का सेवन सूर्योदय से पूर्व ही घायल को कराना आवश्यक है। अन्यथा उसके प्राण नहीं बचेंगे।"

सुषेण ने हनुमान को औषधि की पहचान, उसका प्राप्ति स्थान तथा वहां तक शीघ्र पहुंचने का गुप्त मार्ग भी बताया। राम की आज्ञा लेकर हनुमान उसी क्षण औषधि लाने के लिए चल पड़ा। मार्ग में कुछ राक्षस वीरों ने उसे रोकने का प्रयास किया परंतु उन्हें मार कर हनुमान आगे बढ़ गया। अरुणोदय के पूर्व ही औषधि लाकर हनुमान ने लक्ष्मण के प्राण बचा लिए। सुषेण वैद्य ने लक्ष्मण की मूर्छा टूटने पर विशेष शक्तिवर्धिनी औषधि का सेवन कराया तथा शल्यहर लेप लगा कर उनकी पीड़ा दूर कर दी। लक्ष्मण पुनः युद्ध के लिए सन्नद्ध था। राम के बार-बार मना करने पर भी जब वह नहीं माना तब विभीषण ने उसे समझाया -

"हठ न करो लक्ष्मण! अभी तुम्हें कुछ और विश्राम की आवश्यकता है। अभी युद्ध होने दो। तुम्हें तो मेघनाथ से ही युद्ध करना तथा अपनी इस परायन का प्रतिशोध लेना है। तुम शिविर में ठहरो। मैं स्थिति का पता लगा कर आता हूँ।"

लक्ष्मण को शिविर में सुला कर विभीषण ने उसके निकट राम को रुकने के लिए मना लिया।

युद्ध आरंभ हो गया। विभीषण ने मेघनाद की स्थिति जाननी चाही तो उसके गुप्तचरों ने विजय प्राप्ति हेतु यज्ञ करने के लिए मेघनाद के यज्ञशाला में होने की सूचना दी। विभीषण ने शिविर में आकर कहा -

"मेघनाद युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए राक्षसों की कुलदेवी निकुंभला के विशेष पूजन तथा यज्ञ के लिए देवी के मंदिर में गया है। इस समय जाकर उसके यज्ञ और पूजा को तहस-नहस करके मेघनाथ को मारा जा सकता है।"

"किंतु यह उचित नहीं होगा।"

राम ने कहा।

"यह दो आर्य राजाओं के मध्य नियमों और आचारों के आधार पर युद्ध नहीं किया जा रहा है। राम! राक्षसों ने ही सर्वप्रथम नियमों का

रुद्रायन – 2

उल्लंघन किया है। अनाचारी के विनाश के लिए कुछ भी अनुचित नहीं है। लक्ष्मण निःशस्त्र मेघनाद का वध न करें यही नियम यथेष्ट है।"

जाम्बवान ने समझाया ।

लक्ष्मण विभीषण के बताए हुए गुप्त मार्ग से हनुमान, अंगद तथा अन्य प्रमुख वीरों के एक छोटे से दल के साथ निकुंभला देवी के मंदिर में पहुंचा जहां मेघनाथ यज्ञ कर रहा था। वहां पहुंचते ही वानर वीरों ने यज्ञ की सामग्री इधर-उधर फेंक दी। फूल बिखरेर दिए और यज्ञ की अग्नि में पानी डाल कर उसे बुझा दिया। लक्ष्मण के ललकारने पर मेघनाथ शस्त्र लेकर युद्ध करने के लिए तैयार हो गया। मंदिर के अहाते में मेघनाथ और लक्ष्मण युद्ध करने लगे। इस बीच अन्य वानर वीरों ने मेघनाद के अंग-रक्षकों तथा मंदिर के रक्षकों को मार डाला। मेघनाद के पास उस समय लक्ष्मण से युद्ध करने के अतिरिक्त अन्य मार्ग न था। लक्ष्मण के साथ युद्ध करते हुए मेघनाद ने वीरगति पाई। पुनः लक्ष्मण उसी गुप्त मार्ग से अपने सैनिकों सहित राम के शिविर में लौट गए।

मेघनाद की पत्नी सुलोचना पति के वियोग को सहन न कर सकी और राक्षसों में सती प्रथा प्रचलित न होने पर भी मेघनाद की चिता में कूद कर उसने अपने प्राण त्याग दिए। चिता की लपटों ने कुछ ही क्षणों में उसकी कोमल काया को भस्म कर दिया।

००००

वह रात्रि लंकावासियों के लिए कालरात्रि के समान भयानक प्रतीत हो रही थी। मेघनाथ के मारे जाने से जहां राम की सेना में आनंद छा गया था वहीं रावण का रनिवास हाहाकार कर रहा था। स्वयं रावण के दुख का पार न था। इंद्रजीत मेघनाद इस प्रकार एक वनवासी युवक के हाथों मारा जाएगा इसकी उसने कल्पना भी न की थी। एक तुच्छ वानर उसकी स्वर्ण नगरी को जलाकर कलुषित कर देगा यह भी तो उसके लिए अकल्पनीय ही था किंतु अकल्पनीय या अवांछित होने से भवितव्यता तो नहीं टल जाती। मंदोदरी का हृदय टूक टूक हुआ जाता था। आज उसने अपने अंतिम पुत्र को भी खो दिया था। लंकापुरी के प्रत्येक घर से रुदन के स्वर उठ रहे थे। कोई भी घर ऐसा नहीं बचा था जहां के बीर पुरुष मारे न गए हों या मरणासन्न न हुए हैं। शेष बचे हुए संभवतः अपने अधिपति द्वारा दी जाने वाली यज्ञ की अंतिम आहुति बनने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

दुखी, व्यग्र रावण अपने भवन में बैठा था। रानी मंदोदरी उसके चरणों से लिपट कर रो रो कर निवेदन कर रही थी -

"अब बस करिए स्वामी! बहुत हुआ। अब तो यह युद्ध रोक दीजिए। अब तो लंका में गिने-चुने पुरुष तथा अबोध बालक ही रह गए हैं। उनकी जीवन रक्षा करके राक्षस जाति को विनाश से बचा लीजिए। एक स्त्री के लिए इस प्रकार अपने ही वंश का नाश कराने का कोई औचित्य नहीं है। अब बस बस कीजिए प्रभु!"

"नहीं मंदोदरी! अब यह युद्ध नहीं रुक सकता। यदि इसी प्रकार राक्षस जाति का विनाश होना है तो हो किंतु मैं अपना हठ त्याग कर सीता को नहीं लौटाऊंगा। अब सभी पुत्रों और परिवार को खोने के बाद किसलिए संधि कर लूँ?"

रावण ने तड़प कर पूछा।

"अभी भी भविष्य के बचे रहने की संभावना है स्वामी! अभी मैं हूँ, आप हैं। कुछ राक्षस बीर भी हैं और बालक बालिकाएं भी। राक्षसों की स्त्रियाँ भी अभी जीवित हैं स्वामी! हम फिर से वंश-वृद्धि करेंगे। संभवतः हमारा मेघनाथ पुनः मेरी कोख को धन्य करने के लिए जन्म ले।"

मंदोदरी के नेत्रों में ममता की आशा भरी ज्योति डिलमिला उठी।

"निराधार आशाओं के बीज बोने का प्रयास मत करो गानी! कोई पुनर्जन्म नहीं होता। जो है यही जीवन है। सुख-दुख, स्वर्ग-नर्क सब यहीं है। पुनर्जन्म की परिकल्पना तो अपने संतोष के लिए और समाज को संतुलित रखने के लिए की गई है। यदि पुनर्जन्म को मानती हो तो आत्मा द्वारा धारण की जाने वाली चौरासी लाख योनियों की परिकल्पना को भी स्वीकार करना होगा। फिर तुम ही कहो, मेघनाथ का जन्म मनुष्य रूप में ही होगा यही कहाँ निश्चित है? कहा जाता है कि मनुष्य अपने कर्मों और प्रवृत्तियों के अनुसार ही विभिन्न योनियों में जन्म लेता है तो क्या मनुष्य जाति में ही हिंसक प्रवृत्ति वाले, अकारण दूसरों को कष्ट पहुंचाने वाले मनुष्य नहीं होते? फिर तो उन सभी को हिंसक पशुओं के रूप में जन्म ले लेना चाहिए। क्या सभी सज्जन और साधु पुरुष सुखी रहते हैं?तुम"

उसी समय शूर्पणखा ने कक्ष में प्रवेश किया।

"ठीक कह रहे हैं भाई! वे स्वयं ही क्या किसी हिंसक पशु से कम हैं? उनके कर्म उनकी प्रवृत्ति....."

"वंचिता!"

रावण चीख उठा।

"अभी भी तुम्हें मेरे नाम का स्मरण है भाई? मैं तो उसे पति की राख के साथ ही समुद्र की लहरों में प्रवाहित कर आई थी। उस पति की राख के साथ जिसे तुमने अपनी महत्वाकांक्षा और झूठी मर्यादा की आड़ लेकर मार डाला था क्योंकि वह तुम्हारे शत्रु राज्य का राजकुमार था और उसने तुम्हारी राक्षसराज रावण की बहन से प्रेम करने का दुस्साहस किया था उसे अपनी अपनी पत्नी बनाया था।"

शूर्पणखा के स्वर से मानो विष की बूंदे झार रही थीं।

"चुप करो शूर्पणखा! इस अवसर पर इन पुरानी बातों को स्मरण करने का क्या औचित्य है?"

महारानी मंदोदरी तड़प उठी।

"औचित्य है भाभी! आज राक्षसराज, निरंकुश, स्वच्छंद प्रकृति वाले भाई को अपना परिवार खोने का दुख हुआ है। वैसा ही दुख जैसा मुझे अपने प्रिय पति अश्मक द्वीप के स्वामी विद्युतजिह्व को खोने पर हुआ था।"

"उसके बदले में मैंने तुम्हें दंडक वन का साप्राज्य दे दिया और दे दिया था स्वच्छंद भोग का अवसरा तुम्हारी इसी उच्छृंखलता के कारण आज लंका पर ऐसी विपत्ति आई है। यदि तुम राम को पाने का प्रयास नहीं करती तो"

"मैं तो उन दोनों भाइयों को छोड़ आई थी किंतु तुम ... तुमने उनकी पत्नी सुंदरी सीता को पाने की आशा में अपना ही सर्वनाश कर लिया भाई। जिस प्रकार पति को खोने के बाद उसका विकल्प नहीं मिल पाता उसी प्रकार प्रत्येक स्त्री सर्वभोग्या नहीं होती इस सत्य को तुमने कभी स्वीकार ही नहीं किया। तुम्हारे रनिवास में सुंदरियों की कमी तो नहीं है। फिर सीता ही क्यों? और विश्वास ही नहीं होता कि तुम जैसे कामी पुरुष का पुत्र मेघनाद केवल अपनी पत्नी सुलोचना को ही समर्पित था। तभी तो पति के साथ ही उसने देह त्याग दी। स्त्री के ऐसे समर्पण को प्राप्त करने का सौभाग्य उन्हें ही मिलता है भाई! जो पत्नी के प्रति एकनिष्ठ समर्पण करना जानते हैं। तुमने तो भोगवाद चला कर जीवन की सारी मर्यादाएँ ही तोड़ दीं। केवल यही जीवन है इसलिए भोग लो जितने सुख भोग सकते हो। जो तुम्हें प्रिय लगे उसे छीन लो या इतना साहस न हो तो चुरा लो। किंतु लालसाएँ तो कभी नहीं मिटती भाई! भोग की तृष्णा कभी भोग से तृप्त नहीं हो पाती। तो फिर उसे त्याग कर आत्मसंतुष्टि का मार्ग क्यों न अपनाया जाना चाहिए? कहीं तो संतोष की रेखा खींचनी ही होती है न। यही नहीं किया तुमने। इसीलिए अपने साथ साथ हम सब को भी ले डूबो!"

सूर्पनखा के नेत्रों में जल भर आया। आंतरिक वेदना से उसका मुख विवर्ण हो उठा।

रावण ने भरपूर दृष्टि से देखा अपनी बहन की ओर।

रुद्रायन – 2

"तुम स्वतंत्र हो सूर्णणखा! मेरे कर्मों का भागी तुम्हें या किसी अन्य को नहीं बनना होगा। कल युद्ध की पूर्णाहुति होगी। अपनी संपूर्ण शक्ति के साथ मैं कल राम से युद्ध करूँगा मृत्युपर्यंत। या तो विजयी होकर लौटूँगा या राम के हाथों वीरगति पाकर मुक्त हो जाऊँगा। अब तुम सब विश्राम करो।"

उन्हें वहीं छोड़ कर रावण सभा-भवन की ओर बढ़ गया जहां उसके सैन्य प्रमुख उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

वह युद्ध का अंतिम दिन था। रावण ने पुरी के सभी द्वारों को भलीभांति बंद करवा दिया और संपूर्ण सेना लेकर उत्तरी द्वार से शत्रु सेना पर टूट पड़ा। वह प्राण देने और लेने का युद्ध था। जीने या मरने का युद्ध था। पराजय के लिए वहां कोई स्थान न था। अपने मुट्ठी भर सैनिकों के साथ रावण जूझ मरा। उसके सभी सैनिक अपने अधिपति के लिए युद्ध कर रहे थे। वस्तुतः वह स्वयं एक हारा हुआ युद्ध लड़ रहा था। उसके विश्वस्त सैनिक उसके ही भाई विभीषण को शत्रु की ओर से युद्ध करता देख कर विचलित होने लगे थे। स्वयं रावण की भोग संस्कृति ने भी उससे कम शत्रुता नहीं निभाई। रावण के साथ युद्ध करते हुए उसके सैनिक अपने परिवार के विषय में सोचने लगे। उन्हें विभीषण के आधिपत्य में रहना सुहाने लगा। दो पहर बीतते बीतते युद्ध समाप्त हो गया। अधिकांश राक्षस सैनिक खेत रहे। जो बच रहे वे विभीषण के झंडे के नीचे आ गए। अकेला रावण राम से युद्ध करता रहा। राम के सभी अस्त्र-शस्त्र उस पर निष्प्रभावी हो रहे थे।

रावण का संपूर्ण शरीर कवच से सुरक्षित था। वह संपूर्ण सेना के समान ही अजेय प्रतीत हो रहा था। अपने प्रहारों से उसने राम को घायल कर दिया। अंगद, सुग्रीव, हनुमान आदि प्रमुख वीर भी उसके भीषण प्रहार से स्वयं को बचा नहीं पा रहे थे। ऐसे समय में विभीषण ने राम को रावण के उस अक्षय कवच के दुर्बल भाग का रहस्य बता दिया। वस्तुतः उसका वह कवच दो भागों में बना हुआ था। कमर पर वह कटा हुआ था जिस से युद्ध करते समय सरलता से घूमा जा सके। कटि प्रदेश पर आघात

करना युद्ध के नियमों के विपरीत था किन्तु विभीषण के बताने पर अन्य किसी भांति से रावण को मारना संभव न होने के कारण राम ने एक तीक्ष्ण बाण उसकी नाभि को लक्ष्य करके छोड़ दिया। वह सीधा नाभि में घुस गया और कुछ ही क्षणों में रावण ने तड़प तड़प प्राण त्याग दिए।"

मुनि कागभुशुण्ड मौन हो गए। वातावरण बोझिल हो गया। नारद ने आह भरी -

"वेदों का अद्भुत ज्ञाता, देवभाषा संस्कृत का प्रकांड पंडित, अप्रतिम वीर था रावण। उसने लंका नगरी को वैभव संपन्न करके देवलोक की नगरी से भी अधिक वैभव शालिनी बना दिया था। अपने साथियों, अनुयायियों को वहां बसा कर एक नवीन संस्कृति का प्रसार किया। भोगवाद को आधार बना कर रक्ष संस्कृति चलाई। राक्षस जाति को विश्व में प्रसिद्धि दिलाई। वही रावण अपने ही भाई के विश्वासघात के कारण अनाथों के समान मृत्यु मुख में चला गया।"

"वह अपनी ही कुछ भूलों के कारण अपने भविष्य के लेख में अपने ही हाथों से अपना विनाश लिख बैठा था। नारद ! रावण को उसका अहंकार, हठ और अपनों को महत्वहीन समझने की भावना के कारण ही इस प्रकार असहाय होकर मरना पड़ा।"

रुद्रदेव उदास स्वर में बोले।

"सत्य कहा आपने। लंकाधिपति होकर भी उसने अपने भाई विभीषण को कभी वह सम्मान नहीं दिया जो उसका अधिकार था। अपनी स्वच्छंद प्रकृति तथा हठीले स्वभाव के कारण उसके अपने रक्त संबंधी भी उससे रुष्ट हो कर, अपमानित होकर दूर हो गए। यक्षपति कुबेर को उसने अपने अहंकार के कारण शत्रु बना लिया था और विभीषण को अपमानित करके उसका विश्वास भी खो दिया। अपनी ही बहन को विधवा बना कर उसने उसके हृदय में भी अपने लिए घृणा का बीज बो दिया था जो अनुकूल अवसर पाकर पल्लवित, पुष्पित हुआ।"

कागभुशुण्ड मुनि ने रुद्रदेव का समर्थन किया।

रुद्रायन – 2

"इन सबसे बड़ा अपराध उसने नारी जाति के प्रति किया था। स्त्री को सम्मान न देकर वह उसे भोग्या मात्र समझता रहा। उसे पुरुष की बलवान पुरुष की संपत्ति समझता रहा इसीलिए उसने सीता का अपहरण किया जो उसके विनाश का प्रमुख कारण बनी।"

पार्वती बोली।

"अब आज की कथा को यहीं विश्राम दिया जाए। आप सभी विश्राम करें। शेष कथा कल संध्या - उपासना के बाद कहीं जाएंगी। उचित है न रुद्रदेव?"

"अवश्य मुनिवर! अब आप भी विश्राम करें। हमें भी कल प्रातः तक के लिए आज्ञा प्रदान करें।"

रुद्रदेव तथा पार्वती ने कागभुशुण्ड मुनि को प्रणाम किया तथा उनके शिष्यों के साथ विश्राम स्थल की ओर चल पड़े।

००००

रात्रि आधी से अधिक व्यतीत हो चुकी थी किंतु पार्वती की आंखों में नींद नहीं थी। वह अपनी शैया पर करवटें बदल रही थी। अंतः रुद्रदेव ने पूछ लिया -

"क्या बात है, तुम अभी तक नहीं सोई?"

"बहुत प्रयास करने पर भी निद्रा देवी रुठी बैठी हैं। क्या करूं?"

पार्वती मुस्कुराई।

"मैं लोरी सुना दूं क्या?"

"नहीं नहीं। ऐसा भूल कर भी न करिएगा स्वामी! वह आपका पुत्रवत नारद सो रहा है ना। आपकी लोरी ने उसे जगा दिया तो हम कठिनाई में पड़ जाएंगे।"

"लगता है कोई बात तुम्हें परेशान कर रही है। बिना शंका का समाधान हुए तुम सो नहीं सकोगी यह मैं जानता हूँ। अब कहो, किस चिंता में हो?"

रुद्रदेव ने शैया पर बैठते हुए पूछा।

"कोई विशेष बात नहीं है।"

"जो भी है कह डालो जिससे हम सो सकें। इस प्रकार तुम्हारे करवटें बदलते रहने से तो मैं भी नहीं सो सकूँगा।"

रुद्रदेव ने सम्मित कहा।

"मुझे सूर्पणखा की कही हुई बातें कष्ट दे रही हैं। उसने रावण से ऐसा क्यों कहा कि उसने उसके पति की हत्या की है? क्या यह सत्य है कि..."

"हां, यह कटु सत्य है। मैं जब अगस्त्य मुनि से मिलने सती के साथ दंडक वन में गया था तब एक बार यह कथा मैंने उन्हीं के मुख से सुनी थी। अगस्त्य मुनि असत्य भाषण नहीं करते यह तो तुम जानती ही हो।"

रुद्रदेव बोले।

"हां प्रभु! मैं सूर्पणखा की कथा जानना चाहती हूँ।"

"अवश्य। किन्तु इतनी रात गए....."

"परंतु स्वामी..."

रुद्रायन – 2

"ठीक है। तुम लेट जाओ। मैं भी लेट कर कथा कहता हूँ। इससे शरीर को विश्राम मिलता रहेगा और शंका दूर होने पर तुम्हें निद्रा भी आ जाएगी।"

रुद्रदेव ने उमा को समझाते हुए कहा। पार्वती के जिज्ञासु स्वभाव से वे भलीभांति परिचित थे और जानते थे कि जब तक वह सूर्णनखा की कथा नहीं सुन लेगी सो नहीं सकेगी। पार्वती के जगे रहने पर रुद्रदेव ही कहां सो पाते?

उमा के लेट जाने पर रुद्रदेव भी शैया पर लेट गए और उन्होंने धीमे स्वर में कहना आरंभ किया -

"महर्षि पुलस्त्य का पुत्र विश्रवा वेदज्ञ तथा धर्मनिष्ठ ब्राह्मण था। समाज में वह अत्यंत प्रतिष्ठित था। साथ ही सुदर्शन और बलिष्ठ भी। महर्षि भरद्वाज की पुत्री से उसका विवाह हुआ और उससे कुबेर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। कुबेर अत्यंत तेजस्वी तथा मेधावी होने के साथ ही पिता का आज्ञाकारी पुत्र भी था। युवा होने पर पिता की आज्ञा पाकर उसने दैत्यों की नगरी लंका को अधिकृत कर लिया और अपने सहयोगियों के साथ वहीं निवास करने लगा।

लंका दैत्यों की बसाई तथा सुसम्पन्न बनाई हुई नगरी थी जो उनके पराभव के बाद उनके भूमिगत हो जाने पर अरक्षित पड़ी थी। संगीत तथा कला के प्रेमी कुबेर ने देवों के प्रधान शिल्पी से अपने लिए पुष्पक विमान बनवाया जिसमें बैठ कर वह भूमंडल पर भ्रमण किया करता था।

दैत्यराज सुमाली के दो भाई और भी थे - माली और माल्यवान। देवताओं के साथ युद्ध में अपने अग्रज माली तथा अपने साथियों व परिजनों के मारे जाने से सुमाली हतोत्साहित होकर अपने भाई माल्यवान और अपने पुत्रों के साथ भूमिगत हो गया। लंका पर कुबेर का अधिकार हो जाने पर वह बहुत दुखी हुआ। उसने दैत्यों की पराजय का मुख्य कारण उनको वेदों का ज्ञान न होना मान कर अपनी पुत्री कैकसी को महर्षि विश्रवा के आश्रम के निकट छोड़ दिया जिससे वह उन्हें आकर्षित करके

पुत्रवती हो सके। कैकसी ने पिता के आदेश का पालन किया और महर्षि विश्रवा की सेवा करने लगी।

कैकसी की सेवा से अत्यधिक प्रसन्न होने तथा उससे प्रेम हो जाने के कारण महर्षि ने उससे विवाह कर लिया। समय पर उसने तीन पुत्रों - रावण, कुभकरण तथा विभीषण को जन्म दिया। तीनों पुत्र पिता के आश्रम में रहकर पलने, बढ़ने और शिक्षा प्राप्त करने लगे। कुशाग्र बुद्धि होने के कारण रावण शीघ्र ही वेद विद्या में निष्णात हो गया। जब उसकी आयु चौदह वर्ष की थी तब कैकसी ने एक कन्या को जन्म दिया जिसका नाम रखा गया वैदूर्यमणि। अभी कन्या की आयु मात्र छै वर्ष की थी जब एक दिन पूजा के लिए पुष्प चयन करते समय नाग के काट लेने से कैकसी की मृत्यु हो गई। पत्नी के प्रेम में आहत विश्रवा को तो जैसे अपनी सुधि ही न थी। ऐसे में दैत्यराज सुमाली अपने तीनों दौहित्रों तथा नातिन को अपने साथ पातालपुरी लेकर चला गया।

मातृत्व सुख से वंचिता कन्या को नाना बहुधा वंचिता कह कर पुकारा करते थे। कुछ बड़ी हुई तो तीनों भाई उसके चौड़े फैले-फैले नाखूनों के कारण उसे शूर्पणखा नाम से चिढ़ाने लगे। अंततः उसके दोनों नाम वैदूर्यमणि और वंचिता काल के गाल में समा गए। रह गई सूर्पणखा जो अपने भाइयों की अत्यंत प्यारी दुलारी बहन थी। नाना तथा मामाओं ने उन बालकों को अपनी दैत्य संस्कृति के अनुसार भोगवादी शिक्षा दी। उन्हें निर्मम योद्धा तथा घोर भौतिकता वादी विचारों से संपन्न किया। अबोध बालकों को अपने अनुभव तथा देवों, मानवों आदि के विरुद्ध विचारों से भर कर अपनी इच्छानुसार उनमें महत्वाकांक्षाएँ पल्लवित कीं।

सुमाली का उद्देश्य उन्हें संपूर्ण विश्व का स्वामी बनाना था। वह रावण के द्वारा अपने पराजित दैत्य समाज को पुनः प्रतिष्ठित करना चाहता था। पिता के संरक्षण से दूर होकर रावण तथा उसके अन्य भाइयों का विकास वैसे ही हुआ जैसे सुमाली चाहता था। तरुण होते ही रावण सर्वप्रथम अपने नाना मामाओं तथा अन्य परिजनों के साथ लंका जा पहुंचा। उसकी उद्दंडता से आहत होकर भी कुबेर ने छोटा भाई जान कर

रुद्रायन – 2

उसे क्षमा किया तथा उसकी इच्छानुसार पिता का आदेश मान कर उसे लंका सौंप दी और स्वयं अपने परिजनों सहित सुदूर उत्तर में जाकर यक्षों की नगरी अलकापुरी बसाई। वहां स्वर्ण तथा रत्नों की खाने निकल आने पर उसे धनाधीश तथा सर्व सम्मति से लोकपाल बना दिया गया। रावण ने पुष्पक विमान भी उससे छीन लिया और लंका में रख लिया।

लंकापुरी को रावण ने अपनी इच्छानुसार अपने परिजनों तथा सुहृदों से बसा दिया। लंका में वीरता की विशेष प्रतिष्ठा की गई। रावण ने वहां भोग और योग की अपने ढंग से व्याख्या की और रक्ष संस्कृति चलाई जिसके अपने अलग नियम और मान्यताएं थीं।

साप्राज्य विस्तार की इच्छा से रावण ने अपने निकटवर्ती द्वीपों पर अधिकार कर लिया। इन्हीं द्वीपों में एक द्वीप पर बसी थी अश्मपुरी जिसके निवासी कालिकेयों को वह पराजित नहीं कर सका अतः उनसे वैर मानने लगा था। उन्हीं कालिकेयों के युवराज विद्युतजिह्वा से राजकुमारी सूर्पनखा को प्यार हो गया।"

कहते कहते रुद्रदेव चुप हो गए। उन्होंने उमा की ओर देखा जो नेत्र बंद किए पड़ी थी।

"सो गई?"

रुद्रदेव ने धीरे से पूछा।

"नहीं स्वामी! सुन रही हूँ। शत्रु जाति के युवक से प्रेम क्या अद्भुत नहीं प्रतीत होता? कैसे हुआ यह सब?"

पार्वती ने आंखें खोल कर पूछा।

"राक्षसों की स्वेच्छाचारिता तथा स्वच्छंदतावादी संस्कृति के कारण वन में स्वच्छंद विहार के समय उसके प्राण एक सिंह से बचाने वाला वह योद्धा शत्रु जाति का है यह तो वह जानती भी नहीं थी। वह उपकार ही उनके परिचय का बहाना बना और वे एक दूसरे के निकट आते गए। जब प्रेम हुआ तो निर्बाध आसक्ति के वशीभूत दोनों ने गंधर्व विवाह कर लिया। सूर्पनखा उसे अपने परिवार से मिलाना चाहती थी किंतु विद्युतजिह्वा उचित अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। वह जानता था

कि उसका वास्तविक परिचय जान कर राक्षसराज उसे क्षमा नहीं करेगा और संभवतः सूर्पनखा को उसके साथ रहने भी नहीं देगा इसीलिए एक रात अपनी दूती से अपने विवाह की बात बताकर सूर्पनखा विद्युतजिह्वा के साथ भाग गई।

वह उसे अपने नगर अश्मपुरी में ले गया जहां उसका वास्तविक परिचय जान कर सूपनखा प्रसन्न ही हुई। उसका पति एक छोटे से द्वीप का राजा है और स्वतंत्र है, यह उसके लिए गर्व की बात थी। विद्युतजिह्वा की वीरता से वह पहले से ही प्रभावित थी। परंतु राक्षसों को उनका इस प्रकार विवाह करना अपनी जाति और प्रतिष्ठा का अपमान लगा इसीलिए रावण ने अपनी विशाल सेना के साथ अश्मपुरी को घेर लिया। संयोग से उन्हें विद्युतजिह्वा अकेला ही समुद्र तट पर मछलियों का आखेट करता मिल गया और उसे उसका परिचय जान कर वहीं निर्ममता से मार डाला गया। सूर्पनखा को रावण अपने प्रेम का वास्ता देकर वापस ले आया और उसे चौदह हजार अश्मपुरी के निवासियों के साथ अपने भतीजों खर और दूषण के सेनापतित्व में दंडक वन की अधीश्वरी बना दिया।"

"ओह, फिर क्या हुआ?"

उमा उत्कंठित हो कर पूछ बैठी।

"अपूर्ण कामना अत्यंत दुखदाई होती है उमा! सूर्पनखा विवाहित जीवन का सुख भोग भी नहीं पाई थी कि उसे उसके ही भाइयों ने विधवा बना दिया। सामने रखी छप्पन व्यंजनों से भरी थाली खिंच जाने पर जो स्थिति बुभुक्षित की होती है उससे भिन्न स्थिति नहीं थी राजकुमारी की। उसका अंतस छटपटा रहा था, तड़प रहा था। अपनी इसी प्यास को बुझाने के लिए, जीवन को फिर से बसाने के लिए उसने कई बार प्रयास किया। दंडक वन में निवास करने वाले क्रष्ण, मुनि, अन्य जातियों के अधिपति, कोई भी उसके अतीत को जान कर उससे विवाह करने के लिए प्रस्तुत नहीं हुआ। एक क्रष्ण ने अनजाने में ही उसके रूप से मोहित होकर उससे विवाह कर भी लिया किंतु उसके जीवन का सत्य जानते ही उसका त्याग कर दिया। क्रोध से भर कर सूर्पनखा ने उसे वहीं मार डाला।

अंततः उसकी कामनाएं उसे ही खाने लगीं। कुंठा और समाज के प्रति क्रोध ने उसे निष्ठुर बना दिया। विरोध उससे सहन नहीं होता था और उच्छृंखलता उसे निर्लज्ज बनाती जा रही थी। ऐसे में ही उसे एक दिन राम और लक्ष्मण दिखाई दिए। उनमें से किसी एक से विवाह करके वह अपना जीवन सफल बना लेना चाहती थी किंतु राम ने उसे लक्ष्मण के पास भेज दिया और लक्ष्मण ने अपमानित करके मानो उसकी नाक ही काट ली। क्रोध में भर कर वह खर दूषण के पास गई और राम तथा लक्ष्मण को मार डालने का प्रयास किया। युद्ध में खर दूषण त्रिशिरा तथा सेना के मारे जाने पर उसका समस्त क्रोध रावण की ओर बह चला। उसी के कारण आज वह इस दुरवस्था में थी। इसीलिए उसने रावण को सीता का हरण करने के लिए उकसाया। रावण की कामलिप्सा उस से छिपी नहीं थी। जिस पुरुष की कामनाएं कभी तृप्त नहीं होती थी उसी ने उसके जीवन में अंगारे भर दिए थे। उसकी एक ही कामना थी। या तो सीता का मान मर्दन करके रावण उसके अपमान का प्रतिशोध ले ले या स्वयं राम के हाथों मारा जाए!"

"उफ! इतनी घृणा?"

पार्वती सहम उठी।

"उमा! नारी अपमानित और लज्जित होकर कुछ भी कर सकती है। वह शक्ति का प्रतिरूप होती है। क्रोधित होकर वह संपूर्ण सृष्टि का विनाश कर सकती है और प्रसन्न होकर सुख के अगणित पुष्प खिला सकती है। अब सो जाओ उमा!"

"अवश्य स्वामी! शुभरात्रि!"

पार्वती ने निद्रालस होकर नेत्र बंद कर लिए। रुद्रदेव भी करवट लेकर गहरी नींद में ढूब गए।

मुनि कागभुशुण्ड जी ने आगे की कथा सुनानी प्रारंभ की -

"लंकापति रावण के वीरगति प्राप्त करते ही युद्ध थम गया। राक्षसों की सेना ने हथियार डाल दिए। राम की जय जयकार से आकाश गुंजित हो उठा। समाचार पाते ही रनिवास युद्ध स्थल में आकर रावण के शव के निकट जाकर उसके गुणों का स्मरण कर करके विलाप करने लगा। राम का आदेश पाकर विभीषण ने राजसी सम्मान सहित रावण के पद के अनुरूप उसका अंतिम संस्कार किया। लंका की प्रथा के अनुसार मंदोदरी आदि रानियां पति को तिलांजलि देकर लौट गईं। तब राम के आदेश पर सीता को ससम्मान राम के निकट लाया गया। राम का रुख देख कर सीता ने जलता हुआ प्रदीप हाथ में लेकर अग्नि शपथ ली।

"मैं शपथ पूर्वक कहती हूँ कि राम के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष के विषय में मैंने मन से भी कामना नहीं की। मैं राम की प्रिय पत्नी तथा उन्हें के प्रति एकनिष्ठ थी, हूँ और भविष्य में सदैव रहूँगी।"

अशोक वाटिका की रक्षक दासियों, रक्षकों तथा मंदोदरी आदि रानियों ने भी सीता की पवित्रता तथा उनके एकनिष्ठ प्रेम को शपथ पूर्वक प्रमाणित किया। तब राम ने उन्हें पुनः पत्नी रूप में स्वीकार किया।

विभीषण ने सभी नागरिकों के समक्ष शपथ पूर्वक निवेदन किया -

"मैं श्री राम को अपना स्वामी तथा लंका का अधिपति स्वीकार करता हूँ। यद्यपि राम ने मुझे लंका का राजा बनाया है किंतु मैं उनके क्षत्रप के रूप में राज्य कार्य करूँगा। आज मैं शपथ पूर्वक सपरिवार राम के आर्य धर्म को स्वीकार करता हूँ।"

सभी लंकावासियों ने स्वेच्छा से आर्य धर्म स्वीकार किया तो विभीषण ने समस्त राम सेना के सैनिकों तथा सैन्य प्रमुखों को लंका में रहने का निमंत्रण दिया। लंका के अधिसंख्यक पुरुष राम रावण युद्ध में प्राण खो चुके थे। लंका के वैभव तथा सुंदरी स्त्रियों के लोभ में कितने ही बन्य जाति के सैनिकों ने वहां बसना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार लंका को पुनर्वासित करने तथा सुव्यवस्थित करने में विभीषण के संलग्न होने पर लक्ष्मण, सुग्रीव, अंगद, जांबवंत तथा द्विविद, मर्यंद, द्विप, नील, नल

रुद्रायन – 2

आदि प्रमुख वीरों के साथ राम ने पत्नी सहित अयोध्या गमन की इच्छा प्रगट की। विभीषण ने उन्हें पुष्पक विमान भेट कर दिया। लौटते समय राम समस्त सैन्य प्रमुखों तथा सैनिकों को उनकी इच्छानुसार उनके आवास गृहों के निकट छोड़ते हुए अयोध्या लौटे। बहुत समझाने पर भी हनुमान ने किञ्चिंधा में रुकना स्वीकार नहीं किया। वह राम के साथ ही अयोध्या आया।

अयोध्या में भरत आदि ने राम का भव्य स्वागत किया। राम के नाम से राज्य करने वाले भाई भरत ने उनके आने पर राज्य उन्हें ही लौटा दिया। भव्य समारोह के साथ राम का राज्याभिषेक किया गया जिसमें सभी मित्र राज्यों ने सम्मिलित होकर राम को अनेक प्रकार के उपहार आदि देकर उसे सम्मानित किया। इस समारोह में स्वयं ब्रह्मदेव तथा विष्णुदेव ने भी भाग लिया तथा राम को आर्य धर्म के नियमों के अनुसार राज्य कार्य करने के लिए प्रेरित किया। राजा राम ने कुछ फेरबदल करके नया मंत्रिमंडल बनाया और उसके सहयोग से कोशल राज्य को सुव्यवस्थित करके राज्य करने लगे। उनके राज्य में प्रजा के सुख दुख का विशेष ध्यान रखा गया। सामाजिक विषमताओं को दूर करके सबको समान अधिकार दिए गए तथा स्त्रियों को विशेष सम्मान प्रदान किया गया। कुछ ही समय में राम द्वारा किए गए सुधारों और सुव्यवस्था के कारण राम का राज्य अन्य राज्यों के लिए उदाहरण बन गया।"

"बहुत कष्ट उठाने के बाद राम ने राज्य सुख पाया।"

पार्वती बोली।

"विचित्र है यह संसार भी। एक ओर विभीषण जैसा भाई है जिसने अपने भाई के साथ संपूर्ण परिवार का नाश करा दिया और दूसरी ओर भरत है जिसने सौतेला भाई होते हुए भी स्वतः प्राप्त राज्य को अपने अग्रज राम को समर्पित कर दिया।"

नारद ने कहा।

"हां नारद मुनि! ऐसा ही है यह संसार। यहां अनंत दुख है और अनंत सुख भी। अच्छे और बुरे, गुण और दोषों का सम्मिश्रण है यहां।

समय बहुत बलवान होता है। समय और भाग्य जिसे जिस ओर ले जाए वही मार्ग उसकी नियति बन जाता है।"

काग्भुशुंडि मुनि में गहरी सांस ली।

"फिर तो सब ठीक ही हो गया अंततः।"

रुद्रदेव ने कहा।

"हाँ, राम के लिए यूं तो सब ठीक ही हो गया था किंतु भविष्य के गर्भ में जो छिपा था वह तो समय आने पर ही प्रत्यक्ष होना था ना।"

"क्या हुआ भविष्य में?"

पार्वती उत्सुक हुई।

"राजा राम ने अपने सत्कार्यों से समस्त प्रजा का मन मोह लिया। उन्होंने अपनी प्रजा के दुख सुख तथा विचार जानने के लिए गुप्तचरों का जाल फैला दिया जो सजग रहकर गुप्त रूप से प्रजा के विचारों को जानकर उनकी आवश्यकताओं के विषय में राजा को अवगत कराते रहते थे। एक बार ऐसे ही अवसर पर एक गुप्तचर ने राम को संसंकोच सूचित किया -

"महाराज! आज मैं रजकों की बस्ती रजत टोले में घूम रहा था।"

"वहाँ सब सुखी संतुष्ट तो है न?"

राजा राम ने पूछा।

"हाँ प्रभु! वहाँ से जाते समय मैंने एक स्थान पर लोगों की भीड़ लगी देखी। मैं भी उस भीड़ में सम्मिलित होकर वस्तुस्थिति की टोह लेने लगा। एक घर के सामने भीड़ लगी थी। गृह का स्वामी रजक अपनी पत्नी को घर में प्रवेश नहीं करने दे रहा था। वह एक ही बात बार-बार कह रहा था -

"कुलटा! जा, जहाँ तू रात बिता कर आई है वहीं जाकर मरा!"

"परंतु स्वामी! मैं तो आप के आदेश पर ही कपड़े देने गई थी। वहाँ मुझे मेरी माँ मिल गई और मुझे अपने साथ घर ले गई। रात अधिक हो जाने के कारण उसने मुझे आने नहीं दिया। रात भर मैं माता के साथ उसके घर में ही थी। प्रातः होते ही यहाँ आई हूं।"

रुद्रायन – 2

रजक की पत्नी ने बताया।

"तू सत्य कह रही है इसका क्या प्रमाण है?"

रजक ने पूछा।

"मेरी माता मेरी साक्षी है।"

"वह तो पुत्री का पक्ष ही लेगी। मैं उसका साक्ष्य नहीं स्वीकार करता। तू मेरे साथ नहीं रह सकती। मैं तेरा त्याग करता हूँ।"

"ऐसा मत कहें स्वामी! मैं निरपराध हूँ। यदि आपने मेरा त्याग कर दिया तो मैं राजा राम के पास न्याय मांगने जाऊंगी।"

रजक की पत्नी बोली।

"जहां तेरा जी चाहे जा। मैं राजा राम नहीं हूँ। जिसने छै मास तक लंका में रहने के बाद भी अपनी पत्नी सीता को स्वीकार कर लिया। मैं रजक हूँ। रजक।"

रजक क्रोध से बोला। उसकी इस उक्ति पर अन्य जन विरोध करने लगे -

"ऐसा मत कहो। राजा राम ने रानी सीता की अग्नि परीक्षा तथा अन्य राक्षसों की साक्षी के उपरांत ही रानी सीता को स्वीकार किया है। अपने कृत्य में उन्हें दोष देना ठीक नहीं है।"

"उनके इस साक्ष्य को किसने देखा? क्या तुम लोगों ने देखा है? जो राम ने कह दिया उसे ही सबने मान लिया। मैं नहीं मानता यह बात। और वह राम की पत्नी है। मेरा हृदय इतना विशाल नहीं कि मेरी आज्ञा लिए बिना अन्यत्र रात्रि व्यतीत करके आई पत्नी को स्वीकार कर लूँ। राजा राम भी मुझे इसके लिए विवश नहीं कर सकते।"

रजक ने क्रोध में भर कर कहा।

इतना कह कर गुप्तचर मौन हो गया।

"फिर? आगे की बात बताओ गुप्तचर! इस बात का अन्य जनों पर कैसा प्रभाव पड़ा? क्या वे भी मुझे दोषी मानते हैं?"

राजा राम ने व्याकुल होकर पूछा।

"क्षमा करें प्रभु! रजक की बातों का जनसमूह पर मिश्रित प्रभाव हुआ। कुछ लोग तो इसे असत्य कह रहे थे किंतु कुछ जनों का मत रजक से पृथक नहीं था। वे कह रहे थे - 'सत्य तो यही है कि सीता के अग्निसाक्षी की बात राम लक्ष्मण तथा हनुमान ने ही कही है। वास्तव में वहां क्या हुआ यह तो ईश्वर ही जाने। सीता राम को अत्यधिक प्रिय है। वह उसे स्वयं से दूर कैसे कर सकते हैं?' महाराज ! जितने मुंह उतनी ही प्रकार की बातें हम उन्हें समझाने का प्रयास करें यदि आप आदेश दें तो"

"नहीं चर! अब तुम जाओ।"

चर को विदा करके राम ने गंभीरता पूर्वक इस विषय पर विचार किया। रजक टोला राज्य का महत्वपूर्ण अंग था। उसके विचारों की उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। रजकों का अपना दल और उनका अपना दल प्रमुख था। समाज में किसी भी विचार को प्रसारित करना उनके लिए अत्यंत सहज था। वास्तव में उस समाज में नापित और रजक ये दोनों ही समूह समाज में समाचारों के आदान-प्रदान का प्रमुख माध्यम थे। उनकी विचारधारा तथा धारणा की उपेक्षा करने का अर्थ था राज्य में विद्रोह तथा असंतोष को बढ़ावा देना। उस नव सामाजिक व्यवस्था में समाज के किसी भी वर्ग को असंतुष्ट करने का खतरा नहीं उठाया जा सकता था।

बहुत सोच विचार के बाद राजा राम ने अपनी पत्नी सीता को त्याग देने का निश्चय किया। सीता निर्दोष तथा पवित्र है यह जानते हुए भी उसका परित्याग करने के अतिरिक्त अन्य उपाय नहीं था। राम ने भाई लक्ष्मण को बुला कर आदेश दिया कि वह सीता को वन में छोड़ आए।

"परंतु भाभी का दोष क्या है? वह अग्नि के समान पवित्र तथा आप से अत्यधिक प्रेम करने वाली सदाचारिणी स्त्री हैं। जीवन के प्रत्येक दुख में उन्होंने आपका साथ दिया है। अब सुख की इस स्थिति में आप उन्हें त्याग कर क्यों दुख के अनंत सागर में डुबो देना चाहते हैं?"

लक्ष्मण ने पूछा।

"राज्य-धर्म अत्यंत कठिन होता है भाई! और उससे भी अधिक कठिन होता है जन-रंजन। सीता मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय है। उसके

रुद्रायन – 2

बिना मैं किस प्रकार जीवित रह पाऊंगा यह मैं स्वयं नहीं जानता किंतु फिर भी मुझे उसका परित्याग करना ही होगा। यह परित्याग राजा राम के द्वारा रानी सीता का परित्याग होगा।"

"मुझसे यह नहीं किया जाएगा महाराज!"

लक्ष्मण ने विरोध किया।

"यह राजा राम की आज्ञा है। क्या राजा की आज्ञा का उल्लंघन करना तुम्हें शोभा देता है? क्या तुम राजा का विरोध करने में समर्थ हो?"

"नहीं महाराज! जैसी आपकी इच्छा। मैं राजा के आदेश का पालन करूँगा।"

लक्ष्मण ने राम की आज्ञा शिरोधार्य की और रानी सीता को वन दर्शन के बहाने वन में ले जाकर महर्षि वाल्मीकि के आश्रम के निकट छोड़ दिया। राम द्वारा त्याग दिए जाने की बात सुन कर सीता ने लक्ष्मण को संदेश दिया -

"जाकर राजा राम से कहना, मैं उनकी संतान को गर्भ में धारण किये हूँ। यदि उन्होंने मेरा परित्याग कर दिया है तो मैं अब पुनः उनके राज्य में प्रवेश नहीं करूँगी। यह जनकनंदिनी सीता का संकल्प है।"

और वह शोक के आवेग में मूर्छित हो गई। निराश्रिता, शोक विह्वला सीता को छोड़ कर दुखी लक्ष्मण राजाज्ञा में बंधे होने के कारण लौट गये। उनका हृदय विरोध करता रहा। मन रोता रहा किन्तु कर्तव्य की बेड़ियों में जकड़ा शरीर राजाज्ञा का पालन करता रहा।

भवन में लौटने पर जब राजमाता कौशल्या ने सीता के संबंध में पूछा तब लक्ष्मण स्वयं को रोक न सके।

राजमाता से सारी बातें कह कर उनके चरणों में सर रख कर वह बिलख उठे -

"भाभी को राजा राम ने त्याग दिया माँ! एक धोबी के कहने पर अपनी निर्दोष, पवित्र, गर्भवती पत्नी का परित्याग कर दिया राजा राम ने। उनके आदेश से मैं उन्हें वन में छोड़ आया।"

राजमाता कौशल्या शोक से स्तब्ध रह गयीं। कितनी ही देर तक उनके मुख से कोई शब्द नहीं निकला। बहुत देर बाद उनके मुख से कुछ शब्द फूट पड़े -

"यह तूने ठीक नहीं किया राम! एक निर्दोष स्त्री का त्याग करके जो अन्याय तूने किया है इसके लिए इतिहास तुझे क्षमा नहीं करेगा। कभी नहीं!"

शोक से जर्जर हो रहा था उनका हृदय। जीवन भर पति की उपेक्षा, उनका नित्य नवीन सुंदरियों के साथ विवाह और राग रंग सह कर प्रौढ़ावस्था में पुत्र पाकर सारे दुख भुला दिए थे राजमाता ने। उसी राम को महर्षि विश्वामित्र के साथ वन जाना पड़ा और फिर सौतेली माता कैकेई के षड्यंत्र के कारण चौदह वर्ष का कठिन वनवास भोगना पड़ा। ऐसे कठिन समय में पति का निधन ... और अब..... जब सुख से सांस लेने का अवसर आया तो यह नवीन वज्राघात। हाय सीता! कहां है तू? मेरी पुत्री ..."

कौशल्या के मुख से 'हाय' निकली और उन्होंने प्राण त्याग दिए। कुछ दिनों बाद जनक नंदिनी सीता ने महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में रहते हुए दो जुड़वां पुत्रों को जन्म दिया। महर्षि ने उनके समस्त संस्कार किए तथा उनका नामकरण किया। बड़े पुत्र का नाम कुश तथा छोटे का नाम लव रखा। उनका पालन पोषण तथा शिक्षा दीक्षा का दायित्व स्वयं महर्षि वाल्मीकि निभा रहे हैं। अयोध्या में लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न की पत्नियों ने भी दो दो बालकों को जन्म दिया है जिनका पालन पोषण राजभवन हो रहा है।"

कह कर मुनि कागभुशुडि ने कथा समाप्त की।

"न जाने रानी सीता..... नहीं वनवासिनी सीता के दुखों का कब अंत होगा ..."

पार्वती ने यह निःश्वास लेकर कहा।

रुद्रायन – 2

"आपने हमें राम की कथा सुना कर कृतार्थ किया। बहुत दिनों से राम के विषय में जानने की जिज्ञासा थी जो आप के अनुग्रह से शांत हुई। अब हमें प्रस्थान करने की अनुमति दें मुनिवर!"

रुद्रदेव ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया।

"आपके आगमन से तो मेरा यह आश्रम धन्य हो गया प्रभु! आप इस समस्त हिमालय के स्वामी हैं। हमारी कुशल क्षेम आपके ही हाथों में है। अब संध्या धिरने वाली है। मेरी इच्छा है कि आप लोग आज की रात और इस आश्रम को कृतार्थ करें। प्रातः आप आनंदपूर्वक गमन करें यही उचित होगा।"

काग्भुशुण्ड मुनि ने कहा।

"जैसी आपकी इच्छा।"

वह रात्रि उन्होंने वहीं आश्रम में ठहर कर विश्राम किया तथा दूसरे दिन प्रातः ही नारद के साथ अपने आवास जाने के लिये निकल पड़े।

oooooooooooo

क्रमशः

इसके आगे की कथा जानने के लिये पढ़ें
'रुद्रायन' उपन्यास का अगला तथा
अंतिम भाग -

'लौट आओ रुद्र'

रुद्रायन - 1

हिमाद्रि की छाया में

रुद्रायन - 2

अद्भुत अधोरी

रुद्रायन - 3

लौट आओ रुद्र



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

[creator of
hinduism
server]

अन्धूत अघोरी

नाम- डॉ. रंजना वर्मा

जन्म - 15 जनवरी 1952, शहर जौनपुर में ।

शिक्षा - एम.ए. (संस्कृत, प्राचीन इतिहास) पी.एच.डी. (संस्कृत)

लेखन एवम् प्रकाशन - वर्ष 1967 से देश की लब्ध प्रतिष्ठ पत्र पत्रिकाओं में, हिंदी की लगभग सभी विधाओं में । कुछ रचनाएँ उर्दू में भी प्रकाशित ।



प्रकाशित कृतियाँ - साईं गाथा (महाकाव्य) । अश्रु अवलि, सर्जना, समर्पिता, सावन, कैकेयी का मनस्ताप, वैदेही व्यथा, संविधान निर्माता, द्रुपद - सुता, सुदामा,(सभी खण्ड काव्य) । चन्द्रमा की गोद में, पोंगा पंडित (बाल उपन्यास), समृद्धि का रहस्य, चुनमुन चिरैया, जादुई पहाड़ (बाल कथा संग्रह), मुस्कान (बाल गीत संग्रह), फुलवारी (शिशु गीत संग्रह) । जज्बात, ख्वाहिशें, एहसास, प्यास, रंगे उल्फत, गुंचा, रौशनी के दिए, खुशबू रातानी की, ख्वाब अनछुए, शाम सुहानी, यादों के दीप, मंदाकिनी, आस किरन, बूँद बूँद औंसू (सभी ग़ज़ल संग्रह) । गीतिका गुंजन, सरगम साँसों की, रजनीगम्भा, भावांजलि, पुष्पवल्लरी (गीतिका संग्रह), सत्यनारायण कथा (पद्मानुवाद) । मुक्तक मुक्ता, मुक्तकाङ्गुलि, मन के मनके (सभी मुक्तक संग्रह) । दोहा सप्तशती, दोहा मंजरी (दोहा संकलन) । एक हवेली नौ अफसाने, रास्ते प्यार के, अमला, पायल, औंजोरिया, मर्डर मिस्ट्री, भुतहा किला, औंगना कँगना, सई, रुद्रायन - १ हिमाद्रि की छाया में, २ अन्धूत अघोरी (उपन्यास) । सूर्यास्त, सिंधु-सुता, परी है वो, नानी कहे कहानी, दशावतार (कहानी संग्रह) । साँझा सुरमयी, गीत गुंजन, गीत धारा, मीत के गीत, आ जा मेरे मीत, तुम बिन(सभी गीत संग्रह) । बसन्त के फूल (कुण्डलिया संग्रह) । चुटकियाँ (कह मुकरी संग्रह) । कविता कानन, कविता कौमुदी, मन की उड़ान(कविता संग्रह) चुटकी भर रंग, जुगनू (दोनों हाइकु संग्रह) । चंदन वन (तांका संग्रह), इंद्रधनुष (चोका संग्रह), मेहंदी के बूटे (सेदोका संग्रह), नयी डगर (वर्ण पिरामिड संग्रह) ।

सम्पादन - मन के मोती, मकरंद, सौरभ, मौन मुखरित हो गया (चारों कविता संग्रह), अँजुरी भर गीत (गीत संग्रह), शेष अशेष (स्मृति ग्रन्थ), हास्य प्रवाह (हास्य व्यंग्य कविताओं का संग्रह, थूकने का रहस्य, करामाती सुपारी (दोनों हास्य व्यंग्य संग्रह) ।

प्रसारण - गीत, वार्ता, तथा कहानियों का आकाशवाणी, फैज़ाबाद से समय समय पर प्रसारण ।

सम्मान - श्रीमती राजकिशोरी मिश्र सम्मान, श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान सृति सम्मान, काव्यालंकार मानद उपाधि, छन्द श्री सम्मान, कुँडलिनी गौरव सम्मान, ग़ज़ल सम्मान सम्मान, श्रेष्ठ रचनाकार सम्मान, मुक्तक गौरव सम्मान, दोहा शिरोमणि सम्मान, सिंहावलोकनी मुक्तक भूषण सम्मान, दोहा मणि सम्मान व अन्य ।

सम्प्रति - सेवा निवृत प्रधानाचार्या(रा ०० वा ३० कालेज जलालपुर, जिला अम्बेडक

सम्पर्क सूत - ranjana.vermadr@gmail.com

Also available as ebook

₹: 345/-

FICTION

ISBN 978-93-5535-339-9



9 789355 353399